आचार्य श्री नानेश जीवित हैं

संकलन–संपादन

मुनि ज्ञान

प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर–334005

फोन 0151–544867, फैक्स 203150

❄ आचार्य श्री नानेश जीवित है।

❄ सकलन – संपादन

मुनि ज्ञान

❄ अर्थ सौजन्य : श्रीमान सुन्दरलालजी दुगड, देशनोक (कोलकात्ता)

❄ सम्वत् –२०५६

❄ प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग,
बीकानेर – ३३४००५
फोन ‑ ५४४८६७

❄ मूल्य : **100/-**

❄ लेजर टाईप एवं डिजाइन सेटिंग
बिट्टू कम्प्यूटर्स, उदयपुर

❄ मुद्रक . अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स, बीकानेर

यस्मान्
गृहीत
तस्मै
समर्पितम्।

जिनसे पाया
उन्हीं को
समर्पित।

आचार्य श्री नानेश जीवित हैं।

—मुनि ज्ञान

प्रकाशकीय

"आचार्य श्री नानेश जीवित हैं" कृति का प्रकाशन करते हुए असीम प्रमोद की अनुभूति होती है। उनके विराट जीवन व विशाल साहित्य-फलक से चयनित बोध-सूत्रो एव चिन्तन-कणो को गुम्फित कर ओजस्वी व्याख्याता विद्वद्वर्य श्री ज्ञान मुनि जी म सा ने ग्रन्थ नाम को सार्थकता/जीवतता प्रदान करते हुए सिद्ध किया है कि आचार्य प्रवर विचार है, मात्र व्यक्ति नहीं। वस्तुत युगाचार्य श्री नानेश विगत सदी के सशक्त हस्ताक्षर है, जिनका धर्म, अध्यात्म, दर्शन व चिन्तन क्षेत्रो मे प्रदत्त अवदान शाश्वत है और युगो तक विद्यमान रहेगा। तनाव, सघर्ष व विषमता को निर्मूल करने हेतु आपने विश्व को समता दर्शन व मानव को समीक्षण ध्यान जैसे अमोघ उपाय बताये जो सम्यक, प्रासगिक और कालजयी है।

श्रमण भगवान महावीर द्वारा चतुर्विध सघ के कुशल सचालन का दायित्व आचार्य श्री सुधर्मा स्वामी के कधो पर रखा गया था और तदनन्तर जम्बू स्वामी, प्रभव स्वामी आदि के अनुवर्ती आचार्यो की परम्परा अनवरत प्रवहमान है। इसी क्रम मे लगभग दो शताब्दियो पूर्व हुए आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म सा ने साध्वाचार मे पनप रही शिथिलताओ को मिटाने हेतु क्रियोद्धार किया और श्री साधुमार्गी परम्परा को प्राणवान बनाया, जो आज शुद्ध साध्वाचार, सयम दृढता तथा आत्मसाधना का प्रतीक है। आचार्य श्री नानेश ने जहॉ धर्मपाल प्रतिबोध द्वारा सामाजिक क्रान्ति का इतिहास सृजित किया वहीं धर्म, अध्यात्म, योग व ध्यान समन्वित जीवन दर्शन भी दिया।

यह सुखद सयोग है कि उनके पट्टधर प्रशान्तमना, व्यसन मुक्ति के प्रेरक, श्रीवाल प्रतिबोधन आचार्य श्री रामलालजी म सा के सानिध्य में साधुमार्ग की पावन सरिता सर्वतोमुखी विकसित हो रही है। उनके निर्देशन मे श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ जिनशासन की सुरक्षा/सरक्षण/सवर्धन हेतु कृत सकल्प है। सघ की विभिन्न प्रवृत्तियो मे सत्साहित्य का प्रकाशन एक विशिष्ट प्रवृत्ति है और श्री ज्ञान मुनि जी म सा की प्रस्तुत कृति का प्रकाशन उसी ध्येय की पूर्ति रूप है।

साधुमार्गी धर्म सघ के अष्टमाचार्य श्री नानेश के अन्तेवासी सुशिष्य श्री ज्ञान मुनि जी म सा ने मात्र 13 वर्ष की अल्पायु मे दीक्षित होकर उत्कृष्ट ज्ञान साधना, अप्रतिम गुरु समर्पणा, अथक लगन एव रचना धर्मिता द्वारा अपनी अहम् पहचान बनाई है। मुनि श्री विद्वान साहित्यकार और सफल प्रवचनकार है, जिन्होने अपनी विद्वता व वक्तृत्वकला से शासन की भव्य प्रभावना की तदर्थ सघ गौरवान्वित है। सम्पादन, इतिहास, सस्मरण, चिन्तन, काव्य, उपन्यास, कहानी, प्रवचन प्रभृति विधाओ मे आपकी अनेक कृतिया प्रकाशति है और जैन/विद्वत्/अध्येता वर्ग मे समादृत है। **"आचार्य श्री नानेश जीवित हैं"** के चिन्तन-सूत्र अन्तरावलोकन करने और जीवन मूल्यो से साक्षात्कार करने मे सहायक होगी ऐसा विश्वास है। इस कृति के लिये हम मुनि श्री के आभारी है।

इस अनूठी कृति का प्रकाशन देशनोक/कोलकात्ता निवासी शासननिष्ठ युवा उद्यमी **श्री सुन्दरलालजी दुगड़** के अर्थ सौजन्य से हो रहा है तदर्थ साधुवाद एव आभार। प्रकाशन प्रक्रिया मे सहयोग हेतु श्री उदय नागोरी धन्यवाद के पात्र है।

पूरा विश्वास है मुनि श्री की कृति मे सन्निहित सदेश/बोध-सूत्र आत्मसात कर पाठक आचार्य भगवन् के व्यक्तित्व से ऊर्ज्वस्वित होकर अपनी चेतना का ऊर्ध्वारोहण करने की दिशा मे अग्रसर हो सकेगे।

निवेदक

शान्तिलाल साड

सयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ भा सा जैन सघ, समता भवन, बीकानेर

अर्थ सहयोगी
शासन समर्पित दुगड परिवार

देशनोक निवासी श्री मोतीलाल जी दुगड़ आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म सा एव श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर के स्थापना काल से ही एकनिष्ठ सुश्रावक रहे हैं, जिन्होने सघ/शासन की चहुमुखी प्रगति मे अहम् भूमिका का निर्वहन किया है। श्रीमद् जवाहराचार्य, श्री गणेशाचार्य, श्री नानेशाचार्य एव आचार्य श्री रामेश के श्रद्धालु, आस्थावान एव समर्पित भक्तो मे श्री दुगड़ जी का परिवार अग्रणी व प्रमुख है। शासननिष्ठ, अनन्य गुरुभक्त, सघ समर्पित श्री मोतीलाल जी दुगड़ के ज्येष्ठ पुत्र श्री सुन्दरलाल जी दुगड हैं, जिनका सघ एव समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओ मे महत्वपूर्ण व विशिष्ट स्थान है।

श्री सुन्दरलाल जी दुगड जैन समाज के उन युवा उद्योगपतियो में प्रमुख व अग्रपक्तया है, जिन्होने विगत सार्द्धदशक मे अपने अथक परिश्रम, कौशल, प्रतिभा तथा औदार्य से न केवल औद्योगिक जगत् में अपनी पृथक् पहचान बनाई है, अपितु अपनी धर्मनिष्ठता, सदाचारिता, सदाशयता, सचरित्रता एव जनहितैषिता से शिक्षा और सेवा के क्षेत्र मे भी श्लाघनीय, स्तुत्य व अनुकरणीय आदर्श भी स्थापित किया है।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के पूर्व उपाध्यक्ष रहे श्री सुन्दरलाल जी दुगड़ सम्प्रति अनेक सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा जन कल्याणकारी सस्थानो से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं तथा ट्रस्टी, मत्री, अध्यक्ष आदि पदो पर रहते हुए बहुआयामी सेवा कार्यो मे सलग्न है। आपने भवन निर्माण का कार्यारम्भ कर व्यावसायिक जगत मे प्रवेश किया तथा आर डी बिल्डर्स एण्ड डेवलपर्स की स्थापना की और अपनी दूरदर्शिता, कार्यकुशलता, त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर आज भवन निर्माण सहित विभिन्न व्यवसायो का सुसचालन कर रहे हैं। आर डी बिल्डर्स एण्ड डेवलपर्स नामक इनका प्रतिष्ठान आर डी बी इन्डस्ट्रीज मे परिवर्तित होकर औद्योगिक क्षेत्र मे सुस्थापित, प्रतिष्ठित हो इनके गतिशील, चुम्बकीय, सफल व्यक्तित्व की कथा कह रही है।

समय की धारा एव नब्ज पहचान कर साफल्य के सौपान हस्तगत करने वाले श्री दुगड प्रगतिशील विचारो के धनी है और युवा उद्योग रत्न रूप मे सम्मानित व समादृत है। 'दिया दूर नहीं जात' कथन का अनुसरण कर आपने अपनी जन्मभूमि देशनोक (राजस्थान) मे अनेक सस्थानो के उत्थान एव विकास में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है। आपके प्रभूत अनुदान से कपासन (उदयपुर) मे आचार्य नानेश रूप रेखा रामेश गौशाला की स्थापना हुई है तथा पी बी एम हास्पिटल, बीकानेर मे वार्ड सरक्षण का सेवा सास्थानिक कार्य प्रगति पर है।

सरलता, सहजता, मिलनसारिता, विनम्रता एव मधुस्मिता गुणो से समन्वित श्री सुन्दरलालजी दुगड का व्यक्तित्व प्रदर्शन, आडम्बर एव विज्ञापन से सर्वथा दूर सादगी, सेवा तथा उदारता का प्रतीक है। कोलकात्ता के जैन अजेन समाज मे आपको अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त है। अनेक राजनेताओ एव अति विशिष्ट महानुभावो से घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी ये एक निरभिमानी, निष्काम, निस्वार्थ कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप मे जाने पहचाने जाते है। कोलकात्ता एव देशनोक का धर्म और सेवा क्षेत्रीय ऐसा कोई सस्थान तथा सगठन नहीं है जो इनके उदार सहयोग एव सक्रिय व्यक्तित्व से लाभान्वित नहीं होता हो।

आपके सुपुत्र श्री विनोद जी दुगड़ भी अपने धर्म-कर्त्तव्यनिष्ठ पितृ के पदचिह्नो पर चलकर समाज की सेवा मे अग्रणी एव उत्साहित रहते है।

ऐसे शासन समर्पित परिवार से सघ गौरवान्वित है। सत् साहित्य के प्रकाशन हेतु प्रदत्त आर्थिक सहयोग इस परिवार की प्रशस्त एव प्रगाढ धर्मभावना का प्रतीक है। एतदर्थ सघ का आभार व साधुवाद।

उदय नागोरी
सदस्य-साहित्य प्रकाशन समिति

आचार्य श्री नानेश
विशिष्ट जीवन तिथियाँ

जन्म स्थान	–	दाता जिला–चित्तौडगढ (राजस्थान)
जन्म तिथि	–	वि स १६७७, ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया
पिता	–	श्री मोडी लाल जी पोखरना
माता	–	श्रीमती श्रृगारा बाई पोखरना
दीक्षा तिथि	–	वि स १६६६
दीक्षा स्थान	–	कपासन (राजस्थान)
युवाचार्य पद स्थान	–	उदयपुर (राजस्थान)
युवाचार्य पद तिथि	–	वि स २०१६ अश्विन शुक्ला द्वितीया
आचार्य पद स्थान	–	उदयपुर (राजस्थान)
आचार्य पद	–	वि स २०१६ माघ कृष्णा द्वितीया
स्वर्गारोहण	–	२०५६ कार्तिक कृष्णा तृतीया दिनाक २७ १० ६६ (समय १० ४१ रात्रि)

आचार्य श्री नानेश के अब तक के चातुर्मास स्थल

सवत्	स्थान	सवत्	स्थान
१९९७	फलौदी	२०२७	वडी सादडी
१९९८	बीकानेर	२०२८	व्यावर
१९९९	व्यावर	२०२९	जयपुर
२०००	बीकानेर	२०३०	बीकानेर
२००१	सरदारशहर	२०३१	सरदारशहर
२००२	बगडी	२०३२	देशनोक
२००३	ब्यावर	२०३३	नोखामण्डी
२००४	बडी सादडी	२०३४	गगाशहर–भीनासर
२००५	रतलाम	२०३५	जोधपुर
२००६	जयपुर	२०३६	अजमेर
२००७	दिल्ली	२०३७	राणावास
२००८	दिल्ली	२०३८	उदयपुर
२००९	उदयपुर	२०३९	अहमदाबाद
२०१०	जोधपुर	२०४०	भावनगर
२०११	कुचेरा	२०४१	बोरीवली (वम्बई)
२०१२	बीकानेर	२०४२	घाटकोपर (वम्बई)
२०१३	गोगोलाव	२०४३	जलगॉव
२०१४	कानोड	२०४४	इन्दोर
२०१५	जावरा	२०४५	रतलाम
२०१६	उदयपुर	२०४६	कानोड
२०१७	उदयपुर	२०४७	चित्तौडगढ
२०१८	उदयपुर	२०४८	पिपलिया कला
२०१९	उदयपुर	२०४९	उदयरामसर
२०२०	(आ पद) रतलाम	२०५०	देशनोक
२०२१	इन्दौर	२०५१	नोखामडी
२०२२	रायपुर	२०५२	बीकानेर
२०२३	राजनादगाव	२०५३	भीनासर
२०२४	दुर्ग	२०५४	ब्यावर
२०२५	अमरावती	२०५५	उदयपुर
२०२६	मन्दसौर	२०५६	उदयपुर

आचार्य श्री नानेश,–एक परिचय

वीर भूमि मेवाड़

सम्यता एव संस्कृति के प्रतीक भारतवर्ष के राजस्थान प्रान्त मे मेवाड भूमि के मानवो की वीरता सुप्रसिद्ध है। मेवाडी बांकुरे अपनी आन–बान–शान के लिए कुर्बान हो जाते है। अप्रतिम शक्ति के धनी वे वीर सिह के समान युद्ध मे घोर गर्जना करने वाले होते है । वे शत्रुओ के सामने कमी भी पीठ दिखलाना नही जानते है । मेवाडी वीरो की घटना से आज भी इतिहास गौरवान्वित है।

धर्मवीर और कर्मवीर

ऐसी वीरभूमि मेवाड मे दो प्रकार के वीरो ने जन्म धारण किया, कर्मवीर और धर्मवीर। कर्मवीर मे मुख्यता महाराणा प्रताप, शक्तिसिह आदि प्रसिद्ध है । धर्मवीर मे गणेशाचार्य और नानेशाचार्य के नाम इतिहास प्रसिद्ध हैं। महाराणा प्रताप ने मेवाड की सुरक्षा करने के लिए अपना सर्वस्व लुटा दिया था। कमी भी उन्होने मेवाड पर शत्रुओ का आधिपत्य नही होने दिया।

जहाँ कर्मवीर सुरक्षा के लिए कवच और ढाल लगाकर मुकुट पहनकर, अस्त्र–शस्त्रादि से सज्जित होकर घोडे पर सवार होकर युद्ध क्षेत्र मे आ डटते है। वहाँ धर्मवीर आत्मा की सुरक्षा करने के लिये संयम का कवच, तपश्चर्या की ढाल लेकर महाव्रतो रूपी अस्त्र–शस्त्र से सुशोभित होकर मन

नोट *पुस्तक का सकलन/लेखन आचार्य देव की विद्यमानता मे ही प्रारभ हो चुका था । यही कारण है कि कही–कही वर्तमान कालिक वाक्यो का प्रयोग किया गया है ।*

रूपी अश्व पर आरोहित हो काम क्रोधादि शत्रुओ को परास्त करने के लिए विश्व के विलक्षण युद्ध क्षेत्र पर आ डटते हैं ।

मेवाड़ के धर्मवीर आचार्य गणेश

वीर भूमि मेवाड के प्रमुख नगर, उदयपुर मे धर्मवीर गणेशाचार्य ने जन्म लिया था। ज्योतिर्धर आचार्य प्रवर श्री जवाहर के सान्निध्य मे भागवती दीक्षा अंगीकार की थी, सतत साधना मे तन्मय होकर संयमीय पथ पर आगे बढते ही चले गये। आप श्री को घाणेराव सादडी में हुए स्थानकवासी साधु सम्मेलन मे सर्वानुमति से सर्व सत्तासम्पन्न उपाचार्य बनाया गया था। अत आप (११००) से ऊपर साधु–साध्वियो के नायक बन गये थे। लेकिन कुछेक साधु–साध्वियों में संयमीय शिथिलता आने लगी, जिसे दूर करने के लिए बहुत प्रयास किया, किन्तु पक्षपात के कारण यह प्रवृत्ति बढती गई जिस स्थिति को देखकर गणेशाचार्य ने अपनी संयमीय आन, बान, शान की सुरक्षा के लिए आपने आचार्यपद की कुर्बानी दे दी ।

दांता के दाता

इस भूमि मेवाड में एक छोटा–सा गाँव दांता हैं। जिसकी प्राकृतिक सुषमा भी विलक्षण प्रकार की हैं। पर्वतीय अंचल में बसा दांता रमणीक, प्राकृतिक शोभा से सिमटा हुआ है तथा बहुत ही चिताकर्षक प्रतीत होता हैं। जिस प्रकार अणु मे भी विभु की सत्ता होती है, उसी प्रकार इस छोटे से गांव में एक विराट सत्ता का समावेश था। आज से ८० वर्ष पूर्व विराट सत्ता के प्रतीक एक लघु शिशु को माता श्रृंगारा ने जन्म दिया था। किसे मालूम था कि यह भविष्य मे विराट वृक्ष का रूप ले लेगा । कौन जानता

था कि इस लघु–सी देहश्री मे कितनी तेजस्वी आत्मा विद्यमान है। यद्यपि जन्मगत शिशु का नाम *"गौवर्धन"* रखा गया था, किन्तु जिस आत्मा मे अखिल विश्व की रक्षा जैसा अमित वात्सल्य भरा हो, उसका नाम *"गौवर्धन"* कैसे रहता ? सहज ही संयोग समझिये कि आप सभी से छोटे होने से आपको अपर नाम *"नाना"* से सम्बोधित किया जाने लगा । यह नाम ही आप श्री के गुणो का वास्तविक प्रतीक बना । आप श्री के अन्दर नानाविध ज्ञान है और नानाविध प्रकार से संघ संचालन की विधि में भी आप श्री कुशल हैं।

जवानी में भी निष्काम विचार

आप बाल्यकाल को पार करते हुए जब मदमाती जवानी की देहली पर पाव बढा रहे थे, अग प्रत्यंगो से जवानी का प्रस्फुटन हो रहा था। आश्चर्य का विषय है कि उस समय भी आपकी उन्मुक्त चिन्तन धारा निष्काम साधना की ओर प्रगतिशील थी। इस अमूल्य मानव जीवन को प्राप्त करके अब मुझे क्या करना है ? किस तरह स्वत्व को जागृत करना हैं ?

यह अनन्त आकाश जो मुझे अविरल उन्नति के लिए प्रेरक बना हुआ है, तो सपाट मैदान जीवन की सम रमणीयता की ओर इगित कर रहा है निश्चित ही मुझे जीवन का वास्तविक तथ्य और सत्य प्राप्त करना है । आपकी सारी ऊर्जा जीवन की अनन्त गहराइयो मे प्रवाहित होने लगी। मस्तिष्क के सुषुप्त ततु जागृत होने लगे अन्तर्पथ पर आपका तीव्रता से विचार–विहार चलने लगा ।

षष्ठ आरे का वर्णन–श्रवण

एकदा एक अणगार से आप श्री ने श्रवण किया –पाचवे आरे की पूर्णता पर छठा आरा प्रारम्भ होगा, उस समय का मानव धृति, बल, आयुष्य और कांति

से अत्यधिक हीन होगा, मानव की आयु घटते–घटते २० वर्ष ही रह जोयेगी, देहमान एक हाथ प्रमाण रहेगा, अतृप्त आहार की इच्छा रहेगी, जो कितना भी कुछ खा लेने पर भी तृप्त नही हो सकती खान–पान मासाहार होगा, मनुष्य की खोपडी मे पानी लेकर पियेंगे, उस समय के मानव दीन, हीन, दुर्बल, रोगिष्ट, नग्न, आचार–विचार हीन, मात–पिता, बहिन, पुत्री का भी विचार नही करने वाले होगे, छ वर्ष की स्त्री माता हो जायेगी । इनका निवास गुफाओ मे पशुतुल्य होगा । यह स्थिति २१००० वर्ष तक चलती रहेगी।

अन्त संवेदन

यह वर्णन सुनने के अनन्तर अश्वारोहित हो आप अपने गांव की ओर प्रयाण कर रहे थे, मध्य मे विचारो की प्रखरता बढने लगी, मैने चार गति, चौरासी लाख, जीव योनियो मे दुर्लभ यह मानव तन पाया है, आत्मिक ज्योति को जागृत करने के लिए अब मुझे अविराम प्रगति के पथ पर बढते जाना है, आत्मशांति को पाना ही अब मेरा उद्देश्य हो, सभी बन्धनो से मुक्त होकर मुक्ति का विराट सुख प्राप्त करना ही मेरा अब लक्ष्य बने।

विचारों की ऊर्जस्वल धारा

विचारों की पवित्र धारा मन के शुभ पात्र मे प्रवाहित होने लगी, अनागत मे आने वाला षष्ट आरे का चित्र मस्तिष्क पर उभरने लगा, अहो कितनी दयनीय स्थिति होगी मानव का उस समय, कितना पतन हो जायेगा मानवीय सस्कृति का क्या होगा मेरा उस समय ? क्या मुझे भी ? ना ना ऐसा कभी नही हो सकता, मै कभी भी अपने जीवन को उस दु.ख द्वार पर जाने ही नही दूंगा, मुझे अपने सत्पुरुषार्थ से भव पार उतारने वाला सबल, शक्ति प्राप्त करनी है, जो शक्ति बाह्य तत्त्वों से प्राप्त नही हो सकती । शक्ति का प्रयोग अंतर में

करना होगा। विचारो की गतिशीलता ससार से विरागता की ओर बढने लगी। कीचड मे जिस प्रकार कमल की निर्लिप्तता बनी रहती हैं, वैसे ही आपके जीवन की पवित्र्ता वृद्धिगत होती चली गई। संसार विरागता का बीज – वपन उसी अरण्य बीच पीपल वृक्ष के नीचे हुआ था । यहाँ से जीवन की धारा मे एक विलक्षण प्रकार का मोड आ गया।

आगार से अनगार का निश्चय

आगार से अनगार बनने का, रोगी से निरोगी बनने का, गृहस्थी से सन्यासी बनने का निर्णय भी आप श्री का इसी अरण्य बीच हुआ था। आप श्री ने विचारा दु ख–विमुक्ति और शाश्वत सुख की अवाप्ति के लिए राग से विराग की ओर बढना है । अर्थात् आगारी से अनगारी बनना है। साधना रूप सलिल से स्नान करने पर ही आत्मशुद्धि हो सकती है । सम्यक् ध्यान द्वारा ही मेरी बुद्धि का सम्यक् विकास हो सकता है ।

गुरु की खोज में

आत्मशुद्धि द्वारा मुक्तिपथ पर अग्रसर होने के लिए सहीपथ प्रदर्शक की आवश्यकता होती है। वे प्रदर्शक ही "गुरु" पद के अधिकारी होते है। सच्चे गुरु के बिना यथार्थ प्राप्त नही हो सकता। आप विचारो की ऊर्जस्वल धारा, पवित्र चिन्तन, संयमीय निर्णय के साथ सच्चे गुरु की खोज मे घर से निकल पडे ।

साध्य की प्राप्ति

जिस किसी लक्ष्य को लेकर जब व्यक्ति उसे प्राप्त करने के लिए निरन्तर तन्मयतापूर्वक खोज करना प्रारम्भ करता है तो निश्चित ही उसे एक

दिन उस लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। आप भी गुरु की खोज में इधर– उधर घूमने लगे। स्थान–स्थान पर पहुँचे। संत मुनिराजो द्वारा सुनहले आकर्षण मिलने लगे। जिसके लिए आप श्री की आत्मा कतई तैयार नहीं थी। आपको तो सच्चे गुरु की खोज थी, जो निस्पृह साधक आपका सच्चा पथ–प्रदर्शक बन सके । इस खोज मे घूमते–घूमते आप श्री राजस्थान के मुख्य नगर कोटा पहुँच गये । उस समय वहाँ पर विराजमान शासन के जाज्वल्यमान नक्षत्र, हुक्मगच्छ के सप्तम युवाचार्य शास्त्रज्ञ श्री गणेशीलाल जी म सा. की सौम्य मुखमुद्रा के दर्शन कर आप श्री ने वन्दना–अभिवन्दना की।

गुरु का अमिताभ तेज

युवाचार्य श्री के मुखमण्डल पर अमिताभ तेज था। ब्रह्मचर्य की अनुपम शोभा थी। ऐसे सौम्य मुखमण्डल को देखकर आप अभिभूत हो गये, उनके प्रति आकर्षित हो गये । मन मे विचार उठने लगे । वास्तव में इनकी देहश्री ही बताती है कि ये सच्चे साधक है । आचार और विचार के धनी है। इन्ही के द्वारा सच्ची शांति मिल सकती है। इनकी विलक्षण प्रतिमा को देखते हुए लगता है कि इनसी प्रतिमा अन्यरूप मे होना असमव सा है ।

शिष्य का प्रकटीकरण

युवाचार्य श्री के व्यक्तित्व को देखकर अभिभूत हुए आपने विचारो का प्रकटीकरण किया – हे प्रभो ! मै आपका शिष्य हूँ। मुझे स्वीकार कर मेरी डूबती हुई इस नैया को भवसागर से पार लगावें। ज्ञान दान देकर मुझे इस संसार–कीचसे उबार दो। लेकिन जो निस्पृह साधक होते है, उन्हे कभी भी शिष्य लोभ नहीं होता। वे निपट अपनी साधना में ही तन्मय रहने वाले

होते है। चाहे वे एक हो या समूह के साथ, शहर मे हों या अरण्य मे उनकी साधना निरन्तर आत्म–शुद्धि के लिए ही प्रवाहित होती रहती है।

गुरु का स्पष्टीकरण

आप श्री के विचारो को सुनकर महायोगी गणेशाचार्य ने संक्षिप्त मे किन्तु सारगर्भित उत्तर दिया–देखो भाई अभी साधु जीवन की बात जाने दो। पहले गृहस्थ जीवन मे ही रहकर अभ्यास करो। आगार से अनगार बनने का निर्णय आवेश मे करना अच्छा नही है। साधु जीवन कोई साधारण बात नही है, जो ऐसे ही अपनाया जा सके। कभी–कभी तो साधु जीवन तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने से भी अधिक कठिन बन जाता है। पांच महाव्रतो का पालन करना, परिषह–जय, इन्द्रिय दमन कोई साधारण बात नही है।

तारणहार गुरु गणेशाचार्य

गणेशाचार्य के निस्पृह किन्तु सटीक विचारों को सुनकर आप श्री बहुत प्रभावित हुए। "गु" शब्द स्त्वंधकारे "रू" शब्द स्तन्निरोधक। "गु" शब्द अंध ाकार का प्रतीक है "रू" शब्द उसका विरोध करने वाला है। जो प्राणियो के अधकार को दूर करने वाला है, वही सच्चा गुरु है। आप सच्चे गुरु है। आत्मा का सच्चा बोध आपके द्वारा ही प्राप्त होगा। गुरु ही तारणहार होते है। आपके पास न तो किसी प्रकार का आकर्षण है और न शिष्य लोभ ही। सभी ओर से निस्पृह होकर आप सदा आत्म साधना मे लीन रहते है। जिसको किसी प्रकार की स्पृहा या लोभ नहीं हो, वह अन्य भव्य पुरुषो का सही पथ प्रदर्शक बन सकता है। नि संदेह आपकी साधना सच्ची है। आपके ज्ञान–दीपक के

द्वारा मेरा ज्ञान–दीपक प्रज्वलित हो सकेगा। इस प्रकार से गणेशाचार्य के प्रति आपका आकर्षण बढने लगा।

विरक्ति के पथ पर

आप श्री गणेशाचार्य के सुखद सान्निध्य की प्राप्ति कर बहुत प्रसन्न हुए। विरक्तानुगामी साधना आप श्री की निन्तर वृद्धिगत होती चली गई। ज्ञान–ध्यान की आराधना मे आप सदा तन्मय रहते। मुझे लक्ष्यानुरूप गति करने के लिए पथ प्रशस्त बनाना है, जिस पथ पर चलकर मैं अपनी आत्मा का शुद्धिकरण कर सकूं। मन–वचन–काय की शुद्धि के साथ आत्मीय विशुद्धि करने वाला सयमीय जीवन ही सारभूत जीवन है।

सच्चा स्वर्ण

आप श्री की वैराग्य भावना निरन्तर प्रबल से प्रबलतर होती चली जा रही थी। आप श्री का प्रत्येक कार्य विवेक और यतना के साथ होता था। गणेशाचार्य स्वयं भी आप श्री के वैराग्यमय जीवन का परीक्षण करते रहते थे। अनेक सुज्ञ श्रावको ने भी आपकी अनेक बार परीक्षा ली थी। आप सदा परीक्षा मे उत्तीर्ण ही रहते। कई श्रावको ने गणेशाचार्य से कहा–आपके पास जो वैरागी है, वह वास्तव में हीरा है, भविष्य मे यह बडा महापुरुष बनेगा। हमने परीक्षा करने के लिए इनको अनेको अनेक प्रलोभन दिये, किन्तु यह सभी और से निस्पृह है। वास्तव मे सच्चे स्वर्ण के लिए कसौटी क्या कर सकती है, कुछ नही। सच्चे स्वर्ण को कसौटी पर कितना भी कसा जाय, उसमें कोई फर्क पडने वालानहीं है, बल्कि उसमे तो और अधिक निखार ही आयेगा।

कपासन में भागवती दीक्षा

विरक्तानुगामी साधना मे जब आप श्री ने परिपक्वता प्राप्त कर ली, तब संयमी जीवन अंगीकार करने के लिए प्रयत्न करने लगे । इसके लिए पारिवारिक सदस्यो की आज्ञा होना आवश्यक होता है । आप मातुश्री एवं भाईयो से आज्ञा–पत्र लेने के लिए दांता गॉव पहुँचे । बहुत प्रयत्न करने पर भी जब आपको आज्ञापत्र प्राप्त नही हुआ, तब आप अष्टम (तेले) तप की आराधना मे तल्लीन हो गये । जब तक आज्ञा नहीं मिलेगी पारणा नही करूगा । आपकी इस भीष्म प्रतिज्ञा के सामने सब नतमस्तक हो गये और आपको आज्ञापत्र प्राप्त हो गया। दीक्षा स्थान दाता के पास ही कपासन रखा गया । गांव के बाहर आम्र वृक्षो की शीतल छाया मे गणेशाचार्य ने आपको दीक्षा के प्रत्याख्यान करवाये । हजारो–हजार पुरुष आप श्री के चरणो मे नतमस्तक होते हुए जय–जयकार कर उठे ।

सुयोग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य

सुयोग्य गुरु को सुयोग्य शिष्य मिलना मुश्किल होता है। कही सुयोग्य गुरु होते है तो शिष्य योग्य नही होता और कही योग्य शिष्य होता है तो गुरु योग्य नही मिलते। किन्तु यहाँ सुयोग्य गुरु को सुयोग्य शिष्य प्राप्त हुआ। मुक्ति रूप साध्य भी आपका सुयोग्य है। रत्नत्रय रूप –साधना भी सुयोग्य है। इस त्रिपुटी का दुर्लभ सगम आप श्री के जीवन मे सहज था। सयमी जीवन मे आप विशेषत. प्राय अप्रमत साधना मे तन्मय रहते। साधु जीवन मे कोई दोष लगने की सभावना हो, ऐसा कोई कार्य नही करते। आपकी प्रतिभा सदा आगम–मथन मे लगी रहती थी।

सर्वतोमुखी अध्ययन

आप श्री की तीक्ष्ण प्रतिभा आगमो के गूढ रहस्यो को जानने मे सतत प्रयत्नशील बनी रहती थी। आपने शास्त्रीय अध्ययन के साथ ही न्याय, भाष्य, टीका, चूर्णि आदि का भी गम्भीर अध्ययन किया। षड्दर्शनो का भी आपने तलस्पर्शी अध्ययन किया था। वेदान्त, गीता, महाभारत, कुरान आदि अनेक भाषाओ के ऊपर आपने अधिकार प्राप्त कर लिया। संक्षिप्त मे कहा जाय तो आप श्री ने सर्वतोमुखी अध्ययन किया था ।

संयमी जीवन

आपश्री अत्यन्त विनम्र थे। गुरुदेव के इंगितानुसार आचरण करने वाले थे। आप अपने गुरुदेव के प्रति ही नहीं, अपने सभी ज्येष्ठ गुरु भ्राताओं के प्रति भी विनम्रशील और उदार थे। आपश्री सदा रत्नत्रय– सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र की आराधना मे तन्मय रहते थे। परीषह एवं उपसर्गो को आपश्री समभाव पूर्वक सहन करते थे।

मिट्टी का कलश

जब मिट्टी अपने को कुम्भकार के हाथो मे अपना समर्पण कर देती है, तब कुम्भकार मिट्टी मे पानी मिलाकर उसे रौद डालता है और लौदा बनाकर, चाक पर चढाकर उसे घट रूप दे देता है। आग मे पका कर उसे परिपक्व बना देता है। तभी वह घट वनिताओ के सिर पर चढ पाता है। ठीक उसी प्रकार आपश्री ने भी अपना जीवन सर्वतोभावेन गुरु के चरणो मे समर्पित कर दिया था। आपकी समर्पणा साधना बहुत ही विलक्षण प्रकार की थी। दीक्षा अगीकार करने के बाद स्वास्थ्य को लेकर आपने एक दो चातुर्मास अलग

किये, बाकी सभी वर्षावास गुरुदेव की सेवा मे ही किये। गणेशाचार्य ने आपश्री के समर्पित जीवन को बहुत ही तन्मयता के साथ निर्मित किया। परिणामस्वरूप आज भी आप हजारो के मस्तक पर चढे हुए है ।

गुरुदेव की सेवा में गुरुदेव

स्वर्गीय गुरुदेव गणेशाचार्य जब उदयपुर मे स्थिरवास के रूप मे विराजे हुए थे, तब आप भी वही रहकर गुरुदेव की तन्मयता के साथ सेवा करते थे। गणेशाचार्य के सर्वतोमुखी जीवन से सारा जैन समाज अच्छी तरह परिचित था। आप श्री की सयमनिष्ठा एव सिद्धान्तो का अनुपालन बेजोड था। जनता ने जब गणेशाचार्य के स्थिरवास के विषय मे सुना तो वह उनके दर्शन के लिए उमड पडी। दर्शनार्थियो का प्राय· ताता–सा लगा रहता था।

आचार्य श्री गणेश की सत्य अभिव्यक्ति

गणेशाचार्य के स्वास्थ्य मे दिन–प्रतिदिन गिरावट देखकर श्रावक लोग चिंतन करने लगे–भविष्य में सघ को सभालने वाला कौन सुयोग्य शासक होगा ? उस समय आप श्री (नानेशाचार्य) जन–सम्पर्क से प्राय. निर्लिप्त थे, आपकी साधना अन्तर्मुखी ही अधिक बनी हुई थी, सघ के अनुयायी आपकी योग्यता का यथेष्ट अकन नहीं कर पाये थे, इसलिये वे एक दिन इसी विचारणा मे गणेशाचार्य की सेवा मे पहुच ही गये और अपनी अन्त सवेदना अभिव्यक्त कर डाली, तब गणेशाचार्य ने स्मित के साथ कहा कि–आप लोगो को चिन्ता करने की आवश्यकता नही हैं, मै ऐसा गुदडी का लाल दूंगा, जिसे देखकर आप आश्चर्य करेगे, उसके द्वारा शासन प्रभावना देखकर तो कहीं तुम मुझे भी भूल जाओगे।

युवाचार्य पद पर

सवत् २०१६ आसोज सुदी दूज, उदयपुर के राजमहलो मे लगभग ३०–३५ हजार जनता के बीच आपश्री को गणेशाचार्य ने चादर प्रदान की, चादर प्रदान करने से पूर्व तक सूर्य घटाटोप बादलो से आच्छादित था, किन्तु जिस समय आपको युचाचार्य पद की चादर दी गई, उसी क्षण सूर्य बादलो को चीरता हुआ बाहर आ गया, वह इसी बात का प्रतीक था कि जिस प्रकार बादलो को हटाकर सूर्य प्रकाशमान हो रहा है, उसी प्रकार आपश्री भी सभी आगत विपत्तियो को हटाते हुए भू–मण्डल में प्रकाशित होगे। उस विलक्षण छटा को देखकर संघ के अधिकारियो को यह विश्वास हो गया कि वास्तव मे आप संघ के जाज्वल्यमान नक्षत्र होगे।

आचार्य पद पर

माघ कृष्णा दूज को गणेशाचार्य जब संथारापूर्वक पंडितमरण को प्राप्त हो गये, तब आपश्री आचार्य पद पर आसीन हुए। उस समय संघ एक विकट मोड पर खडा था। श्रमण संघ से गणेशाचार्य के विलग हो जाने से प्रायः श्रमणसघ इस साधुमार्गी संघ से विपरीत हो गया था। स्थान–स्थान पर ऐसा प्रचार–प्रसार किया जाने लगा कि आचार्य श्री को ठहरने के लिए स्थान नही देना, आहार पानी नही बहराना, व्याख्यान नही सुनना आदि। लेकिन सूर्य की प्रचण्ड रश्मियो के सामने अंधकार कितने समय तक रूक सकता है। आखिर उसे भागना ही पडता है। उसी प्रकार आप श्री के विशुद्ध सयम प्रखर प्रतिमा, विलक्षण विद्वता एवं अपरिमेय पुण्य के समक्ष कुप्रचारको का अंधकार हटता चला गया। प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश की भॉति आपका गौरव बढता ही चला गया।

विश्व-शांति का उपाय-समतादर्शन

जब आप आचार्य पद पर आसीन हुए तब आप श्री को एक विचार आया कि मै तो अपनी साधना कर ही रहा हू, किन्तु मानव जगत् के लिए कौन–सी ऐसी व्यवस्था दी जाय, जिससे वे भी शांति के वातावरण मे जी सके। इस ज्वलन्त प्रश्न का समाधान पाने के लिए आप विचारो की गहराइयो मे उतरे आखिर आपने समाधान खोज ही लिया। वह था–समता दर्शन और व्यवहार। समता के धरातल पर अगर व्यक्ति से लेकर विश्व तक की व्यवस्था की जाय तो शांति का सुखद वातावरण फैल सकता है । विषमता की धू–धू करती आग शांत हो सकती है।

अनेक दार्शनिको ने विश्व की समस्या पर बहुत विचार किया। कुछेक समस्याओ को जनता के समक्ष रखा भी सही किन्तु उसका समाधान क्या हो सकता है ? इसके लिए बहुत कम लोगो ने अपने विचार व्यक्त किये। किन्तु आचार्य प्रवर ने विश्व की विषम समस्याओ को रखते हुए समता का सचोट एवं व्यावहारिक समाधान भी जनता के समक्ष रखा। समता सिद्धान्त के द्वारा विश्व की विषमताओं, समस्याओ का समाधान भी किया जा सकता है। इस सिद्धान्त की इतनी अधिक व्यापक विवेचना है कि अन्य सभी उपायों का इसी मे समावेश हो जाता है। समता सिद्धान्त के धरातल पर यदि व्यक्ति, परिवार, समाज गाव, नगर, प्रान्त, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवस्था की जाय तो सर्वत्र शाति का प्रसार हो सकता है । आचार्य प्रवर ने समता–दर्शन को मुख्यतया चार विभागो मे विभक्त किया है – (१) समता सिद्धान्त–दर्शन (२) समता जीवन दर्शन (३) समता आत्म–दर्शन (४) समता परमात्म–दर्शन।

पहले के दो दर्शन तो जीवन की शुद्धि के मूल हेतु हैं, जहा सिद्धान्त दर्शन द्वारा व्यक्तियो के विचार शुद्ध और परिष्कृत किये जाते है, वहां जीवन–दर्शन उनके आचरण मे शुद्धिलाता है। आत्मदर्शन और परमात्मदर्शन जीवन शुद्धि की ओर अधिक आगे बढाते हुए शाश्वत शाति–प्रदायक वनते हैं।

दुर्गम पथ पर अविराम गमन

विश्व की विषमता भरी विकट समस्या की समाहिति समतादर्शन के द्वारा अच्छी तरह की जा सकती है। दार्शनिक जगत मे आचार्य प्रवर की यह एक अपूर्व देन रही है। इसी कारण आपश्री को समता–दर्शनप्रणेता की सार्थक उपाधि से विभूषित किया गया।

साधना और संयम के दुर्गम पथ पर

आप निरन्तर आगे बढते ही चले गये। भयकर परिस्थिति का भी आपने समता के धरातल पर धैर्य के साथ सामना किया। किसी भी परिस्थिति मे घबराना क्या होता है, मानो यह तो आप जानते ही नही है। आचार्यप्रवर का उपदेश आगमिक धरातल पर वैज्ञानिक, संयुक्तिक एवं व्यवहारिक रीति के साथ ससार के यथार्थ स्वरूप की अभिव्यक्ति करने वाला है।

भागवती दीक्षाएँ

आपको आचार्य पद प्राप्त किये हुए अब तक ३८ वर्ष हो चुके है। इस ३८ वर्ष के अल्पकाल मे आपश्री ने शासन की अत्यधिक प्रभावना की है। अब तक ३५० के लगभग आत्माओ को प्रव्रजित कर आगार से अनगार धर्म में प्रवेश दिया है। एक साथ ६, ९, २, २, ५, १५, २१, २५ दीक्षाएं भी आचार्य प्रवर ने प्रदान की है। जो कि गत सैकडो वर्षों मे भी स्थानकवासी समाज मे

किसी आचार्यों के द्वारा एक साथ सम्पन्न नही हुई है। आज आपश्री के आज्ञानुवर्ती सैकडो साधु–साध्वी अनेकानेक क्षेत्रो मे जिन शासन का तुमुल शंखनाद कर रहे है। दिग्–दिगन्त तक आपश्री की गौरव–गरिमा व्याप्त हो। अगिनत प्राणी आप श्री के संयमी जीवन से प्रभावित होकर चरणो मे झुक जाते है।

पतितोद्धार का ऐतिहासिक कार्य

आपश्री का जब मालवा प्रान्त के छोटे–छोटे गावो मे विचरण हो रहा था, तब आपश्री को ज्ञात हुआ कि कई हिन्दू गौरक्षक अब मुसलमान एवं ईसाई बनने जा रहे है। कथन आपश्री की अहिसक भावना को उद्धवेलित कर उठा और आपश्री ने गाव–गांव मे जाकर उन लोगो के मध्य मे अहिसा की मार्मिक विवेचना की मानव जीवन की दुर्लभता का प्रतिपादन किया। आप श्री के तलस्पर्शी प्रवचनो से प्रभावित होकर हजारो व्यक्तियो ने सप्त कुव्यसन का त्याग कर सदाचार–जीवन स्वीकार किया। उन्हे *"धर्मपाल"* की सज्ञा से सम्बोधित किया गया। आज उनकी सख्या ८० हजार से एक लाख तक है। इस ऐतिहासिक कार्य के कारण आपश्री को जनता ने *"धर्मपाल प्रतिबोधक"* की उपाधि से विभूषित किया।

ज्वलन्त प्रश्न : ज्वलन्त उत्तर

आपश्री तीक्ष्ण प्रतिभा के धनी है। संस्कृत, प्राकृत आदि भाषा पर अधिकार होने के साथ ही आपश्री की शास्त्रीय विवेचन भी बहुत ही मार्मिक होती है। आपश्री सभी को प्रश्न पूछने का खुला आव्हान करते है। एकदा जयपुर वर्षावास मे एक भाई ने आप श्री से प्रश्न किया –"जीवन क्या है ? आपश्री ने इस लघु प्रश्न को संस्कृत भाषा मे गूंथ कर संस्कृत मे ही

इसका उत्तर दिया– कि जीवनम् ?

"सम्यक् निर्णायकम् समतामयन्च यत् तज्जीवनम्"

सम्यक् निर्णायक और जो समतामय हो, वही सच्चा जीवन है। आपश्री ने इसी एक सूत्र की विवेचना पूरे वर्षावास मे फरमाई थी। प्रवचनो का संकलन *"पावस प्रवचन"* के नाम से कई भागों मे प्रकाशित पुस्तकों मे मिलता है।

ध्याता–विधाता समीक्षण ध्यान के

आज के युग मे ध्यान की बहुत चर्चा है। जनता के सामने विविध प्रकार की ध्यान प्रक्रियायें सामने आ रही हैं। लेकिन उन ध्यान–प्रक्रियाओ मे जनता को पर्याप्त संतोष नही हो पाया। आप श्री महान् ध्यानयोगी हैं। आप श्री की ध्यान–साधना अत्यन्त गहराइयो मे उतरने वाली होती है। आप श्री से कई प्रबुद्ध वर्ग ने ध्यान के विषय मे चर्चा रखी तो आपश्री ने तनावमुक्ति के साथ आत्मशांति देने वाले *"समीक्षण ध्यान"* की अभिनव विवेचना जनता के सामने रखी। समीक्षण अर्थात् सम्यग् ईक्षण देखना । सम्यग्–समता–पूर्वक अखिल जगत् का ईक्षण देखना। जब यथार्थता के परिप्रेक्ष्य में देखने की स्थिति हमारी बनेगी, तभी तनावमुक्ति एवं आत्मशांति हमे मिल सकती है। इस प्रकार आप श्री की वृत्ति नये–नये रहस्यो का अवधान खोज करने की रही है।

विहारचर्या

आपश्री का अब तक विशेषत· विचरण मेवाड, मारवाड, मालवा, राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, उडीसा, दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तों मे हुआ है। आपश्री की गुण–गरिमा का विस्तार बहुत व्यापक रूप से भू–मण्डल पर हो रहा है। जिस प्रकार अनन्त आकाश के कोई बंधन नहीं होता, उसी प्रकार आपश्री के गुणसौरम के प्रसग मे किसी प्रकार का बधन नहीं हैं।

साहित्य की दिशा में

आचार्य देव का व्यक्तित्व जितना विशुद्ध रूप से निखरा है, तो कृतित्व मी उतना ही विशुद्ध रूप से निखरा है। विश्व की विषाक्त विषमता का विनिवारण करने के लिए *"समतादर्शन और व्यवहार"* नामक पुस्तक मे आचार्य देव का मौलिक चिंतन अन्तस्तल की गहराइयो से प्रादुर्भूत है, साथ ही मानसिक टेन्सन को समाप्त कर शांति देने वाला समीक्षणध्यान भी आचार्य देव की अन्तश्चेतना का ही स्फुलिंग है। इसके अतिरिक्त आचार्यप्रवर के तत्वाधान में *"कर्मप्रकृति"* जैसे गहन ग्रंथ का संपादन–अनुवादन हुआ है। स्वयं आचार्य प्रवर ने आचाराग सूत्र, भगवती सूत्र, अन्तदृशाग सूत्र, कल्प सूत्र, आदि अनेक शास्त्रो पर आगम सम्मत हृदयस्पर्शी अभिनव विवेचना प्रस्तुत की है। गहरीपर्त के हस्ताक्षर आपश्री के चिन्तन की मौलिक कृति है। समीक्षण धारा, पर्दे के पीछे, क्रोध समीक्षण, मानसमीक्षण, मायासमीक्षण, लोमसमीक्षण, आत्मसमीक्षण से जीये, आदि ध्यान और समीक्षण संबंधी महत्वपूर्ण साहित्य है। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त दक्षता को उजागर करने वाला आप श्री का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है – जिण धम्मो। मानव मात्र के विचारो को परिष्कृत

करने मे समर्थ है। आपश्री की कृति आचार्य श्री नानेश विचार दर्शन आप ही के द्वारा परिष्कृत एव सत्सान्निध्य मे रचित "जवाहराचार्य यशोविजय महाकाव्यम्" भी संस्कृत के महाकाव्यो की दिशा मे एक महत्वपूर्ण कृति है। कथाओ के रूप मे आपश्री के प्रवचनो से सकलित नल–दमयन्ती दो भाग, लक्ष्यवेध कुकुम के पगलिये महत्वपूर्ण कृतियां है। प्रवचन साहित्य भी विविध रूप मे प्रकाशित हो चुका है। आचार्य प्रवर के कृतित्व जीवन का निखार भी सर्वतोमुखी हुआ है। अनेक महत्वपूर्ण ग्रथो का प्रणयन हो चुका है। आचार्य प्रवर की यह अनुपम देन मानव मात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

सैद्धान्तिक एकता के हिमायती

आचार्य प्रवर को मंचस्थ एकता कभी नही भाई। अर्थात् एक मंच पर बैठकर भाषण दे देना और बाद मे परस्पर एक दूसरे की निदा करना अभीष्ट नही रहा है। वे सदा सैद्धान्तिक एकता के पक्षधर रहे है। स्व इतिहास मार्तण्ड, आचार्य श्री हस्तीमल जी म सा से भी सैद्धान्तिक धरातल पर एकता हुई है।

जैन धर्म का सर्वाधिक महान् पर्व सवत्सरी एक करने के लिए भी आचार्य प्रवर के विचार स्पष्ट रहे है कि सारी जैन समाज या श्वेताम्बर समाज एक होकर जो भी तिथि दे, मै उस दिन सवत्सरी मनाने के लिए तैयार हू। इस प्रकार का उदार दृष्टिकोण अन्यो में न आने से अभी तक सवत्सरी एक नहीं हो पाई है।

युवाचार्य की नियुक्ति

आप श्री ने आज से ८ वर्ष पूर्व साधुमार्गी संघ का उत्तरदायित्व, तरूण तपस्वी, सेवाभावी शास्त्रज्ञ श्री रामलालजी म सा. के कंधो पर दे दिया है। उन्हे सघ का युवाचार्य बना दिया गया है। इसके कोई ४ वर्ष बाद कुछ मत भेद को लेकर संघ मे कतिपय साधु–साध्वियो का निष्कासन/बहिर्गमन हुआ है। उस समय सघ में भारी ऊहापोह होना, सहज था। उस विकट समय मे इस वृद्धावस्था के होते हुए भी आचार्य प्रवर ने अपूर्व साहस एव विशिष्ट समता का परिचय देकर संघ को सुस्थिरता प्रदान की है। शरीर के रूग्ण होने पर भी बीकानेर से उदयपुर तक विहार करके संघ संगठन एवं जनजागरण का शंखनाद कर सुषुप्त चेतना जगाई है। उस समय किडनी, ब्लड प्रशेर आदि अनेक व्याधियो के होते हुए भी सहनशीलता का अनूठा परिचय दिया। बल्कि जीवैषणा, लौकेषणा से जिनकी चेतना ऊपर उठ चुकी है। दवा आदि बाह्य उपचारो से जो परे हट चुके है। डाइलेसिस करने की स्पष्ट इन्कारी कर दी। यहां तक कह दिया। जब भी ऐसा समय आएगा। मै सथारा ग्रहण कर लूंगा। लगता है वे भौतिक देह मे रहकर भी अभौतिक साधना मे लगे है। आत्मशक्ति के जागरण की अपूर्व साधना कर रहे है। ऐसी महाशक्तिशाली आत्मा को श्रद्धा समन्वित अगणित प्रणित वन्दन–वन्दन–वन्दन।

कुछ उपयोगी घटनाएँ

१ आचार्य प्रवर साधु जीवन मे भी बहुत ही कम बोलते थे। आवश्यक बात को भी सीमित शब्दो मे प्रस्तुत करना आप की खासियत रही हैं। एक महाराज श्री सदा फरमाया करते थे कि नानालाल जी तो घडी के घटे की तरह टाइम पर बोलते है, जो सभी सुनना चाहते है।

२. इस विशाल संघ के संचालन मे ऊंची–नीची स्थिति जब तब आती रही है। उस समय भी आप चिंता से सदा दूर रहे। प्रखर चितन से गूंथी सुलझाते रहे।

३ आपका यह सिद्धान्त रहा है– बहुत कुछ सम्यक् विचार पूर्वक, सम्यक् लक्ष्य के लिए सत्पुरुषार्थ करते हुए भी कभी काम बिगड भी जाय तो मत घबराइये। वह भी अच्छे के लिए हुआ। उसका भविष्य अच्छा है।

४. आचार्य को किसी की सेवा करना अनिवार्य नही होता। परन्तु आप सदा सेवा करने मे अग्रणी रहे है। आपने गुरु की तो सर्वात्मभावो से सेवा की ही थी पर अपने शिष्यों की भी लगन से सेवा करते रहे हैं। इसके पचासों उदाहरण मिल जाएंगे । एक संत को रात को उल्टी दस्ते कई बार हुई, पर किसी अन्य संत को नही जगाकर खुद ही सब कुछ साफ करते रहे। किसी को रात में पेट दर्द हो गया तो अपना ध्यान छोडकर घंटो उसके पेट पर हाथ फेरते रहे। दिन मे भी किसी की दवा के लिए तो किसी की आहार के लिए सेवा करने हेतु तत्पर रहते रहे है। बहुत कुछ मना करने पर भी वे सेवा करना नहीं छोडते है। आज भी वे अपनी तबयित ठीक न होने के बावजूद भी दूसरो की सेवा करनी हो तो तैयार रहते है। अभी ३ वर्ष पहले बीकानेर हास्पिटल मे आचार्य प्रवर के आँख

का ऑपरेशन हुआ। मै भी वही था। इसी बीच मुझ (ज्ञानमुनि) को बुखार आ गया। तो सेवा की तत्परता देखिये । ऑख पर पट्टी बधी है तथापि किसी भी संत को बताए बिना अकेले ही एक भाई को साथ ले जाकर गृहस्थ के घर से दूध लेकर मेरे पास पधार गए कि लो दवा ले लो, यह दूध है। इससे आचार्य प्रवर की सेवाभावना का सहज अदाज लगाया जा सकता है ।

५. सघ मे किसी भी सत–सती वर्ग के द्वारा कुछ भी अविनय या अनियमित काम हो जाने पर भी आचार्य प्रवर कभी गुस्सा नही करते। उसे प्रेम से समझाकर उसकी मानसिकता को धोने का प्रयास करते है। आचार्य प्रवर की यह धारणा रही है कि किसी को गुस्से से दबाया जा सकता है, बदला नही जा सकता। इसलिए वे सभी को प्रेम से ही समझाते रहे है। यही कारण है कि आचार्य प्रवर ने संघ पर अनुशासन दबाव से नही दिल पर चलाया है।

६ आज जैन समाज के बहुत बडे बल्कि सबसे बडे कह दूं, तब भी अतिशयोक्ति नही होगी। इतने बडे आचार्य होने के बावजूद भी अंहकार से दूर रहे है । जब भी अपने परिचय देने की बात आती तब यही फरमाते, मैं तो नाना हूं। (बच्चा हू) नाना का अर्थ बच्चा ही होता है। अपने शिष्य – शिष्याओ का इतना विशाल परिसर होने के बावजूद भी यही फरमाते रहे है यह मेरे भाई–बहिन है। आप सब इस सघ के अंगभूत है। मैं भी एक सदस्य हूं ।

७ अपने पर्सनल काम के लिए किसी को भी कम ही संकेत करते हैं। प्यासे रह जाते हैं पर आदेश देकर पानी नही मगवाते। स्वयं जाकर

पानी पी लेगे। वैसे तो संत महापुरुष समय के साथ पानी लेकर पहुंच जाते है। पर कभी यदि ध्यान न रहे तो अखर ने वाली तो वात ही नही। बल्कि स्वय ही पानी पी लेते है । अतः किसी को काम करने के लिए कहते भी नही है और कोई करता है तो उसका मन रखने के लिए निषेध भी नही करते। कभी सेवा की और कभी किसी ने नही भी की तो भी आक्रोश नही कि तुम समय के साथ काम नही करते हो। तुमसे काम नही कराऊँगा। ऐसा कुछ नहीं, समता को कहा ही नहीं जीवन मे रमाया है।

८ आचार्य प्रवर किसी भी घोषणा के करने में "अन्तरात्मा की" छूट रखते है। अर्थात् आज कोई घोषणा करी और भविष्य मे अन्तरात्मा को नही जची तो बदल सकता हूं। वे अन्तरात्मा की आवाज को महत्व देते रहे है। अन्तरात्मा की आवाज महत्वपूर्ण होती है। वह कभी गलत नहीं जाती। उन्होने भव्यो को संकेत दिया है कि वे भी अन्तरात्मा की आवाज को पहचाने। उसके अनुसार चलने वाला आदमी कभी धोखा नहीं खाता।

९. छोटे से छोटे साधु का वे पूरा सम्मान रखते है। यदि किसी कारण वश छोटा सा साधु भी आहार न करे तो आचार्य प्रवर स्वयं खाना छोड देते है। पहले उसका समाधान कर उसे खाना खिलाएंगे फिर खाना खाएगे। यह उनका स्वभाव रहा है।

१० किसी को पातरे पोछने मे, किसी के कपडे धोने मे सहयोग करने मे भी तत्पर रहते हैं। फिर भी यह नही जतलाते कि मै सहयोग कर रहा हूं। बल्कि यह फरमाते है कि नही मै तो अपने लिए कर रहा हूं।

हाथ–पैर हिलाने से शरीर स्वस्थ रहता है। इसलिए काम करना चाहता हूं। काम भी करना, जतलाना भी नही, यही महानता है।

११ यदि कोई साधु आलसी या प्रमादी भी है तो उसे बारबार कहकर नही, अपितु उसका काम स्वयं करके उसकी अन्तश्चेतना को जगाने का काम करते है। आचार्य प्रवर को सत्पुरुषार्थ करते देख सामने वाला स्वत सक्रिय हो जाता है ।

१२. अत्यन्त प्रभावशाली आचार्य होने से भक्तो की भीड हर वक्त बनी रहती है। भीड भरे माहौल मे रहकर भी एकाकी साधना करने के अभ्यासी रहे हैं। माहौल के बीच भी एकान्त साधना आश्चर्य का विषय है।

१३. साधु जीवन मे जो भी भोजन लाया जाता है। सारा उसे खाना होता है। बाहर डालने पर प्रायश्चित आता है। एक बार दूध फट गया। उस समय उपस्थित कोई साधु खाने को तैयार नही था, तो किसी को कहने के बजाय, आचार्य प्रवर स्वय सारा फटा दूध पी गए। धर्मरूचि की तरह।

१४ एक बार किसी बात को लेकर किसी दिन साधु–साध्वियो की सभा मे भारी विवाद हो गया। आचार्य प्रवर भी विराज रहे थे। वे शाति के साथ सुन रहे थे। उन्होने किसी को भी कुछ कहने की बजाय इतना ही कहा कि मैं अपने तप सयम मे कमी समझता हूं कि मुझे यह सब देखने को मिल रहा है। इतना सुनते ही सभी साधु–साध्वी भाव विह्वल हो उ़ठे और वातावरण शात–प्रशांत समरस हो गया।

१५ आप श्री तृतीय पद के अधिकारी महान् आचार्य होने के बावजूद भी अपने मे दीक्षा पर्याय मे बडे साधु को वन्दन व्यवहार आदि से पूरा सम्मान करते रहे है। प्रवचन मे भी पाट पर विराजने के बाद मे भी कोई आ जाते तो तुरन्त खडे होकर उसका सम्मान देते रहे हैं। विनय धर्म को जीवन मे बहुत बडा स्थान दिया है।

१६. आप श्री सारे संघर्ष एवं विरोध को समता के साथ समाहित करते रहे है। रायपुर चातुर्मास में आपके नाम का पर्दा बाजार मे लगाया था। जिसे मुस्लिम जुलूस में किन्ही कट्टर पथियो द्वारा फाड देने से दंगा भडकने की स्थिति आने लगी। वहां के मौलवी नया पर्दा बनवाकर आचार्य प्रवर को भेट करने आए। पर आचार्य प्रवर ने स्पष्ट फरमाया कि पर्दा फट जाने मात्र से कोई अपमान नहीं हो जाता । वैसे भी हम तो पर्दा लगाने के लिए कहते भी नही है। आचार्य प्रवर के उदार विचारों को सुनकर सभी प्रभावित हुए।

१७. चाहे कोई कितना ही सेवाभावी हो या फिर विद्वान् शिष्य हो या सामान्य साधु हो कोई भी संयम से विपरीत जाता है तो उन्हे मंजूर नहीं। वे उसके दोष का परिमार्जन अवश्य करते हैं। यह बात अलग है कि उनका तरीका बडा विलक्षण व विचक्षण होता है।

१८ आचार्य प्रवर ने आचार्य पद के बाद भी वर्षों तक घर–घर पधार गौचरी करते रहे। जिससे लाखों लोगों का मन जीता है। यही नहीं छोटे बडे सभी से स्नेह पूर्ण बात करना आपका नैसर्गिक गुण रहा है।

१६. निर्णय के प्रति दृढ रहना भी आपका विलक्षण गुण है। चाहे कितना ही अवरोध /विरोध होता रहे पर सत्य के प्रति समर्पित होकर आगे

बढने की विशिष्ट क्षमता रही है। इसलिए विरोधी भी प्रशसक बनते चले गए हैं।

२० आपका जीवन चमत्कारो से भरा रहा है। साधु स्वय कोई चमत्कार करता नही वह तो उसके जीवन से स्वत. हो जाता है जो भी इनके द्वार पर कुछ पाने आया है वह आपके पावन दर्शन पा निहाल हो उठा। अंधे कौ आंखे मिल गई तो डूबते को पतवार मिल गया। मरते को जिन्दगी मिल गई तो निर्धन भी धनवान बन गया ।

२१ आपको मानों वचन सिद्धि प्राप्त है। जो भी एक बार मुख से अचानक निकल गया, वह होकर रहा है। यह सत्य है कि साधु कभी भी भविष्य की घोषणा नहीं करते और यदि अचानक मुंह से कोई बात निकल जाय तो फिर वह होकर रहेगी। यदि घोषणा फलवान न हो तो समझो अभी साधुता मे कमी है । आचार्य प्रवर के मुह से निकलने वाली बाते सत्य साबित हुई है। सैकडो संस्मरण है जो कि हमे जिन्दगी को सही तरीके से जीने की प्रबल प्रेरणा देते रहे हैं।

२२. आपके सयमित मर्यादित उपदेशो से देश के विभिन्न प्रान्तो मे जन कल्याण के बडे–बडे रचनात्मक कार्य आपके भक्तो ने सपन्न किये है। कर रहे हैं। कई स्कूले चल रही है तो कही हॉस्पीटल चला रहे है। कही क्या तो कही क्या। पर आप श्री किसी भी संस्था मे जरा भी लिप्त नही है पूरी तरह निष्परिग्रही रहे हैं।

आचार्य श्री नानेश का महाप्रयाण

आचार्य देव ने सघ एव समाज की हर उन्नत अवनत परिरिस्थितियो के बीच भी समता रखकर एक अनूठा आदर्श दुनिया के सामने प्रस्तुत किया था। प्रभु महावीर ने फरमाया है–

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीवए मरणे तहा ।
समोनिदा पंससासु, तहा माणावमाणओ ।

साधक को लाभ–अलाभ, सुख–दु ख जीवन–मरण, निदा–प्रशसा, मान–अपमान मे समभाव रखना चाहिये।

आचार्य प्रवर ने अपने जीवन मे वीतराग देव के सदेशो को साकार कर दिखाया था। आचार्य देव की आत्मा तप–सयम, ज्ञान–ध्यान की एक जाजवल्यमान प्रकाश पुज थी। इस भौतिक पिण्ड मे रह कर हम सबको प्रकाश दे रही थी । पर तन की विनश्वरता शाश्वत है । उसे एक न एक दिन पचतत्व मे विलीन होना होता है । उन महान् आत्मा को अपने महाप्रयाण का महीनो पूर्व आभास हो चुका था । यही कारण था कि महाप्रयाण से महीनो पहले, आहार–पानी लेना कम कर दिया । दवाइया बद कर दी थी। डॉक्टर से चेकअप कराना बद कर दिया। यही नहीं सामाजिक, सघीय व्यवस्थाओ से भी वे ऊपर उठ चुके थे। उनकी आत्मा भौतिक पिण्ड मे रहकर भी अभौतिक साधन मे लग चुकी है। ऐसा लगता था कि वे सथारा से पूर्व सलेखना प्रारभ कर चुके है । यह हजारो प्रत्यक्ष दृष्टा भक्तगण जानते है। अन्त मे **२७ अक्टूबर १६६६ बुधवार, कार्तिक कृष्ण तीज** को आचार्य प्रवर के पूर्ण जागरूकता–सजगता–सतर्कता मे उनके द्वारा सथारा मागने पर उन्हे सवेरे **६ ४५ मिनिट** पर तिविहार सथारा करा दिया गया और शाम को **५ ३५ मिनिट** पर चौविहार सथारा करा दिया गया । उसी रात्रि को **१० ४१ मिनिट** पर गुरुदेव की पावन आत्मा पूर्ण समाधि भावो के साथ इस भौतिक देह का परित्याग करके महाप्रयाण कर गई। महाप्रयाण का वैह क्षण अलौकिक था। ऑखो मे एक विशिष्ट तेज उभरा और

विलीन हो गया। ऐसी महान् आत्मा सदियो मे कभी—कभी पैदा होती है।

आचार्य श्री नानेश सच्चे युग पुरुष थे। युगानुगामी तो सभी होते है। पर युग को मोडने की क्षमता विरल महापुरुषो मे होती है। उनमे से एक विरल महापुरुष आचार्य देव रहे हे ।

आज भले वे भौतिक देह की दृष्टि से इस दुनिया मे नही है। पर आध्यात्मिकता की दृष्टि, वेचारिक कान्ति की दृष्टि से उनके द्वारा दिये निर्देशो की दृष्टि से आज भी जीवित हे।

आचार्य प्रवर ने व्यक्ति से लेकर विश्व तक शाति का प्रसारण करने के लिए विचारामृत का जो अवदान किया है, वह युगो—युगो तक भव्यात्माओ को पथ प्रशस्त करता रहेगा। यह विश्वास हे।

आचार्य प्रवर के विराजते— विराजते ही उनके उपदेश, चिन्तन एव निर्देशो का सकलन प्रारभ कर दिया गया था। लेकिन समय की गति बलवान हे। आज आचार्य देव भोतिक पिण्ड से विद्यमान नही लेकिन उनकी अन्तरात्मा के विशुद्ध विचारो से आज भी विद्यमान हे।

हम सब विचारो का यथाशक्य अनुसरण—अनुगमन करेगे तो आचार्य देव एक—एक व्यक्ति के साथ सदा—सदा रहेगे। और एक न एक दिन हम भी उस चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगे।

प्रस्तुत है –

आचार्य श्री नानेश : जीवित हैं।

मुनि ज्ञान
उदयपुर

{1}

ता २८ १२ ७३ को नापासर आये। उस रात्रि को लगभग ३ ४५ बजे स्वप्न आया। स्वप्न मे स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा के दर्शन हुए। उसके पश्चात् एक दृश्य सामने आया। उसमे एक कस्बा या शहर से विहार कर जैसे ही बाहर निकले तो थोडे से फासले पर एक-दो व्यक्ति गहरे वृक्ष के नीचे खडे थे। जैसे ही उन्होने सतो को शहर से बाहर निकलते देखा, वैसे ही एक भाई ने हर्षित होते हुए एक टेढे मुडे हुए लम्बे बाजे को बजाना प्राम्भ किया और उसी वक्त दूसरा व्यक्ति छोटे कद मे स्त्री पोशाक मे नाचने लगा। इससे ऐसा अनुभव हो रहा था कि यह विजयघोष कर रहा है तथा यह शासन-देवी हर्ष से विभोर होकर नाच रही है। इस प्रकार छोटे कद मे कन्या के रूप मे शासन-देवी का परिचय गतवर्ष जयपुर से विहार कर बीकानेर की तरफ आ रहे थे, तब रास्ते मे एक गाव मे स्वप्न अवस्था मे हुआ था। वैसा ही लगभग यह छोटे रूप मे दिख रहा था। इनको इशारा किया कि ऐसा न किया जाय। फिर भी नही रुके।

{दिनाक ३१ १२ ७३ का चिन्तन}

{2}

दुर्ग १८ १० ६७ की पिछली रात्रि पांच वजकर चालीस मिनट के लगभग गणित का चिन्तन करते हुए पाट से नीचे उतरते अन्तर आभास का दृश्य अपूर्व था। प्रथम तो उज्ज्वलता ऐसी लग रही थी, जैसे प्रकाश पुज मे से धूम्र जडमूल से अलग हट रहा हो। इससे महसूस होने लगा कि मिथ्यात्व आदि विकार जडमूल से उखड गये हो, और सर्व विकारी प्रवृत्तियॉ धुएँ के रूप मे लगने लगी। तदन्तर विचार हुआ कि वस्तुत आत्मा की दशा इस प्रकार से आगे बढती है। सत जो पढाई कर रहे हैं, वह भी आवश्यक है। पर इन संतों की योग्यता बढ जाय तो आन्तरिक पढाई इससे भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अत इसके लिये एक विधान-पद्धति का आन्तरिक कोर्स तैयार कर उसके अनुसार आन्तरिक अध्ययन करवाऊॅ। इसके पश्चात् ऐसा भाषित होने लगा कि धूम्र रहित ३-३'' हाथ के लगभग लम्वे ओर थम्वे के समान गोल छड जैसा प्रकाश पुज का दृश्य आन्तरिक स्थिति के सामने है।

{दिनाक १८ १०.६७ का चिन्तन}

इस भूमण्डल पर जैसा मेरा अस्तित्व
है, वैसा सभी का अस्तित्त्व स्वीकार्य है, अतः
उनके साथ हर समय सद्व्यवहार रखना चाहिए।
भय करने कराने सरीखी कोई वात नही है। निर्भयता पूर्वक धेर्य के
साथ शक्ति-निर्माण मे सदा यत्नवान् होना चाहिये। जो कुछ प्राप्त
है, वह अनायास मिला हुआ है, उसका सदुपयोग करने का एक
तरीका सही शक्ति-निर्माण का है। उसमे कर्त्तव्य-निष्ठा पूर्वक सदा
मस्त होकर लगे रहना चाहिए, ताकि वस्तुत. सही जीवन की स्थिति
प्राप्त करने के साथ-ही-साथ आत्मनिर्भर वन
सके और अनायास को स्वायत्त कर सके।

{दिनाक २५ ७.६५ का चिन्तन}

{3}

दृढ सकल्प के
साथ जीवन का मोड
किया जा सकता हे। यह जीवन
मोड की मुख्य चावी है, अन्य सव साधन दृढ
सकल्प पूर्वक ही पुष्ट वनने
के साथ कार्य- सम्पादन करने
मे समर्थ हो सकते है।

{दिनांक २६.७ ६५ का चिन्तन}

{4}

पवित्र आत्मीय विचारो का प्रवाह
जड पदार्थ पर भी पडता है। उनके पर्यायो
मे परिवर्तन आता है। उनकी अवस्था आत्मीय विचारों के
अनुरूप ढल जाती है। अत. जिन भी पदार्थो को जिस रूप मे
मोडना हो, उस रूप मे वे विचार पूर्वक योग्य संयोगो मे मोडे जा
सकते है। यह असंदिग्ध विषय हैं। आत्मीय विचार शात एव
अमृततुल्य है, तो उन विचारो का निरन्तर व्यवस्थित सयोग जिन
परमाणु स्कन्धो को मिलेगा, वे परमाणु स्कध शात सुधारस
एव अमृततुल्य अवश्य बन जायेगे।

{दिनाक १७ ७ ७३ का चिन्तन}

{5}

{6}

जीवन की साधना मस्ती मे है। विराट् विश्व मे
समग्र वस्तुएँ सहायक के रूप मे ली जा सकती है।
सहायक अनुकूल साधन मे एव बाधक प्रतिकूल सहायक
के रूप मे है। कार्य-सिद्धि मे अनुकूल-प्रतिकूल दोनो सामग्री अपेक्षित है।
अनुकूल मे अधिक सावधानी तब रहेगी, जबकि प्रतिकूल सामने होगा।
साधक सोचेगा कि यदि मैने अनुकूल सामग्री का सही प्रयोग नही किया तो
यह सामग्री प्रतिपक्षी के साथ मे चली जायेगी या नष्ट हो जायेगी। ऐसी
भावना प्रतिकूल तत्त्वो की उपस्थिति मे विशेष बनेगी। अत प्रतिकूल भी
सुन्दर कार्य-सम्पादन मे सहायक हुआ। इसलिए प्रतिकूल से कभी भय नही
खाकर उसे साधन रूप मे मानना चाहिए। इस दृष्टि से सोचा जाय, तो
समग्र विश्व सहायक है। तब किस बात का भय तथा किसके लिए ? अत
सदा सर्वत्र भय और चिन्ता से मुक्त होकर प्रसन्नता पूर्वक जीवन
निर्माण मे लगना चाहिए।

{दिनांक १७ ८ ७२ का चिन्तन}

{7}

मानव ! तू मन मे सोच, मुझे क्या अधिकार कि
मै अन्य पर द्वेष करूँ, मुझे क्या हक कि मै अन्य
पर क्रोधादि करूँ, मुझे क्या अधिकार कि मै पर प्राणियो का
प्राणवध करूँ ! मुझे स्वय को जो कार्य पसद नही वह अन्य
के साथ करना कतई योग्य नही। यह अनाधिकार चेष्टा है। मै
यदि मानव हूँ, और मुझे मानवता का सात्विक गौरव है, तो सब
के साथ समता का वर्ताव करना है यानि यथायोग्य व्यक्ति के साथ
यथास्थान व्यवहार रखते हुए स्व-पर के विकास का ध्यान
रखना है और मान-अपमान की भाषा मे कभी नही सोचना है। जो कुछ
सोचना, विश्व-कल्याण के साथ आत्मशुद्धि का सोचना मेरा जन्मसिद्ध
अधिकार है। यह किसी भी अवस्था मे, कभी नही भूलना हे।
कोई कितना भी कुछ कहे, दवाव दे, तग करे, सतावें। यहॉ तक कि
प्राणान्त कष्ट तक का प्रसग आ जावे,
पर मुझे अपने जन्मसिद्ध अधिकार से अपने मन को जरा
भी नही खिसकने देना हे। यही दृढ संकल्प है।

{दिनांक २ ७ ६८ का चिन्तन}

यदि पापो को छिपाता रहता है,
तो एक ही साथ उनका विस्फोट होता हे।
किसी भी वस्तु के अतिमात्रा मे एकत्रित होने
पर उभार आता ही है। प्रारम्भ से ही पापो का आहिस्ते-आहिस्ते
शमन करता रहे, यथावसर वाहर भी निष्कासित करता रहे, तो
उससे हल्का होगा तथा कभी भी विस्फोट का प्रसंग नही वन
पायेगा। व्यक्ति जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के समस्त
स्वरूपो का प्राय. यह अवस्थान वनता रहता हे।

{दिनांक २१ ८ ७२ का चिन्तन}

{8}

योग साधना के कई प्रकार
और विभिन्न मत संसार मे प्रचलित
है। लेकिन सहजिक योग की पद्धति प्राय
नही के बरावर हे। अतः सहजिक योग के आधार
की स्थिति को सामने रखकर पहले शरीर रचना
की आन्तरिक स्थिति मे चक्र, आदि का कुछ संकेत
लेना आवश्यक है।

{दिनांक ६ १२.६७ का चिन्तन}

{9}

आज प्रात काल एक बच्ची जोर से
रो रही थी, मानो वह असहाय हो। उसको इस
बात का ज्ञान नही कि मेरी माता ऊपर दर्शन करने
गई है, अभी आ जायेगी। मै धैर्य रखूं। यही दशा
अधिकांश प्राणियो की है। वे भी किसी सहायक के चल बसने पर
रोते हैं। उनको इस बात का ज्ञान नही कि मै सृष्टि के मध्य मे बैठा
हूँ। चिता किस बात की ! अमुक व्यक्ति गया, तो क्या हुआ !
उसकी आत्मा का स्वरूप तो कही-न-कही विद्यमान है। समय पर
पुन मिल सकता है। मुझे धैर्य रखना चाहिये ।

{दिनांक २३ ७ ६५ का चिन्तन}

{10}

{11}

जीवन मे अनेक उतार-चढाव आते
रहते है। जिस समय मन के प्रतिकूल परिस्थिति
आये, उस वक्त धैर्य की नितान्त आवश्यकता रहती है,
क्योकि सही मार्ग पर चलने पर भी जब विपरीत कार्य बनने लगता है तब
स्वाभाविक तौर पर मन अटपटा महसूस करने लगता है तथा उस कार्य से
पिण्ड छुडाने का सोचने लगता है। पर मेधावी पुरुषो को ऐसे प्रसग को ही
मेधा की परीक्षा का अवसर समझना चाहिए एव परीक्षा देने मे कभी पीछे
नही हटना चाहिये। ऐसे प्रसग जब भी आये, तब अधिक उल्लास के
साथ उस कार्य का संपादन करना चाहिए। ऐसे
प्रसंग मे जीवनी-शक्ति की वृद्धि होती है,
जो कि उसी के लिए हितावह है।

{दिनाक १८ ८ ७२ का चिन्तन}

{12}

ईर्ष्या पतन का भयकर रास्ता हे। यह
अमूल्य जीवन की धुन है। यह वह जहर है जो
कि जीवन को श्मशान तक शीघ्र ही पहुँचा देता हे। यह
ईर्ष्या एक जीवन को नही, अनेक जीवन को नष्ट करती
हे। अन्य को कम, स्वय (ईर्ष्या करने वाले) को अधिक नष्ट करती हे।
अन्य यदि अपने मन मे ईर्ष्या नही लाता है, तो उसका विशेष कुछ नही
बिगडता। यत्किचित् तद्ग्राह्यभाग पर असर होकर यथावस्थित बन जाता
है। अत विचक्षण मानव को ईर्ष्या के चक्कर मे कभी भूल कर नही आना
चाहिए। क्योकि इससे एक तरह का विष निर्मित होता हे, जो
कि किसी भी दृष्टि से हितकर नही हे।
अत. सावधान रहना चाहिए।

{दिनाक १ ८ ६५ का चिन्तन}

आत्मन् ! जैसा तुम वनना पसद
करते हो, वैसा ही प्रत्येक व्यक्ति को
देखा। तुम ईश्वर वनाना चाहो, तो हर व्यक्ति
को ईश्वर के रूप मे देखो। तुम्हारे साथ कोई नीचता
का व्यवहार करता है, तो तुम उसकी नीचता को नीचता रूप मे मत
देखो, अपितु उसको विकास की शक्ति के रूप मे देखों। कोई
अच्छा कहे या वुरा, इसका
ख्याल मत करो, वल्कि पवित्र हृदय क्या
कहता है, उस पर विशेष ध्यान दो। {13}

{14} तुम अपने जीवन का एक
लक्ष्य निर्धारित कर लो और उसी
लक्ष्य का ध्यान रखते हुए कर्तव्य (कर्म) करते रहो,
सफलता अवश्य मिलेगी । सभी प्राणियो को
अपनी-अपनी योग्यतानुसार समानाधिकार प्राप्त है।
अत अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु दूसरो के अधिकारो
का हनन मत करो।

नियमित निरतर अभ्यास एक स्वभाव-सा बन
जाता है। उसी अभ्यास मे यदि विवेकपूर्वक खोज का
ध्यान रखा जाय, तो कार्मणिकी बुद्धि के साथ अत्यधिक प्रगति की
जा सकती है। पौद्गलिक आसक्ति संबधी जितने भी भाव परिलक्षित
हो रहे है, वे सब कृत्रिम है। लेकिन लम्बे काल से निरन्तर
अभ्यासवश वे स्वाभाविक से भासित होने लगते है। तथा जो
स्वाभाविक भाव थे, वे कृत्रिम से लगने लगते है। क्योकि दीर्घकाल
से उनका वास्तविक अभ्यास प्राय छूट-सा गया है। सावधानीपूर्वक
वास्तविक स्वभाव को अभिव्यक्त करने के लिए विवेकपूर्वक निरन्तर
नियमित अभ्यास पुन चालू करना अत्यावश्यक है। {15}

{दिनाक २० ८ ७२ का चिन्तन}

{16}

जन्म के साथ ही अनुकूल और प्रतिकूल दो प्रकृतियो का प्रादुर्भाव होता है, किन्तु इसका अनुभव युवावस्था मे स्पष्ट रूप से होता है। उस समय प्रतिकूल प्रकृति घातक व विनाशकारी समझी जाती है और अनुकूल प्रकृति जीवन मे विकास रूप से देखी जाती है। अनुकूलता की ओर झुकाव होता है, अतएव उसी को स्वाभाविक आकर्षण मानकर जीवन को ठप्प कर दिया जाता है और प्रतिकूलता को अस्वाभाविक एवं कृत्रिम मानकर उससे मुह मोड लिया जाता है, किन्तु विचार किये बिना ही अनुकूल प्रकृति के प्रति आकर्षण और प्रतिकूल प्रकृति के प्रति उदासीनता कहां तक उचित है ? क्या यह जडता अथवा संकल्प–शून्यता नही है ? सहसा किसी भी प्रकृति के चक्कर मे आ जाना खतरनाक है। अत विवेकपूर्वक दोनो प्रकृतियों से संघर्ष करता हुआ प्रगतिशील मनुष्य ही पूर्ण विकास कर सकता है। अत सघर्ष सजीवता का द्योतक है।

{17}

जो इष्ट देव का स्मरण करता है–वह अपनी आस्था का परिचायक होता है। यह आस्था जितनी सुदृढ होती है, पथिक का साहस उतना ही सुदृढ बनता है और यह आस्था जब अटल बन जाती है तो पथिक भी अजेय हो जाता है, तब वह आपत्तियो को जीत लेता है– आपत्तियां उसे पराजित नही कर पाती है। जब संकल्प शिथिल होने लगता है और पुरुषार्थ मंद बन कर साहस टूटने लगता है, तब अमिट आस्था का सम्बल उस हारे पथिक का पल्ला थाम लेता है। वह फिर सन्नद्ध हो जाता है आगे बढने के लिये और हिम्मत के साथ आगे चल पडता है क्योकि उसे अनुभूति मिल जाती है प्रभु के दर्शन की एव अपनी ही आन्तरिक शक्ति की। उसकी अटल आस्था तब उसे आत्म–विकास के पथ से डिगने नही देती है।

वर्तमान मानव ने भौतिक सुख सुविधाओ के क्षेत्र मे कितनी ही प्रगति की हो, किन्तु इन सुख सुविधाओ की चन्द लोगो के लिये सुलभता और बहुसख्यक के लिये दुर्लभता होने के कारण मनुष्य मे जो उद्यम लालसाएं एवं वितृष्णाए जागी है, उनके कुप्रभाव से वह दयनीय पतनावस्था की ओर आगे से आगे कगार तक बढता ही जा रहा है। आज उसका जीवन विषमताओ से भरा है, क्लेश पूर्ण है तथा विकृतियो से अशात बना हुआ है।

{18}

{19}

जितना कुछ आज का मानव अपने आप को सभ्य संस्कारो में बढा–चढा मानता है, भौतिक विज्ञान के संबध मे अत्यधिक उच्च स्तर की बात करता है, उतना ही उसका आन्तरिक जीवन ठीक इसके विपरीत ज्ञात होता है।

धैर्य कभी नही छोडना चाहिये। कर्तव्य निष्ठा से सत्य कर्म करने वाले को आपत्तियां आने पर भी सफलता अवश्य मिलती है। निष्काम भाव से कर्तव्य पालन करने वाले को सर्वतोमुखी फल अवश्य मिलता है, जिससे वह उन्नति के शिखर पर पहुंच सकता है। 'अमुक कार्य करू, पर मेरे पास साधन नही है, ऐसा चिंतन उसके मन की अपरिपक्तवता का द्योतक है। अगर वह सच्चे दिल से कार्य मे लग जाय, तो सभी प्रकार के साधन, मिठास पर चीटियो की तरह सहज ही उसके पास आ जायेगे।

{20}

{21}

पशु—पक्षियो मे भी समाज—व्यवस्था देखी
जाती है। उनमे किसी को अपराध करने पर
सामूहिक या व्यक्तिगत दण्ड मिलता है। पशु—पक्षियो
मे जैसे भी अनुकूल या प्रतिकूल साधन होते है उसका
वे यथावसर उपयोग करते है। जब कभी विजातीय
आक्रमण होता है, तो स्वजातीय अपराधो को गौण कर
वे सामूहिक एकता से प्रत्याक्रमण करते है। उनमे भी
साम्राज्यवृत्ति और समाजवादवृत्ति दोनो ही पाई जाती
है। अनुशासन—व्यवस्था इनमें अच्छी होती है। उनमे
ईमानदारी अधिक होती है बेईमानी बहुत कम। उनमे
प्रेम या मुग्धता भी अपेक्षाकृत अच्छी होती है। उनकी
अपनी सांकेतिक भाषा होती है। आज का मानव
जरा तुलना करे अपने आप से इसकी।

{22}

प्रिय और अप्रिय का व्यवहार काल्पनिक
है। वस्तुत प्रिय और अप्रिय नाम की कोई वस्तु
ही नही है। एक ही वस्तु एक को प्रिय और दूसरे को
अप्रिय, किसी तीसरे को न प्रिय और न अप्रिय हो सकती
है। एक ही वस्तु विभिन्न भावनाओ का निमित्त बनकर
विभिन्न भावनाओ के अनुसार उपस्थित होती है। उसमे
केवल प्रियत्व मान बैठना वस्तु स्वरूप के ज्ञान से दूर जाना है।
एक ही व्यक्ति जिस वस्तु के साथ प्रियत्व की
कल्पना कर कुछ समय के लिए सद्व्यवहार करता है
वही व्यक्ति समय परिवर्तन के बाद उसी वस्तु के साथ
अप्रियत्व की कल्पना से दुर्व्यवहार करने लग जाता
है। अत प्रियत्व और अप्रियत्व के काल्पनिक
स्वरूप को समझना चाहिए।

मामूली–सी वैभव पाकर आपे से
बाहर होना क्षुद्र मन का काम है। मन
को शिक्षा से अनुशासित करना चाहिए। शिक्षा
का वास्तविक ध्येय, विज्ञानपूर्वक शरीर का उपयोग
होना चाहिए। अक्षरीय ज्ञान की ऊची–से–ऊची डिग्रिया
प्राप्त कर लेने के बावजूद जो जीवन का विवेकपूर्वक
उपयोग नही कर पाता, वह जडबुद्धि कहा जा सकता है।
अक्षरीय ज्ञान विशेष नही होने पर भी जो विवेकपूर्वक
जीवन का उपयोग करता है, वह वास्तविक
शिक्षाविद कहा जा सकता है।

{23}

{24}

इंसान की बुद्धि नदी के
पानी की तरह प्राय अपने दायरे
में घूमा करती है। कभी–कभी तूफान
आने पर नदी का पानी इधर–उधर फैलकर
नई नदी भी तैयार करता है। वैसे ही
मनुष्य की बुद्धि भी कभी–कभी
नया रास्ता एव नई वस्तु का
निर्माण भी करती है।

ससार दर्शन से हटकर जो आत्म–दर्शन
की ओर सम्पूर्ण निष्ठा से आगे बढता है, उसका
सम्बल होता है परमात्म दर्शन। परमात्म स्वरूप के
चिंतन से इस आत्मा को उसका सही लक्ष्य प्राप्त होता
है और आत्म–दर्शन की सच्ची अभिलाषा बनती है। सच्ची
अभिलाषा के साथ उग्र पुरुषार्थ जागता है तथा उग्र
पुरुषार्थ के बल से आत्मा की मलिनता दूर की जाती है।
स्वच्छ आत्मा की अर्न्तदृष्टि दिव्य बन जाती है और वही
दिव्य दृष्टि परमात्म स्वरूप की होती है। दर्शन की
सच्ची अभिलाषा कभी अपूर्ण नही रहती।

{25}

{26}

आज के दिन भारतीयो के हाथ मे राजसत्ता
आई। अतएव आज का दिन स्वतन्त्रता–दिवस के रूप मे
मनाया जा रहा है। यह स्वतन्त्रता नाम मात्र के लिए कही जा सकती है,
वास्तविक नहीं। क्योंकि, वास्तविक स्वतन्त्रता की ओर अभी तक अधिकाश
भारतीयो का लक्ष्य ही पूरा नहीं बना है और जब तक लक्ष्य पूरा नहीं बनता,
तब तक उसके लिए उत्सव मनाकर वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयास
किया जा रहा है–यह भी एक कथनमात्र है। क्योंकि बिना लक्ष्य का प्रयास पागलो
का होता है, इंसानों का नहीं। इंसानो का लक्ष्यपूर्वक प्रयास होता है, उसके लक्ष्य
मे स्वार्थ की तिलांजलि होती है। गुटबदी या संकुचित दायरे का नामो निशान
तक नहीं रहता। विचार स्वातन्त्रय और एकत्व एकांगी भाव से रहते हैं। विद्वेष,
ईर्ष्या व कलह का अत्यन्ताभाव रहता है। सभी के समान विकास की भावना का
प्राबल्य रहता है। गुलामी व हीनता के भावो के बीज तक का वपन नही होता
और जिसमे चरम विकास का अन्तिम लक्ष्य भी पूर्ण मात्रा मे विद्यमान रहता
है, वही वास्तविक लक्ष्य कहा जा सकता है और उसी के लिए प्रयास
मानवीय जीवन का प्रयास कहा जा सकता है।

{27}

जगल के एक कोने से सुगन्धित पुष्प खिलकर विकसित होता है।
वह बिना किसी की प्रेरणा के अपने आपको सुगन्धित गुणो से
परिपूर्ण कर लेता है। उसकी सुगन्ध समस्त विश्व के लिए होती है, न
कि व्यक्ति विशेष के लिए। वह यह इच्छा नही करता है कि मेरी सुगन्ध
विश्व के प्राणी आकर ले ताकि मै उनके द्वारा विश्व–प्रसिद्ध होऊं और न
वह यह चिता ही करता है कि अगर विश्व के प्राणी न आये और मेरी
सुवास न ले तो मेरा इस संसार मे पैदा होकर विकसित होना व्यर्थ चला
जायेगा तथा मै संसार का कोई उपकार न कर सकूगा। जिन सुगन्धित
गुणो का विकास हुआ है, वे कभी व्यर्थ जाने के नही। ससार के प्राणी
उन गुणो को पहचान सकें या नही, यह बात दूसरी है। किन्तु वे गुण
समान रूप से संसार के कौने–कौने में फैलकर विश्व का
प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपकार ही करते है,
वे अशमात्र भी व्यर्थ नही जाते।

व्यक्ति-स्वातन्त्राय जीवन का
स्वाभाविक अधिकर है इस पर प्रतिवन्ध
कही पर नही होना चाहिए, मगर समाज के
सामान्य नियमो से व्यक्ति को अलग भी नही होना चाहिए।
व्यक्ति-समूह ही समाज है। विकास व साधन
की दृष्टि से उसकी परमावश्यकता है। मगर
वह प्रामाणिक व्यक्तियो का समाज है
''प्रामाणिकता सद् आचरण से आ सकती
है, कहने मात्र से नही।

{28}

{29}

यदि इसान शात मस्तिष्क
से दृढ संकल्पूर्वक क्रियात्मक रूप
से कार्य मे लग जाय तो संसार की कोई भी ताकत
उसे असफल नही कर सकती। फल को देखने
वाला आगे नही वढ सकता। कर्तव्य को देखने
वाला ही आगे वढ सकता हे।

संघर्ष ही जीवन है। सघर्ष के बिना
जीवन जडतुल्य कहा जा सकता है। प्राणी का
विकास संघर्ष से ही हुआ और होता रहेगा। एक मनुष्य किले के
अन्दर रहकर ही युद्ध करता है, दूसरा मैदान
मे आकर। अन्दर वाला कम शक्ति होते हुए भी अधिक कामयाब हो
सकता है बजाय् मैदान वाले के। मगर इसका यह मतलब नही कि
वह मैदान मे आये ही नही। मैदान मे आये बिना उसको पूर्ण
सफलता नही मिल सकती। किले के अन्दर रहकर आत्मशक्तियो को
मजबूत व पूर्णत अधीनस्थ कर ले। इसके बाद वह
मैदान मे उतरे तो कहीं पर भी उसको
असफलता नही मिल सकती ।

{30}

{31}

आज की युवा पीढी अपने स्वस्थ विकास
के लिये चिन्तित है। उसकी प्रतिभा विकसित हो
· रही है, उसके अन्दर उमग है, उत्साह है तथा वे युवक
अपनी जिन्दगी मे कुछ कर गुजरना चाहते है। उनकी अपनी जिज्ञासाएँ
है, परन्तु इसके साथ ही उनको सही मार्गदर्शन की आवश्यकता है।
उनको श्रेष्ठ सहयोगी मिले तथा उनको श्रेष्ठ ग्रथ उपलब्ध कराये जाये,
फिर उनको स्वाध्याय की ओर मोडा जाय ताकि वे ही स्वय अध्ययन और
चिन्तन करके अपने विकास की दिशा का निर्णय करे। यदि युवा पीढी
अपने स्वस्थ विकास का -अपने आन्तरिक संशोधन का आध्यात्मिक मार्ग
पकड लेती है तो फिर सारे राष्ट्र का तथा राष्ट्र के भविष्य का श्रेष्ठ
निर्माण करने मे कोई बाधा नही रहेगी। इसलिये श्रेष्ठ एव निपुण बुद्धि के
विकास के लिये स्वाध्याय की नियमित्त वृत्ति सभी को बनानी चाहिये तथा
युवा पीढी को स्वाध्याय के
प्रति विशेष आकर्षित किया जाना चाहिये।

{32}

वह मेरा सत्कार करेगा, मुझे नमस्कार करेगा,
मेरी प्रशसा करेगा, अत मैं उसे प्रेम की दृष्टि से देखूँ,
मधुर शब्दो से बातचीत करू, जो ऐसा विचार कर ऐसा ही आचरण करता
है और अपने-आपको महात्मा समझता है, तो यह उसका आत्म-पतन है।
वह व्यर्थ मे समय और शक्ति बर्बाद करता है। महात्मा का प्रेम निष्काम
और निर्मल होता है। वह किसी आकाक्षा से किसी को नही देखता और न
मधुर शब्दो मे वार्तालाप ही करता हे। उसकी दृष्टि सहज स्वाभाविक रूप
से किसी पर पड जाती है, तो उसको आत्मीय रूप से देख लेता हे। फिर
वह प्राणी कोई भी हो, उसकी दृष्टि मे जाति का, ऊँच-नीच का, पापी-धर्मी
का भेदभाव व घृणा नही होती। वह प्राणी हित की दृष्टि से समय आने पर
सभी से बातचीत करेगा। बिना अवसर किसी से बातचीत नही करेगा।
उसकी समय-शक्ति व्यर्थ नही जाती। वह मनुष्यो की निगाह से अपने को
नही देखता, अपितु स्वय की
पवित्र निगाह से अपने आपको देखता हे।

यदि किसी वस्तुविशेष पर कोई
व्यक्ति अपना आधिपत्य जमाना चाहता है
तो वह गलती करता है। कोई भी वस्तु किसी व्यक्तिविशेष की हो ही
नही सकती। किसी भी वस्तु का प्रवाह किसी भी व्यक्ति के पास
आए तो उस व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वास्तविक
आवश्यकतानुसार उसका उपयोग लेकर आगे बढाए, न कि अपने
संकुचित दायरे मे उसे अवरूद्ध करे। अगर वह ऐसा नही करता है
तो वह हिसकवृत्ति का भागी बनता है, जो
कि सृष्टि के विपरीत कार्य है।

{32}

{33}

देशकाल, ऋतु के परिवर्तन के
साथ वातावरण और वायुमण्डल का भी परिवर्तन
होता है। इसके साथ जो इन्सान अपने जीवन का
परिवर्तन करता रहता है, वह सदा विजयी रहता है
और जो सभी अवस्थाओ मे समयानुसार परिवर्तन
करने मे असमर्थ रहता है, वह सदा पश्चाताप
करता हुआ हास की ओर अग्रसर होता है,
प्रगति की ओर नही।

समाज का विकास व्यक्ति–विकास मे
अत्यधिक सहायक है। यद्यपि व्यक्ति का विकास
भी उपेक्षणीय नही है, तथापि सामूहिक विकास के समक्ष उसे गौण
माना जा सकता है। वैसे ये दोनो अन्योन्याश्रित है, एक–दूसरे के
पूरक है, फिर भी अपेक्षाकृत दृष्टि से समाज को प्रधानता देनी
होगी। समाज के लिए व्यक्भिाव को समर्पित किया जा सकता है।
समाज व्यापक है। व्यक्ति व्याप्य है। समाज अंगी है, तो व्यक्ति अंग
है। अगी की रक्षा के लिए अग को बलिवेदी पर चढाया जा सकता
है पर होना चाहिए वास्तविक अगी।

{34}

{35}

प्राणी का विकास या
हास उसके मन पर आधारित है।
इसमे बाह्य वातावरण अथवा परम्परागत
सस्कार भी निमित्त बन सकते है, परन्तु यह
कमजोर मन की अवस्था है। शक्तिशाली मन
वाले व्यक्ति को ससार के कोई भी पदार्थ
गिराने मे समर्थ नही हो सकते। मन को
शक्तिशाली बनाने के लिए दृढ सकंल्पूर्वक
लक्ष्य प्राप्ति
मे लग जाना चाहिए।

{36}

यह आत्मा
इस ससार रूपी भवर
मे अनादिकाल से चक्कर काट
रही है कि उसको उसमे से
निकालना ही दुष्कर हो रहा है।
उसको इस भवर मे से निकालने
का कोई साधन है तो यह मनुष्य
तन ही है।

{37}

दुनियॉ क्या देख
रही है ? इस पर
विचार मत करो। तुम क्या देख
रहे हो, इसी का विचार करो। इस
काम से दुनिया क्या कहेगी, यह
न सोचकर, मेरी पवित्रात्मा क्या
कहेगी, यह सोचो।

{38}

एक बार मे
किसी कार्य मे सफलता
न मिले तो हतोत्साह नही होना
चाहिए। अपितु उसी कार्य को
उसी उत्साह के साथ निरन्तर
करते रहने पर अवश्य सफलता
मिलती है।

{39}

प्रतिष्ठा का भय
जीवन को स्वाभाविकता
से दूर हटाता है। मेरी प्रतिष्ठा
कैसे रहे, यह धुन आत्मविकास
में वाधक है। मै सत्य कैसे
प्राप्त करू, यह धुन आत्मा को
ऊपर उठाने वाली है।

{40}

जीवन को किसी पवित्र कार्य
मे लगा देना चाहिए। कार्य की पवित्रता लक्ष्य
के अनुसार आकी जा सकती है। अर्थात् लक्ष्य
पवित्र हे तो उसे प्राप्त करने के लिए साधन
रूप कार्य भी पवित्र है। अगर लक्ष्य अच्छा
नही है तो उसे प्राप्त करने के लिए ऊपर से
अच्छे मालूम होने वाले साधन रूप कार्य भी
पवित्र नही कहे जा सकते।

मन मे जो वास्तविक प्रेम की धारा है,
वह सूर्य की किरणो से भी बढकर तेजस्विनी है।
उसी का विस्तार जीवन की विविध विचारधाराएँ है। निरन्तर विकास पाकर वह धारा आकाश को भी मात कर, व्याप्त होती है, यदि उसको सकुचित दायरे मे न
बांधा जाय। इसको कोई नष्ट नही कर सकता, जला नही सकता, भिगो नही सकता, मगर अज्ञान का पर्दा डालकर अवरूद्ध कर सकता है। एक कमरे मे भी बन्द कर सकता है और दस–बीस कमरो मे भी फैला सकता है। पर जहा यह ठीक से पहुँच जाती हे और अपने परिवार को फैला देती है, वहां से इसको फिर हटाना अशक्य नही तो दु शक्य अवश्य हो जाता हे।

{41}

{42}

इस नमस्कार मंत्र के प्रति अटल आस्था को अपनावे तो आपत्तियो का अस्तित्व ही नही रहेगा–न बाहर और न भीतर। तब मन की गति स्वस्थ भी हो जायेगी तथा निराबाध भी। तब न संकल्प डगमगायेगा, न पुरुषार्थ टूटेगा और न साहस ही छूटेगा। अटल आस्था सभी आत्मिक गुणो को सन्तुलित बनाये रख कर आत्मा को विजय के पथ पर अग्रसर बना देगी।

यदि मनुष्य जीवन में अटल
आस्था को अपनाले तथा उसकी महत्ता
को हृदयगम करले तो नमस्कार मंत्र का अपूर्व चमत्कार भी वह देख सकता है। इस मंत्र को सिद्ध करने वाले के सामने देवी देवता भी चरणो मे नतमस्तक हो जाते है। इस मत्र के साधक के सामने इस लोक से सम्बन्धित या परलोक से सम्बन्धित कितनी ही आपत्तियाँ क्यो न
आवें–वे अपने आप छट जाती है।

{43}

{44}

किसी भी कार्य की आत्मा
मे तन्मय होने पर ही उस कार्य
मे सफलता मिल सकती है। तन्मयता मे दो
दृष्टियॉ है-आसक्ति और अन्वेषण। आसक्त
प्राणी उसी मे विलीन हो जाता है।अन्वेषक
उसमे से शक्ति- संपादन कर उन्नति के शिखर
पर पहुँच जाता है। विवेक पूर्ण तन्मयता से
विकास हो सकता है। पर अविवेक से ह्रास
परिस्थिति से विचार बनते है, पर विचारो से
भी परिस्थिति बनती है।

{45}

आज मनुष्य
कितने जजालो मे
डोल रहा है कि उसकी गति
या तो विगति बन रही है या
वह अगति बन रही है। क्या
आज की अपनी दूषित वृत्तियो
से वह पुन मानव जन्म प्राप्त
कर सकेगा।

{46}

भौतिकता
स्थूल साधन है जबकि
आध्यात्मिक वह सूक्ष्म
साधना है जिसके द्वारा आत्मा
अपने सम्पूर्ण बधनो से मुक्त
होकर मोक्ष की प्राप्ति कर
सकती है।

{47}

भौतिक
उपलब्धियो मे मानव
कितना ही ऊँचा क्यो न पहुँच
जाय, आन्तरिक शक्ति एव शाति
के अभाव मे वह दिशाहीन ओर
गतिहीन ही बना हुआ है।

{48}

दृढ निश्चय
एव तद्नुसार आचरण
ही सफलता की कुञ्जी
है। किसी भी तरह की आपत्ति
से लेशमात्र भी नही घबराना
चाहिए। आपत्ति को आपत्ति न
मानकर जीवन- विकास की
साधना-सहचरी
मानना चाहिए।

{49}

इंसान जब तक बाहरी
ज्ञान को ही सब कुछ समझता
है, तब तक वह आन्तरिकता से अनभिज्ञ ही
बना रहता है। लेकिन जब कभी किसी शुभ
सयोग से अन्दर मे भरे हुए ज्ञान की झलक पा
लेता है तो फिर उसे उसकी जिज्ञासा लग
जाती है। तब वह अपनी आतरिकता की खोज
करने लगता है और एक दिन उस स्थल पर
पहुँच जाता हे जिसे
अन्तरात्मा कहा जाता है।

मनुष्य शरीर मे अनेक तत्त्व प्रवेश
करते है। वे यथावसर यथा समय पुन
मार्ग पाकर या मार्ग बनाकर निकलते रहते है।
अन्दर के विकारो से प्रभावित वचनवर्गणाओ के पुद्‌गल भी
प्राणीवर्ग के मस्तिष्क मे, संस्कार–केन्द्र मे प्रविष्ट होकर
यथासमय विकास के साथ ग्लेण्ड्स कोषो मे रासायनिक पुट
लगने वाले तत्वों में परिणित होते हुए अपने सजातीय तत्वों को
तैयार कर शरीर मे
यथास्थान यथावकाश अपना–अपना कार्य
करते हुए शरीर से निकलते हैं।

{50}

{51}

एक व्यक्ति को खजाना
पाने की इच्छा तो है लेकिन
वह उसको खोजने के लिये बाहर
ही बाहर घूमता रहे लेकिन अपने ही घर के गहरे
स्थानो मे खजाने की खोज नही करे जबकि
हकीकत मे वहाँ बहुत बडा खजाना छिपा हुआ हो
तो उस व्यक्ति को क्या कहेगे ?

मैने इस विश्व मे जन्म लिया
है। मानवोचित पदार्थो पर सबका
स्वाभाविक जन्मसिद्ध अधिकार है। अत मै
किसी की गुलामी या चापलूसी क्यो करू ? मुझे
अपने कर्तव्य को ध्यान मे रखकर विवेकपूर्वक पुरुषार्थ करते रहना
चाहिये। आवश्यकता की पूर्ति अवश्य होगी। आत्म–ग्लानि कभी नही
होनी चाहिए। अनावश्यक एव व्यर्थ चिंतन को दूर कर सदा
प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। बाह्य प्रवृत्तियो मे समय–समय पर रूपान्तर
होने पर भी आवश्यक कार्य किसी–न–किसी
रूप मे होते ही रहते हैं।

{52}

{53}

जिन आत्माओ ने महामत्र नवकार को सिद्ध किया, उनकी साधना की अवस्था मे चाहे उनके शरीर की चमडी उधेडी गई, सिर पर धधकते हुए अगारे रखे गये या कि अन्य प्रकार के सकट आये, लेकिन वे साधक अपनी साधना मे तनिक भी विचलित नही हुए। यह उनकी अटल आस्था का ही सुपरिणाम था।

{54}

भ्रम-भ्रान्ति भी मनुष्य को किंकर्त्तव्यविमूढ वना देती है। वह न यह कर सकता है, न वह कर सकता है। उसकी दशा त्रिशंकु जैसी हो जाती हे। मद मे मनुष्य अनिर्णय करता हे, लेकिन भ्रान्ति मे वह अनिर्णय की स्थिति मे हो जाता है।

{55}

जिन आत्माओ को नरक मे जाने के वाद वहॉ की यातनाऍ सहने के कारण विगत मे अपने किये हुए पापो का भान हो जाता है, तो फिर वे अपने आपको सुधारने का प्रयत्न करती हे।

{56}

नेत्रप्रेम और नेत्रमोह दोनो मे महान् अन्तर हे। नेत्रप्रेम भ्रातृ-भाव और विश्ववात्सल्य से ओत- प्रोत होता है। जवकि नेत्रमोह मे व्यक्तिभाव, शत्रुभाव और व्यक्तिक वात्सल्य रहता हे।

{57}

प्रत्येक मनुष्य का सामान्य लक्ष्य समाज का सर्वाङ्गीण विकास होना चाहिए। उसकी पृष्ठभूमि के लिये सर्वप्रथम प्रत्येक मनुष्य को आर्थिक एवं शैक्षणिक समानता की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति के लिए प्रत्येक प्राणी को तन-मन-धन से प्रयत्न करना चाहिए।

{58}

यह शारीरिक सम्पदा जीव को कुदरत से प्राप्त हुई है। इसमे खजान्ची के तोर पर मन हे ओर आत्मा अध्यक्ष है। अत आत्मा का यह कर्तव्य हो जाता हे कि मन पर पूरा अकुश रखे। यह सम्पत्ति व्यर्थ या अनावश्यक कार्यो मे व्यय न हो ओर न इस पर साम्राज्य वृत्ति ही आने पावे। अगर ऐसा ध्यान नही रखा गया तो इस सम्पत्ति से कुछ भी सत्कार्य नही होगा। यह व्यर्थ ही नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगी।

आज्ञा का पालन तभी संभव बनता है जब आज्ञा के प्रति आत्मा मे समग्र रूप से अर्पणा का भाव जागृत बन जाता है। आज्ञा का पालन ही मेरे लिये सर्वोच्च है–यह अनुभाव तीव्रतम बन जाना चाहिये। एक सैनिक को यह देखने का कभी प्रशिक्षण नहीं मिलता है कि दी हुई आज्ञा कैसी है ? जैसी भी आज्ञा है, उसको उसका पालन करना होता है। इसे ही सैनिक अनुशासन कहते हैं। प्रभु की आज्ञा के सम्बन्ध मे आत्मा पर भी ऐसा ही सैनिक अनुशासन लागू किया जाना चाहिये। आध्यात्मिक क्षेत्र में तो आज्ञा का अनुशासन पूर्ण रूप से स्वैच्छिक होता है और जो इस दिशा मे जीवन का समर्पण करता है, वह अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करता है।

{59}

{60}

पंचमकाल भी अभी एक प्रकार के पागलपन का चल रहा है। संसार के विषयों मे अधिकांश लोग पागल बने हुए है और जो हकीकत मे पागल नहीं हैं, वे भी पागलों के साथ पागलपन का ढोंग नही करे तो उनके साथ उपेक्षा का व्यवहार किया जाता है। इस पंचमकाल के रूपक का जितना वर्णन किया जाय, कम है। यह काल विचित्रताओं से ही नही, विसगतियो से भी भरा पडा है।

कर्तव्य कर्म का भान न होने से प्राणी अनेक चिन्ताओं को दिल में स्थान दे देता है। इससे वह स्वयं दु खी होता है। उन्ही चिन्ताओ का प्रतिबिम्ब जब उसे चारों ओर से दिखाई देता है, तो वह सहसा भय–भ्रान्त होकर अनुभव करता है कि मै महान् दु खी हूँ और अमुक जन मेरे दुश्मन है, ये मुझे चारों ओर से कष्ट पहुँचा रहे है, मगर यह असस्कारित मन का नमूना है, अतएव संस्कारित मन बनाना साधक का प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए।

{61}

{62}

हे आत्मन् ! सारा संसार
भी यदि तुम्हारी निन्दा-भर्त्सना व
तिरस्कार करे, तो तू लेशमात्र भी उत्तेजना व उदासीनता
मत ला, बल्कि इसके विपरीत यह चिन्तन कर कि यह सब
किस कारण से हो रहा है ? अगर उसमे कोई वास्तविक
कारण मालूम हो जाय, तो उस को दूर करने
की कोशिश कर और निन्दा आदि
को सहायक रूप मे देख।

{63}

जिसका लक्ष्य
अन्तर्मुखी बन जाता
है, उसकी लिप्तता भी समाप्त हो
जाती है। उसका जीवन निर्लिप्त
बन जाता है और निर्लिप्त बनता
है तो पूर्णतया निश्चिंत भी
बन जाता है।

{64}

निर्लिप्तता आत्मा
को आत्मस्थ बना देती
है और आत्मस्थ हो जाने से वह
स्वस्थ हो जाती है। स्वस्थ
आत्मा ही अपने परिणामो की
सर्वोच्चता के साथ परमात्म
स्वरूप का वरण करती है।

{65}

प्राणी के विकास मे भय सबसे
अधिक बाधक है। इस पर विजय पाना
सामान्य काम नही है। यह हर समय प्राणी को गिराता रहता
है। उदासीनता एव मलीनता इसी की सहचरी है। निर्भय प्राणी
कभी हतोत्साह नही होता। उसके मन पर कभी ग्लानि या
सुस्ती नही आती। सत्यपालन मे निर्भय व्यक्ति ही सफल हो
सकता है। जीवन का विकास या नवीन खोज निर्भय व्यक्ति ही
कर सकता है ओर वही वास्तविक प्रामाणिक
पुरुषो की श्रेणी मे गिना जा सकता है।

क्रोधी अपने गुणो को ही नही जलाता, अपने
रक्त को भी जलाता हे तथा अपने क्रोधी स्वभाव ओर
व्यवहार से दूसरे लोगो को भी बुरी तरह से जलाता हे। सबसे
ज्यादा बुरी बात तो यह होती है कि क्रोधी की क्रिया से क्रिया ओर
प्रतिक्रिया की जटिल श्रृखला बन जाती हे जिसका अन्त कठिनता
से ही आता है। यह श्रृखला कितनी अनीति, अत्याचार, कदाचार
और पापपूर्ण हिसा तक पहुँच सकती हे,
उस पतन की संभवत सीमा नही हे।

{66}

जिस तरह के धरातल पर खडे होगे,
उसक अनुरूप ही दृष्टि दौडेगी और धारणा बनेगी।
बहिरात्मा जब शरीर के धरातल पर खडी होकर दृष्टि
और मन को दौडती हैं तो वैसी ही दृश्य दिखाई देते है।
जीवन को तब शरीर मे सीमित करके ही देखा जाता है।
शरीर है तो जीवन है और शरीर गया तो जीवन भी चला
गया ऐसा समझ मे आता है। यह धरातल का असर होता
है। जिस प्रकार के आधार को मानकर देखा और सोचा
जाता है, तब दृष्टि और मन उन्ही सीमाओं के अनुसार
चलते है। इसलिये जीवन को सही रूप से समझने के
लिये धरातल को बदलना होगा। तब शरीर का
आधार छोडकर आत्मा के आधार का पकडना
और गहराई से समझना होगा।

{67}

सजग व्यक्तियो को चाहिए कि वे रूढियों के गुलाम
न रहकर उन कार्यो को त्यागे, जो अनुचित, हानिप्रद और
निरर्थक है। रूढियॉ प्राणहीन ही होती है मृत शरीरो की तरह-
जिनमें फिर से प्राण नही डाले जा सकते है । इस कारण प्राणहीन
रूढियो का केवल त्याग ही करना होगा। प्राणहीन रूढियो की गुलामी
किसी भी रूप में बुद्धिमानी या सद्बुद्धि का परिचय
नही देती। अत इन रूढियों को जल्दी से जल्दी छोड कर
अपनी चाल और समाज के चलन को शुद्ध बनाइये।

{68}

{69}

कहॉ तो जमीन पर रहते हुए पत्थर फैकने का प्रसंग ओर कहॉ आकाश मे उडते हुए अणुवम गिराने का प्रसग ? यह मानव का विकास है या पतन। भौतिक विज्ञान, सर्जन के लिए विनाश के लिए घुड दोड लगा रहा है।

{70}

आत्म-गर्व विकास के लिए होना चाहिए, न कि दूसरे को नीचा दिखाने के लिए।

{71}

प्रत्येक कार्य मे स्वालम्वी एवं स्वतत्र इसान ही कुछ कर सकता हे। जनहितकारी मौलिक विचार ही सच्चे रूप मे जनता का प्रतिनिधित्व कर सकते है।

{72}

इस मानव जीवन का सदुपयोग यह होगा कि इसमे आत्मशुद्धि को विकसित बनाकर पुण्यवानी की जमा पूंजी मे और वढोतरी करे तथा समूचे कर्मवध का क्षयोपशम करते हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रगामी वने।

{73}

साधु के त्यागमय सम्पर्क से एक व्यक्ति के मन मे आत्मोन्नति का अकुर फूटता है तो सतो की प्रतिवोध सहायता से वही छोटा सा अकुर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है।

{74}

यदि वच्चो को सस्कारित करना है तो, पहले स्वय को सस्कारित वनना होगा।

{75}

व्यसन ग्रस्त व्यक्ति द्वारा सतान को व्यसन, युक्त वनाने की कल्पना योवल कल्पना ही है।

{76}

जिन आत्माओ को नरक मे जाने के वाद वहॉ की यातनाऍ सहने के कारण विगत मे अपने किये हुए पापो का भान हो जाता हे, तो फिर वे अपने आपको सुधारने का प्रयत्न करती हं।

क्रोधी अपने गुणो को ही नही जलाता, अपने
रक्त को भी जलाता है तथा अपने क्रोधी स्वभाव और
व्यवहार से दूसरे लोगो को भी बुरी तरह से जलाता है। सबसे
ज्यादा बुरी बात तो यह होती है कि क्रोधी की क्रिया से क्रिया और
प्रतिक्रिया की जटिल श्रृंखला बन जाती है जिसका अन्त कठिनता
से ही आता है। यह श्रृखला कितनी अनीति, अत्याचार, कदाचार
और पापपूर्ण हिसा तक पहुँच सकती है,
उस पतन की सभवत. सीमा नही है।

{66}

जिस तरह के धरातल पर खडे होगे,
उसक अनुरूप ही दृष्टि दौडेगी और धारणा बनेगी।
बहिरात्मा जब शरीर के धरातल पर खडी होकर दृष्टि
और मन को दोडती हैं तो वैसी ही दृश्य दिखाई देते है।
जीवन को तब शरीर मे सीमित करके ही देखा जाता है।
शरीर है तो जीवन है ओर शरीर गया तो जीवन भी चला
गया ऐसा समझ मे आता है। यह धरातल का असर होता
है। जिस प्रकार के आधार को मानकर देखा और सोचा
जाता है, तब दृष्टि और मन उन्हीं सीमाओ के अनुसार
चलते हैं। इसलिये जीवन को सही रूप से समझने के
लिये धरातल को बदलना होगा। तब शरीर का
आधार छोडकर आत्मा के आधार का पकडना
और गहराई से समझना होगा।

{67}

सजग व्यक्तियो को चाहिए कि वे रूढियों के गुलाम
न रहकर उन कार्यो को त्यागे, जो अनुचित, हानिप्रद और
निरर्थक है। रूढियॉ प्राणहीन ही होती है मृत शरीरों की तरह-
जिनमें फिर से प्राण नही डाले जा सकते है । इस कारण प्राणहीन
रूढियो का केवल त्याग ही करना होगा। प्राणहीन रूढियों की गुलामी
किसी भी रूप में बुद्धिमानी या सद्बुद्धि का परिचय
नही देती। अत इन रूढियो को जल्दी से जल्दी छोड कर
अपनी चाल और समाज के चलन को शुद्ध बनाइये।

{68}

{69}

कहॉ तो जमीन पर रहते हुए पत्थर फैकने का प्रसग और कहॉ आकाश मे उडते हुए अणुबम गिराने का प्रसग ? यह मानव का विकास है या पतन। भौतिक विज्ञान, सर्जन के लिए विनाश के लिए घुड दौड लगा रहा है।

{70}

आत्म-गर्व विकास के लिए होना चाहिए, न कि दूसरे को नीचा दिखाने के लिए।

{71}

प्रत्येक कार्य मे स्वालम्बी एवं स्वतत्र इंसान ही कुछ कर सकता है। जनहितकारी मौलिक विचार ही सच्चे रूप मे जनता का प्रतिनिधित्व कर सकते है।

{72}

इस मानव जीवन का सदुपयोग यह होगा कि इसमे आत्मशुद्धि को विकसित बनाकर पुण्यवानी की जमा पूजी मे और बढोतरी करे तथा समूचे कर्मबध का क्षयोपशम करते हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रगामी बने।

{73}

साधु के त्यागमय सम्पर्क से एक व्यक्ति के मन मे आत्मोन्नति का अकुर फूटता है तो सतो की प्रतिबोध सहायता से वही छोटा सा अंकुर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है।

{74}

यदि बच्चो को सस्कारित करना है तो, पहले स्वय को सस्कारित बनना होगा।

{75}

व्यसन ग्रस्त व्यक्ति द्वारा सतान को व्यसन, युक्त बनाने की कल्पना केवल कल्पना ही है।

{76}

जिन आत्माओ को नरक मे जाने के बाद वहॉ की यातनाऍ सहने के कारण विगत मे अपने किये हुए पापो का भान हो जाता है, तो फिर वे अपने आपको सुधारने का प्रयत्न करती है।

स्वच्छ मन एव शान्त मस्तिष्क से
प्रकट किये गये विचार अमूल्य एव कल्याणप्रद
होते है। स्वानुभूति पूर्वक प्रयुक्त सीधे-सादे वाक्य
जितने असरकारक होते है, उतने ही इधर-उधर
से लिए हुए पाण्डित्यपूर्ण वाक्य नही। वचन एक
दर्पण है। चतुर पुरुष वचनो के अन्दर इन्सान
का आन्तरिक प्रतिविम्ब देख सकते हैं।

{77}

पैनी निगाह से देखा जाय तो
वर्तमान प्रचलित परीक्षापयोगी साहित्य
साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से ओत-प्रोत ही मिलेगा।
ऐसे साहित्य से विद्यार्थी विकास की प्रकाशमय किरणों
को छोडकर अन्धकार मे भटकता रहता है। क्योकि
बचपन में ही वह अंधपरम्परा को कोल्हू का बैल बना
दिया जाता है। फिर वह आगे कैसे बढ सकता है ?
रूढिपूर्ण विनाशकारी परम्पराओ को सामान्य मनुष्य नही
हटा सकता। उसे हटाने मे वास्तविक ज्ञान व साहस
की अत्यधिक आवश्यकता होती है, अनुवादित
पदार्थ का उतना महत्व नही, जितना
आविष्कृत पदार्थो का है।

{78}

इन्सान प्रतिकूल वातावरण एवं सतप्त
स्थान से हटने की कोशिश करता है। वह
सोचता है कि यह मेरी प्रगति मे बाधक है। ऐसा
व्यक्ति सच्ची और ठोस प्रगति तभी सभव है, जबकि
प्रतिकूल वातावरण मे प्रसन्नचित होकर प्रगति की जाये।
ससार के सभी प्राणी प्राय बिना अपराध किसी को
नही सताते। यह प्रकृति का नियम-सा है कि
आघात होने पर प्रत्याघात होता है।

{79}

{80}

जिसमे जितनी सजावट
होगी, उसमे उतना ही नकलीपन
होगा। आडम्बर दम्भता का द्योतक
है। जिसको वस्तुस्वरूप का ज्ञान
नही होता, वही आडम्बर को
पसन्द करता है।

{81}

धृति-सहित
कृति कला का रूप
ले लेती है। जबकि
धृति-रहित कृति निर्जीव
परिश्रम मात्र है।

{82}

प्रत्येक प्राणी
अपने बचाव का उपाय
अपने आप सोचता है,
इसी से वह विकास की
ओर बढता है।

{83}

पूर्ण बह्मचारी ही
वास्तविक जीवन जी सकता
है। नियमित, सयमित सात्विक आहार- विहार
इसमे बहुत सहायक सिद्ध होता है। सादगी
जीवन को पुष्ट करती है निर्भयता ही जीवन
विकास की
प्रथम भूमिका है।

{84}

किसी भी वस्तु को
स्वपुरुषार्थ से प्राप्त करना
चाहिए। प्राकृतिक साधनो से प्राप्त
वस्तु चिरस्थायी एव सुखप्रद होती है।
परपौरुष और अप्राकृतिक साधनो से
प्राप्त (सम्पादित) वस्तु चिरस्थायी एव
पूर्ण सुखप्रद नही होती।

{85}

जिस प्रेम से
शक्तिसचय होता है,
वही वस्तुत सच्चा प्रेम
है। जिससे शक्तियो का
नाश होता है, वह
प्रेम नही है।

{86}

मृत्यु प्रत्येक
देहधारी की वृत्ति
है। इस पर विजय
पाना मृत्यु को परास्त
करना है।

{87}

मनुष्य जीवन ससार के
सभी जीवनो मे सर्वश्रेष्ठ जीवन
है और यही एक मात्र ऐसा जीवन है
जिसमे यदि ज्ञान, श्रद्धा, सयम और
पुरुषार्थ का सम्यक् सयोग बिठा ले
तो वह मनुष्य अपने चरम लक्ष्य
को प्राप्त कर सकता है।

डरावनी वन-घाटियों मे जब प्रवेश
करना हो तो संकल्प एवं पुरुषार्थ के साथ
श्रद्धा का सगम करा लो और अपने इष्ट का स्मरण
करते हुए बढ चलो। अरिहंत देवो ने इन घाती कर्मो को हटाया
है और नष्ट किया है। वे इस प्रकार
वन-घाटियो को लांघ गये और उन्होने
केवल-ज्ञान प्राप्त कर लिया।

{88}

आज का मानव समाज प्राय गुलाम मनोवृत्ति से चल रहा है।
रूढि तथा परम्परा मानो जीवन की सगिनी बन गई है। बुद्धि काम
-सम्राट के किले मे बन्द-सी मालूम होती है। साहित्कार, कलाकार, अध्यापक,
पत्र-सम्पादक आदि मे से अधिकाश लोगो ने अपने जीवन का चरम लक्ष्य प्रेम
के नाम पर मोह का सम्पादन ही मान रखा है। उनको वही साहित्य, वही कला, वही
कहानी, वही समालोचना पसन्द आयेगी, जिसमे पशुवृत्ति से भी निदिन्त
प्रणय प्रसगो का रोचक वृत्तान्त पाया जाता हो। इस वृत्तान्त का जो व्यक्ति
अधिक रोचक ढग से सम्पादन करता है,उसी को सर्वश्रेष्ठ साहित्कार माना जाता है।
पुरस्कार भी उसी को अधिक मिलता है। यह युग का सृष्टा-सा समझा जाने लगता है।
ऐसी अवस्था मे कौन व्यक्ति ऐसे श्रेष्ठ पद को पाने हेतु लालायित
नही होगा? प्रत्येक व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण इसी पद को पाने के लिए आकाश मे उडने
की कोशिश करता है। वैसा ही साहित्य,वैसी ही गोष्ठी,वैसी ही सोसायटी और वैसे ही
वायुमण्डल मे वह अपने को धन्य समझता है। उसकी बुद्धि उसी दायरे के अन्दर
चक्कर काटती है। उस घेरे से बाहर रह जाने पर वह अपने को अभागा, पुण्यहीन
समझता है और यह दावा करता हैकि मै विकास कर रहा
हू। यही अवस्था अधिकाश व्यष्टि एव समष्टि मे बनी हुई है। इसको
आधुनिक मानव समाज की गुलामी न कहे तो क्या कहे ?

{89}

घबराओ मत । आत्मा की अनन्न
शक्तियों को प्रकट करना चाहते हो तो
अपनी आत्मा को ही मित्र और साथी मानो तथा
आत्मस्थ बनने का अभ्यास करो। आत्मा का इस
कठिन यात्रा मे कोई प्रधान सम्बल है तो
वह है अटल श्रद्धा इसे न भूले।

{90}

{91}

हार-जीत की दृष्टि से किया
हुआ विचार-विमर्श कभी भी निर्दोष
नही हो सकता, क्योकि उसमे बुद्धि
स्वच्छ एवं निष्पक्ष नही रह सकती। जिस
विचार से हिसक वृत्ति की प्रधानता का उद्गम
होने लगता है, वह विचार इसानियत के
विपरीत है।

{92}

जो मनुष्य
अपने जीवन मे लोगो
की नि स्वार्थ भलाई करते है
तथा पीडित मानवता की सेवा
करते हैं, वे पुन मनुष्य योनि
को प्राप्त करते है।

{93}

अतीत, अवस्था
का स्मरण,वर्तमान का
अनुभव,भविष्य का चित्रण
सामने रखकर प्रवृत्ति करने
वाला व्यक्ति जीवन मे
सफलता का अनुभव
करता है।

{94}

मै किसी के साथ
द्वैत भाव क्यो रखू ? क्यो
न प्रत्येक प्राणी को स्व-स्वरूप
की तरह देखूं। यह बात
उपदेश रूप न होकर
अनुभूति रूप हो।

{95}

इन्सान के विचारो का
प्रभाव प्रकृति पर पडता है और
प्रकृति का प्रभाव इन्सान के ऊपर।
मगर इन्सान सही रास्ते पर चले तो,
प्रकृति को भी बदल सकता है। प्रशस्त
वायुमण्डल तैयार कर इच्छानुसार
प्रगति की जा सकती है।

{96}

सामूहिक
शक्ति से
सम्पन्न कार्य सस्ता,
सहज एव सफल
होता है।

{97}

सूक्ष्म निरीक्षण
दूरदर्शिता का द्योतक है।
वह इन्सान को
आपत्तियो से बचा लेता
है।

{98}

कृत्रिमता स्वाभाविकता
से विपरीत नही आती, तब तक
कोई भी व्यक्ति वास्तविक विकास
की दिशा मे स्वयं प्रगति न कर सकता है
और न अन्य को
करवा सकता है।

हम अवपर ही आत्मा को जाने,
उसको उस के मूल स्वरूप से पहिचाने तथा
भीतर गहरे उतर कर आत्म-दर्शन करे- यह हमारी
समग्र कर्मठता का प्रेरक लक्ष्य बन जाना चाहिये। यह ऐसा कार्य
है कि जसके लिये कही बाहर भागने दौडने की आवश्यकता नही
है, न ही इधर-उधर कष्ट करना है। इसके लिये तो आत्म दर्शन
की भावना ही बलवती वन जानी चाहिये।

{99}

अन्त करण मे आत्म-दर्शन की तीव्रता
जाग उठे। इतनी तीव्रता कि प्राण जाय पर
प्रण नही जाय। जो जीवन-उत्थान का सकल्प लिया
जावे, उस पर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म में पूर्ण श्रद्धान रखकर अटल-अडोल
रहा जाय। भयंकर से भयकर विपत्ति आ जावे - कोई शरीर की त्वचा
भी उतारने लगे, शरीर के टुकडे-टुकडे भी करने लगे तब भी संकल्प के
अनुसरण मे दुर्बलता नही आवे और वीतराग मे आस्था तथा आत्मा-
परमात्मा मे निष्ठा दृढतर बनती जावे। इस प्रकार की दृढता मानव
जीवन मे व्याप्त होती है तब वह मानव इस जीवन
मे भी निहाल हो जाता है।

{100}

दिव्य दृष्टि एव आन्तरिक ज्ञानमयता
इसी आत्मा से उद्भूत होती है। इन शक्तियो
के सजृन करने का सामर्थ्य इसी आत्मा में है। यही आत्म स्वरूप
जब विशुद्धता एवं विराटता की अवस्था
को प्राप्त होता जाता है तो इसी स्वरूप मे
से ये शक्तियाँ प्रस्फुटित होती है।

{101}

{102}

बाह्य जीवन, मुख्य
रूप से भीतरी जीवन
की प्रेरणा से चलता है अत.
शक्ति का मूल स्थान बाहर
नही, भीतर होता है।

{103}

आत्म दर्शन
अब तब तक नही होगा,
जब तक ससार दर्शन से
अलग
नही हटेगे।

{104}

एक अपूर्ण
वयिक्त न तो पूर्ण
पुरुष की तरह सत्य को
देख सकता है, न सत्य
का कथन कर सकता है।

{105}

बाह्य दृश्यो मे ही
रमण करते हुए जीवन
को समाप्त कर देना - यह
मानव जीवन के प्रति सबसे
बडा अन्याय है।

{106}

बह्मचार्य जीवन का मूल है।
इसी से जीवन की सारी रौनक
है। आधुनिकता के भुलावे मे आकर
इसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए।
इसकी उपेक्षा करना सारे जीवन की
महत्ता को तिलाजलि देना है।

{107}

दिल के विचारो
से देह का निर्माण
होता है। जैस दिल वैसी
देह। बुद्धि सरकार पैदा
होते है और सस्कारो से
बुद्धि का निर्माण
कदाचित्।

{108}

आवेश दिल
की कमजोरी का सूचक
है। आवेश मे आकर किया
जाने वाला कार्य त्रुटिपूर्ण
होता है। अत सत्यान्वेषक
को आवेश से दूर
रहना चाहिए।

{109}

बुद्धिमान् मनुष्य वही है जो
अपने जीवन से दुनिया को नई
प्रेरणा देकर नवीन वस्तु की ओर आकर्षित
करे। आन्तरिक द्वन्द्व को शान्त करने की कला
जिसको आ गई,
वह बाहर के द्वन्द्व को सहज
ही शान्त कर सकता है।

जो व्यापार के तौर पर उपदेश
देता है, वह उसे जीवन मे वहुत कम
उतारता है, क्योकि उसका लक्ष्य उपदेश द्वारा यश
अथवा सम्पति कमाना होता है। जो व्यापार के तौर पर नही,
अपितु स्वानुभूति को जिज्ञासुओ के समक्ष रखता है, वह अपने
जीवन मे अधिक आचरण करने वाला होता है, क्योकि उसका
लक्ष्य जीवन सुधार का
होता है, न कि प्रशंसा प्राप्ति का।

{110}

सुख और सम्मान के लिए लालायित
मत रहो। अपमान और दु.ख से दूर मत
भागो। जहॉ अपमान होता हो, चित को दु.ख व
सक्लेश पैदा करने वाले उत्तेजात्मक बर्ताव हो, वहां
जाओ और अपने मन-मस्तिष्क की परीक्षा करो कि ऐसी
अवस्था मे तुम्हारा मस्तिष्क कितना शान्त रहता है ?
तुम्हारे मन मे कितनी पवित्रता बनी रहती है ? उस समय
यदि तुम्हारा मस्तिष्क शान्त रहे, मन मे अपवित्रता न आये
और कर्तव्य कर्म पर मजबूत रह सको तो समझ
लो कि तुमने कुछ इन्सान्यित प्राप्त की ।

{111}

मन और मस्तिष्क से किये जाने
वाले विवेक युक्त ज्ञान से ही जीवन मे
परिवर्तन आता है। मात्र दिमागी ज्ञान फोनोग्राफ
की चूडी के समान है। उससे इच्छित लाभ नही हो
सकता। केवल मन के ज्ञान से स्वहित कुछ अश मे
हो सकता है, मगर व्यापक जनहित नही हो
सकता। वह एक प्रकार से पगु है ।

{112}

{113}

जो भव्य आत्माएँ
अपना कल्याण करना
चाहती है, उन्हे भगवान् के इन
चरणो के प्रति अपने आपको समर्पित
कर देना चाहिए—श्रुत धर्म एव चारित्र
धर्म को अपने आचरण मे
रमा लेना चाहिए।

{114}

श्रेष्ठ सन्तो
के समागम का
सत्प्रभाव अतुलनीय
होता है।

{115}

श्रेष्ठ सहयोगी
का विकल्प केवल
श्रेष्ठ ग्रंथ ही हो
सकते हैं।

{116}

जिधर प्रभु का संकेत
हो उधर ही गमन—करना इस
प्रकार की भावना ही जीवन को
उज्ज्वलमत बनाने वाली होती है।
वैसे अत्यन्त भाग्यशाली आत्माएँ
अपने जीवन मे उच्चा आदर्श
उपस्थित करती है।

{117}

आत्मा समग्र रूप
से आज्ञा के प्रति अपिर्तत हो
जाती है, तभी आज्ञा का पालन होता
है जब आज्ञा का पालन होता है तो
उसका सुफल भी सामने
आकर रहता है।

{118}

आत्मा शुद्धि
के लिये आध्यात्मिक
ग्रथो का ही विशेष
रूप से अध्ययन एव
मनन किया जाना
चाहिए।

{119}

आज सभी
क्षेत्रो मे जो विषमता
व्याप्त हो रही है, उसके
मूल मे आध्यात्मिक
साधना का ही
अभाव है।

{120}

अर्न्तजगत् कर सृष्टि का
जब आपको ज्ञान होगा, तो आप
आनन्द विभोर हो जायेगे, एक वक्त
भी दृष्टि अन्दर की ओर चली गई तो
फिर बाहर का दीवानापन खत्म हो
जायेगा और अन्दर मे ही गहरी
अभिरूचि लग जायेगी।

सकल्प सिद्धि के मार्ग मे कितनी ही आपत्तियॉ क्यो ने आवे- वह आत्मा अपने लक्ष्य से किसी भी रूप मे विचलित नही होती हे क्योंकि उसे अपनी अटल आस्था का पूर्ण सम्वल होता है। श्रेष्ठ सकल्प, अटल आस्था एवं प्रवल पुरुषार्थ की त्रिपुटी मिल जाये तव आपत्तियॉ पर विजय पाना कठिन नही रहता हे।

{121}

कुछ व्यक्ति यह कहा करते है कि हमने अमुक कार्य के लिए बहुत प्रयत्न किये, मगर उसमे सफलता नही मिली। क्या करे ? हमारे भाग्य अच्छे नही है और जब तक भाग्य अनुकूल नही होता, तव तक प्रयत्न करना व्यर्थ है। देखिये, न पहले लोग मेरी कितनी इज्जत करते थे और अब मुझे घृणा की दृष्टि से देखते है। वही मैं हूं, जो पहले था और वही मेरा कार्य है, जो पहले था। फिर भी यह अवस्था जो हुई, यह सब भाग्य का चमत्कार है।पर वे सब बातें अन्तर का सूक्ष्म निरीक्षण नही होने से कही जाती है। वस्तुत देखा जाय तो विफलता का कारण अपनी वृत्तियो के प्रति सतत् जागरूक नही रहता है। इंसान कुछ भी सत्कार्य प्रारम्भ करता है, उस समय उसकी उस कार्य मे तल्लीनता रहती है और उसी समय प्रारम्भिक सफलता की रौनक उसके सामने आती है। उस रौनक को देखकर वह अपने आप पर काबू नही रख सकता। वह यह अनुभव करने लगता है कि मै ही इस संसार मे सब कुछ हूं, मेरे सामने कौन व्यक्ति ठहर सकता है। मै सभी दृष्टियो से परिपूर्ण हो चुका हू आदि। ये ही विचार उसके विफलता के कारण बनते है और उसी समय से वह हास की ओर चल पडता है।

{122}

चाहे ऊपरी शान कितनी ही क्यों न हो- लेकिन जब तक भीतरी जीवन उलझा हुआ रहता है, तब तक न तो आन्तरिक शक्ति का विकास होता है और न ही आन्तरिक शाति मिलती है। ये दोनो नही है तो दिशा और गति भी नही है। वहॉ विकास की भावना का भी हास होने लगता है।

{123}

{124}

यह मानव जीवन
आन्तरिकता की गहराइयो को
छूने के लिये है। यह जीवन अन्तरात्मा
मे बैठकर आत्मिक शक्तियो को पाने के लिये
है एव विषम स्थितियो का समानीकरण करके
सदा के लिये
सुखी बनने के लिये है।

{125}

कोई भी
व्यक्ति तब तक
सही ज्ञान प्राप्त नही कर
सकता, जब तक
वह हटवाद से मुक्त
नही होता।

{126}

तर्क को
छैनी या टाकी
के रूप मे मान सकते है
जो अनगढ पत्थर को
सुघड बना
देती है।

{127}

सच्चे सन्तो के समागम
मे जावे, उनके सामने व्यर्थ का
अपना अह भाव बनाये न रखे तथा
सन्तो से जो तत्त्व मिले, उसे अपने
जीवन मे ग्रहण करके आत्मोन्नति
का मार्ग प्रशस्त बनावे।

{128}

जो सच्चे मन से साधु
के सम्पर्क मे पहुँचता है और
साधुता के स्वरूप को परख कर
अपने जीवन मे परिवर्तन लाता है,
वह अवश्य ही साधुता की ओर
प्रयाण कर देता है।

{129}

आत्मा की
विकास यात्रा की
बाधाएँ भी इस नमस्कार
मत्र के सामने नही ठहर
सकती है।

{130}

मनुष्य चमत्कार
तो देखना चाहता है लेकिन
वह श्रद्धा करना और
साधना करना
नही सीखता है।

{131}

अनैतिकता को
समाप्त करनी है तथा
सर्वत्र नैतिकता पनपानी है
तो सद्बुद्धि को जागृत बनाने
के सिवाय अन्य कोई
मार्ग नही है।

मैं स्वय गिरा हुआ हू, इसान को ऐसा
अध्यवसाय कभी नही लाना चाहिये। मगर जो
गलती उससे हो गई हो, उसको साफ जाहिर कर
देना चाहिए। भविष्य मे जैसा आन्तरिक वर्ताव हो, वैसा
ही वेश और वैसा ही व्यवहार होना चाहिए। आन्तरिक
भावना के अनुरूप वेश एवं व्यवहार नही रखना अपने
आपको और जनता को धोखा देना है और स्वयं
को हैवान से भी नीचे स्तर पर ले जाना है।

{132}

आत्मा जो अपने निज के स्वरूप में
रमण नही करती है– बल्कि बाहर ही बाहर
पौद्गलिक संसार मे परिभ्रमण करती हैं– यह उसकी
स्वस्थ गति नही होती, बल्कि उसका भटकाव होता है। इस
बाहर के भटकाव की वजह से उसका बर्हि स्वरूप है। बहिरात्मा का स्वभाव
हो जाता है कि वह बाह्य पदार्थों की ममता में उलझती रहती है।
वास्तविक रूप से इसे आत्मा का विभाव कहना चाहिये क्योकि मूल आत्मा
का जो स्वभाव होता है, वही उसका अपना भाव कहला सकता है।जो बातें
अपने मूल स्वभाव के विपरीत आत्मा पकड लेती है अपनी भटकाव की
दशा में– वे उसकी स्वभाव रूप नही होकर विभाव रूप होती है।
स्वभाव के विपरीत को विभाव कहते है और जितना
आत्मा का विभाव मे चलना होता है, वह
सब आत्मा का भटकाव कहलाता है।

{133}

मन का अर्न्तजगत् के साथ सम्बन्ध है।
जिस मन मे जितना अधिक आकर्षण होगा, उतना
ही वह अर्न्तजगत् को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा।
आकर्षण शक्ति किसी–किसी मे नैसर्गिक होती है। पर
उसको अधिक महत्त्व नही दिया जा सकता, क्योकि वह रह
भी सकती है और चली भी जाती है। अत ज्ञानपूर्वक प्राप्त
की गई आकर्षण शक्ति को ही अधिक महत्त्व दिया
जाना चाहिए, क्योंकि वह स्वाधीन होती है।

{134}

{135}

जीवन के परिपूर्ण विकास
की दृष्टि से साध्य और साधन
दोनो की आवश्यकता होती है। आत्म
शुद्धि स्थायी रूप मे सदा काल के लिये
बनी रहे– यह साध्य है। इस शुद्धि के
लिये जिन उपायो को सफलतापूर्वक
जीवन के साथ सबधित किया
जाता है – वे साधन है।

{136}

विभिन्न
विचाराधाराओ का
समन्वयक समाज ही
हितकर एवं प्रगतिशील,
हो सकता है।

{137}

धर्म
रहित जीवन,
बिना डोर के उडने
वाली पतग
के समान
है।

{138}

जैसे भीषण गर्मी से तपा
हुआ व्यक्ति शीतल सरोवर के समीप
पहुँच कर शांति का अनुभव करता है, उसी
प्रकार ससार के कष्टो से व्यथित बना हुआ
भव्य प्राणी जब सद्गुरु की सेवा मे पहुँचता
है–उनके समागम मे
आता है तो उसे अनुपम आत्मिक
शांति की अनुभूति होती है।

{139}

संसार दर्शन मे विमुग्ध बनने
वाले प्राणी जड भक्त हो जाते हैं
और जड पदार्थों के लोभ मे कुछ का
कुछ कर डालते है और यही वितृष्णा
आत्म–दर्शन के पथ मे सबसे बडी बाधा बन
कर खडी हो जाती है, तथा चेतना शक्ति
को पराजित कर देती है।

{140}

अहिसा, समता
से ही विश्वगत
प्राणी की सुरक्षा
सभव है।

{141}

विषतमा का
विषाक्त विष समता के
सोमरस से ही
समाप्त किया जा
सकता है।

{142}

अपनी आत्मा के मूल
स्वरूप के प्रति अटल आस्था
रखते हैं, उनकी छोटी–छोटी क्या
बडी–बडी आपत्तियाँ भी दूर हो जाती
है तथा छोटे–छोटे चमत्कार
उन्हे दिखाई देता है।

{143}

अनन्त इच्छाओ की वितृष्णा मे मनुष्य जीवन की अधिकाश प्रक्रियाएँ संचालित होती है। वहिरात्मा का हर्ष अथवा विषाद इन्ही इच्छाओ की पूर्ति अथवा आपूर्ति पर आधारित होता है लेकिन हकीकत मे वहिरात्मा विषाद मे ही ज्यादा डूबी रहती है। तृष्णा का आरपार नही होता उससे पहले ही अन्यान्य इच्छाओ के पूरी न हो पाने का विषाद उसे घेर लेता है। कोई भी इच्छा पूरी नही होती है। तो बहिरात्मा रोती चिल्लाती है।

{144}

बहिरात्माओं की दृष्टि बारह ही बाहर दौडती है तथा बाहरी पदार्थो की अवस्था पर ही उनका हर्ष और विषाद निर्भर करता है। धन और परिजन की जहॉ क्षति होती है, वहॉ वे शोकातुर बन जाती है। धन की क्षति चोर लुटेरो से भी हो सकती है तो सरकार के अंकुश से भी। धन के चले जाने पर मनुष्य कितना आर्त्तध्यान मे डूबता है, कितना विषाद करता है तथा कितना रोता चिल्लाता है बल्कि इससे उसके शरीर पर भी भारी बुरा असर पडता है। चिन्ता के ऐसे समय मे धन का मोह शरीर मोह से भी अधिक हो जाता है। धन खोने पर या न पा सकने पर भूख प्यास गायब हो जाती है, आकृति कुम्हला जाती है और भारी शोक संताप मे कभी-कभी मनुष्य इतना रोगी बन जाता है कि ससार से ही चल बसता है। इतना उसका आकर्षण धन के प्रति होता है।

{145}

जीवन बाहर दिखाई देने वाला इजिन ही नही होता है, बल्कि उसके भीतर बैठा हुआ बाहर से नही दिखाई देने वाला ड्राइवर होता है। इजिन को चलता फिरता इसीलिये देख सकते है कि उसका ड्राइवर उसको चला रहा है। उसी प्रकार जब इस शरीर के ड्राइवर को भी समझने की चेष्टा की जाती है, तब इस शरीर के ड्राइवर को भी समझने की चेष्टा की जाती है, तब मानना चाहिये कि धरातल बदलने लगा है और बहिरात्मा अपने बर्हि रूप को मन्द बना कर अपने ही स्वरूप की गहराई मे उतरने का यत्न करने लगी है।

{146}

जिस आत्मा के ऊपर
मोह और मद का चश्मा चढ
जाता है, उसकी आन्तरिक वृत्तियो
मे नशा सा छा जाता है और एक
तरह का गहरा पागलपन
पैदा हो जाता है।

{147}

जो वस्तुत
जिस रूप में
नही है, उसमे उस रूप
की प्रतीति ही मिथ्यात्व
है।

{148}

सूक्ष्म दृष्टि
और पैनी विचार
शक्ति को अपनाइये
ताकि आपकी बुद्धि भी
अन्र्तरात्मा की
तरफ मुडे।

{149}

आत्मा विकास यात्रा
का लक्ष्य है यह सिद्ध शिला,
जहॉ पहुँचने के बीच मे कर्मबध की
भयावह आपत्तियॉ खडी हुई है। जिन्हे
पराजित करना अटल आस्था
से ही संभव होता है।

{150}

जिस व्यक्ति के
जीवन मे चेतनता नही,
आत्म दर्शन की भावना नहीं तो
समझिये कि उसके पतन की
भी कोई सीमा नही।

{151}

सद्वृत्ति
मनुष्य स्वय से
भी पहले दूसरो की
भलाई के लिये
सोचता है।

{152}

मूल स्वरूप
के प्रकट होने का
ही अर्थ आत्मिक गुणो एव
शक्तियों का जागृत बन
जाना।

{153}

नमस्कार मत्र के
तुल्य अन्य कोई मत्र
नही है, लेकिन परम्परा से
जिनको यह मंत्र मिला है, वे ही
लोग इस मत्र के महत्त्व
को कम जानते है।

वस्तुत. अनुशासन का अर्थ ही आज्ञा धर्म होता हे।
किसी भी स्वस्थ शासन के 'अनु' याने पीछे-पीछे चलना ही
अनुशासन कहलाता है। शर्त यह है कि वह शासन स्व मे स्थ होना
चाहिये, अर्थात् आत्म प्रेरित होना है। आत्म प्रेरित शासन वही होता
है जो सर्वात्म-कल्याण का अनुमोदक होता है। जो अनुशासन मे
चलता है,वह आज्ञा धर्म का अनुकरण करता है तथा आज्ञा धर्म का
निष्ठापूर्वक अनुकरण करने वाला ही चरण - आदर्श याने
आचरण का आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।

{154}

मनुष्य कुछ गुणाभ्यास प्राप्त कर
सोचने लगता है कि मै कितना गुणवान हूँ।
मेरी इस ससार मे कोई कीमत नहीं करता, मेरा
जीवन ऐसे ही व्यर्थ चला जायगा, आदि अनेक कल्पानाओ
से दु खी होकर अपने आपको प्रसिद्ध करने के लिए अनेक तरीके
अपनाता है। मगर ये सब उसके प्रच्छन्न विकास यानि दोष हैं। ऐसा
व्यक्ति अपने या अन्य के लिए विशेष हितकर नही हो सकता । प्रथम तो
ऐसे व्यक्तियो मे वास्तविक गुण आने असम्भव नही तो कठिन अवश्य है
और यदि किसी में आये भी तो वे जहर-मिश्रित
दूध के समान होने से हानिकारक
ही सिद्ध होते है।

{155}

श्रदावनत होकर कल्याण कामना से कोई
व्यक्ति सद्‌गुरु के समीप मे पहुँचता है तो अनायास रूप
से उनके त्याग का सत्प्रभाव उस व्यक्ति के हृदय पर गिरने लगता
है। वह भीतर ही भीतर अपने को गुरु के शुक्ल प्रभाव से प्रभावित
अनुभव करता है तथा उस प्रभाव के कारण उसकी भावनाओ मे
परिवर्तन आने लगता है। उस समय जो उज्ज्वलता आती है,
उससे बुरे पाप कर्म स्वत हटते जाती है और आत्म जागृति
का स्वरूप उज्ज्वलतर होता जाता है।

{156}

{157}

कुतर्क मे जानने की
जिज्ञासा नही होती, केवल अपनी अहवृत्ति का
पोषण होता है। तर्क को जब 'सु' का रूप दे
दिया जाता है तो नयवाद उसकी ज्ञान प्राप्ति
का सुदृढ सम्बल बन जाता है।

{158}

वस्तु स्वरूप
को उसके यथार्थ रूप
मे देख सकने की दृष्टि
प्राप्त होती है। यह दृष्टि
सम्यक्त्व की दृष्टि
होती है।

{159}

जो निर्लिप्त
है, वह निर्विकार है
और निर्विकार आत्मा
परमात्मा होती है।

{160}

आत्मा की आन्तरिक गति का
सुप्रभाव तभी परिलक्षित हो सकता है
कि जब माता-पिता स्वय सन्तो की सेवा
मे पहुँचे, अपने सस्कारो का परिष्कार करे तथा
धार्मिक क्रियाओ मे अपने को
नियोजित बनावे। उनके परिवर्तन पर ही
उनकी सन्तानो का सही परिवर्तन
अधिकाशत निर्भर करेगा।

{161}

पहले अपने सकल्प को स्पष्ट
बनावे कि आप अपने घर के इस
खजाने को खोजना चाहते है अथवा नही ?
क्योकि सही जिज्ञासा और अभिरूचि के बिना
कोई सम्पन्न नही होता है। इस खजाने को
खोजने के लिये घर
के अन्दर गहरे होगा और
केन्द्रिय बनना पडेगा।

{162}

विपत्ति मे
घबराने वाले इसान
की बुद्धि कुंठित हो
जाती है ओर धैर्य रखने
वाले इसान को अवरोधो
के बीच भी रास्ता
मिल जाता है।

{163}

जो दुर्गति-
दुर्गुणो से बचाये,
साथ ही हमारे विचारो को
क्रिया कलापो को, सम्यग्
दिशा दे,
वह धर्म है।

{164}

शरीर के सहयोग से जब
धर्म साधना परिपूर्ण बनती है
तो आत्मा भी अधिकाश रूप मे निजत्त्व पर
आरूढ हो जाती है। निजत्त्व का
भान होना ही आत्म शुद्धि का
मूल कारण बनता है।

कस्तुरी मृग के समान बाहर
ही बाहर भटकना बुद्धिमानी नही है।
बहुमूल्य कस्तुरी का खजाना मृग की अपनी नाभि मे होता है,
लेकिन उसको इस तथ्य की सज्ञा नही होती है और वह बाहर ही
बाहर भटकता रहता है कि उसको कस्तुरी का खजाना मिल जाय।
कभी-कभी उस खजाने की खोज मे दोडते-दौडते वह अपने
प्राण भी त्याग देता है।

{165}

{166}

प्रत्येक कार्य के लिए कुछ-न-कुछ
निमित्त अवश्य होता है। निमित्त के बिना
प्रायः प्रवृत्ति होनी असम्भव है। निमित्त को प्राणी
जान सके या न जान सके, यह बात दूसरी है।
जिस वातावरण के वायुमण्डल में प्राणी रहता है,
उसी अनुसार बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रवृत्ति होती है-
यह सामान्य नियम है। विशिष्ट आत्मा विशेष निमित्त पाकर सारे
वायुमण्डल में आश्चर्यजनक परिवर्तन ला सकता है। प्रत्येक पदार्थ के
गुण व अवगुण प्रस्फुटित होकर वायुमण्डल मे मिलते रहते है। जिस
वस्तु में जिस गुण को आकर्षित करने की शक्ति
होती है,वह वस्तु उसी को खींच कर
अपने मे मिला लेती है।

चन्दन को काटने की कुल्हाडी धूप में पडी
रहने से भले ही गरम हो रही हो लेकिन जब वह
चन्दन की लकडी को छुएगी तो वह शीतल भी हो जायगी तथा
सुगन्धित भी बन जायगी। सन्तजनो का शीतल और शान्ति -
दायक परिचय क्रूर से क्रेर हृदय
को भी शीतल और शांत बनाा देता है। किसी भव्य प्राणी की
उन्नति मे प्राप्त सन्त सहायता उसे शीघ्र ही
उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा देती है।

{167}

{168}

आदेशानुगामी जनता को
तत्त्वनिर्णय की बात कही गई तो
गलती होगी, क्योकि तत्त्वनिर्णायक ही तत्त्व का
निर्णय कर सकता है। स्वाभीष्ट तत्त्व के प्रचार
मे ही अधिक समय का व्यय होना चाहिए
इधर-उधर की बातो मे समय का अपव्यय
करना उचित नही है।

{169}

समभाव की
साधना के लिए अह
का विसर्जन
आवश्यक है।

{170}

साधना के
विराट स्वरूप को प्राप्त
करने का प्रथम सोपान
है-समभाव

{171}

कोई भी व्यक्ति
कैसा भी विचार क्यो न
करे, उसकी प्रतिक्रिया उसके मानस
पर एव उसके आसपास के वायुमण्डल
पर अंकित हुए बिना नही रहती है।

{172}

विचारो का शुभ
और अशुभ दोनो प्रकार का प्रभाव
मानव मस्तिष्क पर पडता है।अत शुभ
विचारो से शुभ
वायुमण्डल बनाने का
प्रयत्न करे।

{173}

अहकार का
भुजग जब तक फुफकारता
रहेगा, तब तक व्यक्ति
विनम्र नही बन सकता।

{174}

अहकार के
घोडे पर बैठकर
साधक समत्व की
साधना नही कर
सकता।

{175}

जो आत्म-प्रतीति से
आत्मानुभूति तक पहुँच जाता है, वह अपनी
आत्मा के स्वरूप को सर्वागत पहचान जाता है।
यही नही,वह अन्यान्य आत्माओ के स्वरूप को
भी देखने लगता है। ऐसा अन्तर्मुखी व्यक्ति एक
प्रकार से अन्तर्यामी बन जाता है।

अन्तरात्मा के इसी स्वरूप मे जब अवगाहन होने
लगता है तो इस जीवन की उपाधियां हट जाती है। इन
उपाधियो का तात्पर्य है कि वे विशेषण जो वाह्य पदार्थो के सम्बन्धो
की वजह से लगते है। जैसे मकान मालिक की उपाधि, अमुक
सस्था के अध्यक्ष, पदाधिकारी आदि । वस्तुतः वाह्य सम्पत्ति का
स्वामित्त्व भी एक उपाधि ही है। जिसके पीछे चिन्ता का ऐसा
क्रम लगता है कि मनुष्य अपनी आन्तरिकता से
सम्बन्ध ही नहीं जोड पाता है।

{176}

बाहर की सारी उपाधियो को छोडते हुए जब
अन्दर मे प्रवेश किया जाता है तो उससे पहले पांचो
इन्द्रियो तथा शरीर की उपाधि का भी परित्याग करना होता है क्योकि मूल
मे ये उपाधियॉ ही सबसे बडी है, जिन मे आत्मा उलझी रहती है। यदि
आन्तरिक जीवन को सर्वथा उपाधि रहित बना लेते है तो तब परमानन्द की
अनुभूति होने लगती है। वह आनन्दानुभूति तब जीवन मे समग्र रूप से
व्याप्त हो जाती है। अतीन्द्रिय गुण भी अखूट होता है। कहते है कुबेर का
खजाना अखूट होता है लेकिन कदाचित् वह भी खूट जाय पर अतीन्द्रिय
गुणो का ख्याजना कभी कभी नहीं खूट सकता है। आत्मा
की यह उपब्धि महान् होती है। यह खजना तभी मिलता है
जब आत्मा का स्वरूप अन्तर्मुखी बन जाता है।
अन्तर्मुखी वृत्ति से ही आत्मलक्ष्मी की प्राप्ति होती
है तो आत्म दीप का आलोक बिखरता है।

{177}

आत्मा की इस विकास यात्रा मे बाहर दूर नही,
भीतर गहरे जाना है। मन की गतिविधियो को इन्द्रिय सुख
मे से निकाल कर उसकी गतिशीलता को आन्तरिकता मे प्रवेश
कराना है। यही आत्म साधना है और यही मन को आत्मस्थ बनाने
का अभ्यास है क्योकि इसी साधना और इसी अभ्यास की सहायता
से आत्मा अपने लक्ष्य तक पहॅुच सकेगी-सिद्ध स्थिति को प्राप्त कर
सकेगी। आप अपने आप के अन्दर भव्य स्वरूप को देखने
की कोशिश करेगे तो वही पर प्रभु के दर्शन होंगे।

{178}

{179}

इस विश्व की विचित्रता
का सही पता लगाना सुसाध्य
नही। कुछ मानव इसकी गवेषणा मे लगे
हुए है। उन्होने कुछ अश मे सफलता भी
पाई है, किन्तु उसका अनुकरण दुष्कर है।

{180}

किसी मानव
के प्रति कैसे भी
विचार किये जाये, वे विचार
सामने वाले के मानस से
अवश्य टकराते हैं।

{181}

आज की
दुनियाँ विषमता
के महासमुद्र मे गोते लगा
रही है। ऐसे विकट समय
मे समता आचरण की
नितान्त
आवश्यकता है।

{182}

आत्मा--प्रीतीति से आत्मानुभूति तक
पहुँचना कठिन नही होता है। आत्मानुभूति
हुई तो अन्तर्मुखी वृत्ति भी बन जाती है। तब
अन्तर्मुखी वृत्ति ही प्रबलता ग्रहण करती हुई
आत्मा को निर्लिप्तता की पवित्र अवस्था मे ले
जाती है। अन्तरात्मा की गतित निर्लिप्तता
दिशा मे ही अग्रसर बनती है।

{183}

सच्चे महात्मा कभी
अपने आपको प्रकट नही करते,
मान--प्रतिष्ठा एव पूजा के लिए कभी
अपनी जिव्हा को नही हिलातेऔर न मन
मे ही इस प्रकार का संकल्प आने देते है।
उनका ध्यान सदा वास्तविक
कर्तव्य कर्म मे रहता है।

{184}

सामायिक
साधना, विधि पूर्वक
निरन्तर की जाय तो
उससे हमारा आवृत
आत्म--स्वरूप अनावृत हो
सकता है।

{185}

तीर्थकरो
का नाम स्मरण भी
अलौकिक चमत्कार पैदा
करता है, होना चाहिए
श्रद्धा के
साथ ।

{186}

नमस्कार मत्र के
पचपदो मे साधनारत एव साध्य प्राप्त
समस्त गुणवान आत्माओ का समावेश
हो गया है। इसलिए वह सर्वाधिक
उपादेय है।

आप अटल सम्यक् आस्था को अपना लेते है तो
मान लीजिये कि अन्तिम विजय आपकी होगी। कोई
बाधा नही टिकेगी जो आपको पराजित कर सके— आप को अपने
विकास पथ से विचलित बना सके। नमस्कार मत्र के प्रति अटल
आस्था का अर्थ हैं परमात्मा मे अटल आस्था होना और परमात्मा
में अटल आस्था होगी तो वह अपने ही आत्म स्वरूप के प्रति
होगी। आत्मा के प्रति जो अटल आस्था होती हैं, वही
सर्वोच्च आत्म विकास का श्रेष्ठ सम्बल है।

{187}

{188}

जो परमात्मा के भक्त का बाना
पहनकर अपने भक्त तैयार करने के लिये
किसी की प्रशंसा करता है, किसी के कुटुम्ब—कुल—
परम्परा का वर्णन करता है, किसी के इष्टदेव की स्तुति करता है,
माता के अनुकूल विचार पुत्र के विषय मे कहता है तो कमी पुत्र को
एकान्त मे पाकर उसके अनुकूल विचार प्रकट करता है, कमी पति का
गुण—गान पत्नी के सामने तो कमी पत्नी का पति के सामने एवं
पिता—पुत्र, सम्प्रदाय— सिद्धान्त आदि के विषय में उनके मानने वाले के
अनुकूल विचार कहकर अपनी पूजा करना चाहता है, वह परमात्मा के
नाम पर वेश्यावृत्ति करता है। हा, इसका मतलब यह नहीं की किसी के
वास्तविक गुणो का वर्णन नही किया जाय। प्रसंग आने पर वस्तु
स्वरूप का वर्णन करना अवश्य चाहिये, किन्तु निष्काम—भाव से।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शारीरिक
शक्ति का व्यय करने केपहले यह ध्यान
कर लेना चाहिए कि मैं जिस शक्ति को खर्च
करना चाहता हूँ, उसका क्या उपयोग होगा ? सार्थक होगा या
निरर्थक ? मेरे व समाज के लिए हितकर होगा या
अहितकर ? और वह व्यय
मेरे लिए शक्य है या अशक्य।

{189}

{190}

सामायिक-समभाव वह
रसायन है जिसका अनुपान
करने पर अनादिकाल से चार गति, चौरासी
लाख जीव योनियो मे परिभ्रमण करती हुई
आत्मा अपने शाश्वत अमर स्वरूप को प्राप्त
कर लेती है।

{191}

अविनाशी
ध्यान करना है तो
विनाशी-शरीर का
ध्यान छोडना पडेगा।

{192}

शरीर का
एवं अन्य मूर्त
पदार्थो का ध्यान छोडकर ही
साधक साधना के क्षेत्र मे
प्रगति कर सकता है।

{193}

वीतराग भगवान्
रूपी वैद्य ने ससारी आत्माओ
को कर्मरोग से मुक्त होने के
लिए सामायिक रूपी जडी -बूटी
का तन्दुरुस्ती का नुस्खा
दिया है।

{194}

सामायिक साधना करने
के लिए वही स्थन उपयुक्त है
जहाँ बैठने से चित्त स्थिर रह सके। अधिक
से अधिक आत्मचिन्तन हो सके, समभाव
प्राप्त करने का अभ्यास किया जा सके।

{195}

अन्तरदीप
को जलाने के
लिए आन्तरिक विवेक
का उभरना आवश्यक
है।

{196}

मन का
असतुलन किसी
भी कार्य मे व्यक्ति की
प्रगति नही होने देता अत.
सतुलन कभी नही खोना
चाहिए।

{197}

अशुभ प्रवृत्ति करने के विचार
सर्वप्रथम मन मे उद्भूत होते है।
मन के विचार ही वचन का रूप धारण करत
है और वे ही विचार आचरण के द्वारा
तदनुरूप कार्य कर गुजरते है। अत. मन.
शुद्धि आवश्यक है।

निपुण वुद्धि की पहली कसौटी यह मानी
जानी चाहिये कि वह अध्ययन -मनन के लिये
ग्रथो का चुनाव करे जिनसे आत्म शुद्धि की दिशा मे आगे वढने
की प्रेरणा मिलती हो। योग्य सहयोगी सहज मे उपलव्ध हो जाय
यह सरल नही है, अत. यदि योग्य सहयोगी का अभाव रहता है
तो प्रेरक ग्रथो का चुनाव और अधिक महत्त्वपूर्ण वन जाता है।

{198}

मै यदि किसी से चालाकी से वात
करता हू और मन मे यह समझता हूँ
कि मै वडा चतुर हूँ। उसको कैसा चकमा दिया कि
वह समझ ही नही सका, यह मेरा भ्रम है, आत्मवच्चना
है और मुर्खता का नमूना है। यह ऊपर से किसी कारणवश न समझ
पाया हो किन्तु उसकी अन्तर आत्मा पर मेरे कुटिल भावो की छाप
अवश्य पडेगी, वह समय पाकर प्रतिक्रिया के रूप में सामने आयेगी
ओर उससे वायुमण्डल दूषित होगा, जो कि मेरे और विश्व के लिए
अहितकर है। अतएव जीवन मे प्रत्येक बात का ध्यान रखना चाहिए
और ऐसा ही कार्य करना चाहिए
जिससे किसी का अहित न हो।

{199}

इस संसार में परिभ्रमण करते हुए
इस आत्मा ने बहुत विष पिया है और
बहुत विष बिखेरा है। यह विष की जलन से संतप्त है, फिर भी
अमृत की ओर यह नही मुड रही है- इसी का आश्चर्य है। इस
आत्मा को अब अमृत की आवश्यकता है। अमृत की उग्र प्यास
जगाइये ताकि यह आत्मा विष के योग व्यापार से अलग हट कर
अमृत योग की याणना की दिशा मे गति कर सके। अन्तिम
लक्ष्य यही कि आत्मा अमृतमय हो जाये।

{200}

{201}

जिस स्थान पर बैठने से
मानसिक चचलता बढती हो
विचारधारा टूटती हो, विषय विकार के शब्द
कानो मे पडते हो, दृष्टि मे विकार पैदा होता
हो, ऐसे स्थान पर बैठकर सही रूप मे
सामायिक साधना सधना मुश्किल है।

{202}

अगर सम्यग्
दर्शन विशुद्ध है तो
हमारी साधना उपासनाएँ
विशुद्ध होगी।

{203}

सम्यग् दर्शन
की नींव पर ही सम्यग्
चारित्र का भव्य महल
टिक सकता है।

{204}

कायोत्सर्ग मे दो शब्द
हैं, काय और उत्सर्ग अर्थात् काया
का उत्सर्ग करना कायोत्सर्ग है। काया के
उत्सर्ग का तात्पर्य है कि शरीर के साथ
मन–वचन की चचल क्रियाओ
का त्याग करना।

{205}

सावद्य योगो का त्याग
करके बैठ जाने मात्र से ही
सामायिक हो गई मान लेना, अधूरा है।
सावद्य योगो का त्याग करना भी आवश्यक है
और उसके साथ
साधनात्मक पक्ष को अपनाना
भी आवश्यक है।

{206}

सम्यग् दर्शन
हमारी साधना– उपासना
का मूल आधार है।

{207}

समीक्षण
ध्यान, मन को
वश मे करने का
महत्वपूर्ण उपाय
है।

{208}

जिन दिव्य पुरुषो ने
अनन्त कृपा करके आत्म कल्याण
के मार्ग को निरूपित किया, उन दिव्य पुरुषो
के प्रति कृतज्ञता के भाव प्रदर्शित करने के
लिए २४ तीर्थंकरो का गुणकीर्तन रूप स्तुति
पाठ करना आत्म जागरण का सेतु है।

कलापूर्ण कृति अधिक
आकर्षक होती है। उसमे भी प्राकृतिक
दृश्यों की कृतियां अपूर्व होती है। सारा विश्व कलापूर्ण कृतियों से
परिपूर्ण है। इन्सान भी उन कला-कृतियो का एक प्राकृतिक अपूर्व
प्रतीक है। इसको विश्व में जो स्थान प्राप्त है, वह सबसे श्रेष्ठ है।
इसको समझ कर इसका उपयोग करना इन्सान
के हाथ की बात है।

{209}

मुझे शान्त दिमाग से यह सोचना है
कि अन्य प्राणियों की तरह मै भी एक प्राणी हूँ,
अन्य प्राणियो ने क्या विकास किया और मैंने क्या विकास किया? आप
मेरी आशक्ति धन, धान्य,अक्षरीज्ञान प्राप्त करने आदि बाह्य सीमित दायेर
में ही है, तो मुझे समझ लेना चाहिए कि मैने जडता का विकास किया,
जीवन-रोशनी के मूल्य पर अंधकार प्राप्त किया, जीवन के दिव्य तेज को
मिट्टी के अन्दर मिला दिया, उत्कृष्ट विकास साधन से नीचा चला गया ।
इस समय भी अगर सम्भल गया, तो आगे बढ सकता हूँ। वरना निकृष्ट
प्राणियो से भी पीछे रह जाऊँगा।

{210}

आज के अधिकांश मानवो का
यह चिन्तन है कि धर्म पर लोक को सुधारने
वाला है, पर मै आप लोगो को यह दावे के साथ कह सकता हूँ
कि धर्म परलोक की ही चीज नही वरन्, यह इस जीवन को भी
उतना ही भव्य एवं सुन्दर बनाता है, जितना कि परलोक को।
आवश्यकता है, धर्म को विधिवत् अपनाने की।

{211}

{212}

दृढ संकल्प बल से मन
को आज्ञा देकर मन की वृतियो
को केन्द्रित करने का प्रयास करे। आपके
ऊर्जस्वल संकल्प का यह प्रभाव पडेगा कि
आपका मन भटकना
बन्द कर आपके इशारे पर
नाचने लग जायेगा।

{213}

मन का भूत
सबको परेशान किये
हुए है। इस भूत को वश मे
करने के लिए सम्यग् साधना
रूपी मन्त्र अपनाया जाये।

{214}

सकल्प मे
वह शक्ति है कि
जिसकी बदौलत
असम्भव कार्यो को भी सभव
कर दिखाया
जा सकता है।

{215}

मानव तन में रहकर ही
चेतना, साधना का विशिष्ट सबल
प्राप्त कर सकती है। आत्म ज्योति का पूर्ण
साक्षात्कार भी इसी
तन मे कर सकती है।

{216}

स्वाध्याय अपने आपको
समझने का महत्वपूर्ण उपाय है।
आज आदमी अपने आपको भूल रहा है,
इसलिए दु ख की गलियो
में भटक रहा है।

{217}

सकल्प यदि
कमजोर है तो
कोई काम नही बनेगा।

{218}

सकल्प बल को मजबूत
कर, मन को आदेश
देकर साधना के अगले
आयाम मे गति करे।

{219}

जब हमारा संकल्प
बल मजबूत होगा तभी उस
सकल्प की वज्रशिला पर साधना
का भव्य महल खडा
रह सकेगा।

कलापूर्ण कृति अधिक
आकर्षक होती है। उसमे भी प्राकृतिक
दृश्यो की कृतिया अपूर्व होती है। सारा विश्व कलापूर्ण कृतियो से
परिपूर्ण है। इन्सान भी उन कला-कृतियो का एक प्राकृतिक अपूर्व
प्रतीक है। इसको विश्व मे जो स्थान प्राप्त है, वह सवसे श्रेष्ठ है।
इसको समझ कर इसका उपयोग करना इन्सान
के हाथ की बात है।

{209}

मुझे शान्त दिमाग से यह सोचना है
कि अन्य प्राणियो की तरह मै भी एक प्राणी हूँ,
अन्य प्राणियो ने क्या विकास किया और मैंने क्या विकास किया? आप
मेरी आशक्ति धन, धान्य,अक्षरीज्ञान प्राप्त करने आदि बाह्य सीमित दायेर
मे ही है, तो मुझे समझ लेना चाहिए कि मैने जडता का विकास किया,
जीवन-रोशनी के मूल्य पर अंधकार प्राप्त किया, जीवन के दिव्य तेज को
मिट्टी के अन्दर मिला दिया, उत्कृष्ट विकास साधन से नीचा चला गया ।
इस समय भी अगर सम्भल गया, तो आगे बढ सकता हूँ। वरना निकृष्ट
प्राणियो से भी पीछे रह जाऊँगा।

{210}

आज के अधिकांश मानवो का
यह चिन्तन है कि धर्म पर लोक को सुधारने
वाला है, पर मैं आप लोगो को यह दावे के साथ कह सकता हूँ
कि धर्म परलोक की ही चीज नही वरन्, यह इस जीवन को भी
उतना ही भव्य एवं सुन्दर बनाता है, जितना कि परलोक को।
आवश्यकता है, धर्म को विधिवत् अपनाने की।

{211}

{212}

दृढ सकल्प बल से मन
को आज्ञा देकर मन की वृतियो
को केन्द्रित करने का प्रयास करे। आपके
ऊर्जस्वल सकल्प का यह प्रभाव पडेगा कि
आपका मन भटकना
बन्द कर आपके इशारे पर
नाचने लग जायेगा।

{213}

मन का भूत
सबको परेशान किये
हुए है। इस भूत को वश मे
करने के लिए सम्यग् साधना
रूपी मन्त्र अपनाया जाये।

{214}

सकल्प मे
वह शक्ति है कि
जिसकी बदौलत
असम्भव कार्यों को भी सभव
कर दिखाया
जा सकता है।

{215}

मानव तन मे रहकर ही
चेतना, साधना का विशिष्ट संबल
प्राप्त कर सकती है। आत्म ज्योति का पूर्ण
साक्षात्कार भी इसी
तन मे कर सकती है।

{216}

स्वाध्याय अपने आपको
समझने का महत्वपूर्ण उपाय है।
आज आदमी अपने आपको भूल रहा है,
इसलिए दु ख की गलियो
मे भटक रहा है।

{217}

संकल्प यदि
कमजोर है तो
कोई काम नही बनेगा।

{218}

सकल्प बल को मजबूत
कर, मन को आदेश
देकर साधना के अगले
आयाम मे गति करे।

{219}

जब हमारा सकल्प
बल मजबूत होगा, तभी उस
संकल्प की वज्रशिला पर साधना
का भव्य महल खडा
रह सकेगा।

कलापूर्ण कृति अधिक
आकर्षक होती है। उसमे भी प्राकृतिक
दृश्यो की कृतिया अपूर्व होती है। सारा विश्व कलापूर्ण कृतियो से परिपूर्ण है। इन्सान भी उन कला-कृतियों का एक प्राकृतिक अपूर्व प्रतीक है। इसको विश्व मे जो स्थान प्राप्त है, वह सबसे श्रेष्ठ है। इसको समझ कर इसका उपयोग करना इन्सान के हाथ की बात है।

{209}

मुझे शान्त दिमाग से यह सोचना है
कि अन्य प्राणियो की तरह मै भी एक प्राणी हूँ,
अन्य प्राणियो ने क्या विकास किया और मैंने क्या विकास किया? आप मेरी आशक्ति धन, धान्य,अक्षरीज्ञान प्राप्त करने आदि बाह्य सीमित दायेर मे ही है, तो मुझे समझ लेना चाहिए कि मैने जडता का विकास किया, जीवन-रोशनी के मूल्य पर अंधकार प्राप्त किया, जीवन के दिव्य तेज को मिट्टी के अन्दर मिला दिया, उत्कृष्ट विकास साधन से नीचा चला गया । इस समय भी अगर सम्भल गया, तो आगे बढ सकता हूँ। वरना निकृष्ट प्राणियो से भी पीछे रह जाऊँगा।

{210}

आज के अधिकांश मानवो का
यह चिन्तन है कि धर्म पर लोक को सुधारने
वाला है, पर मै आप लोगो को यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि धर्म परलोक की ही चीज नही वरन्, यह इस जीवन को भी उतना ही भव्य एवं सुन्दर बनाता है, जितना कि परलोक को। आवश्यकता है, धर्म को विधिवत् अपनाने की।

{211}

{212}

दृढ संकल्प बल से मन
को आज्ञा देकर मन की वृतियो
को केन्द्रित करने का प्रयास करें। आपके
ऊर्जस्वल सकल्प का यह प्रभाव पडेगा कि
आपका मन भटकना
बन्द कर आपके इशारे पर
नाचने लग जायेगा।

{213}

मन का भूत
सबको परेशान किये
हुए है। इस भूत को वश मे
करने के लिए सम्यग् साधना
रूपी मन्त्र अपनाया जाये।

{214}

सकल्प मे
वह शक्ति है कि
जिसकी बदौलत
असम्भव कार्यों को भी संभव
कर दिखाया
जा सकता है।

{215}

मानव तन मे रहकर ही
चेतना, साधना का विशिष्ट सबल
प्राप्त कर सकती है। आत्म ज्योति का पूर्ण
साक्षात्कार भी इसी
तन मे कर सकती है।

{216}

स्वाध्याय अपने आपको
समझने का महत्वपूर्ण उपाय है।
आज आदमी अपने आपको भूल रहा है,
इसलिए दु ख की गलियो
मे भटक रहा है।

{217}

सकल्प यदि
कमजोर है तो
कोई काम नही बनेगा।

{218}

सकल्प बल को मजबूत
कर, मन को आदेश
देकर साधना के अगले
आयाम मे गति करे।

{219}

जब हमारा संकल्प
बल मजबूत होगा, तभी उस
सकल्प की वज्रशिला पर साधना
का भव्य महल खडा
रह सकेगा।

बहते पानी की तरह अभ्यस्त विचारधाराओ को
रोककर अनभ्यस्त नवीन कार्य की ओर ले जाना प्रगति
का चिन्ह है। अभ्यस्त मार्ग से तो अन्धा, वच्चा, मूर्ख और
सामान्यबुद्धि के अन्य प्राणी भी यन्त्रवत् चलते ही है, इसमे कोई
विशेषता नही। अभ्यस्त मार्ग पर आपत्तियां नही के समान आती हे
मगर अनभ्यस्त मार्ग पर चलने पर अनेक आपत्तिया आती हे और
वे स्वाभाविक-सी भी मालूम होती है। किन्तु जो विवेक-पूर्वक उनका
सामना करता हुआ आगे बढता रहता है, वह अवश्य सफल
हो सकता है। वही वस्तुत प्रगति कही जा सकती है।

{220}

किसी से प्रशंसा की अभिलाषा
करना अथवा हृदय मे किसी व्यक्ति का
पूज्य स्थान नही होने पर भी इस भाव से उसकी
प्रशसा करना कि अगर मै इस की तारीफ नही करूगा
तो इसके भक्त मेरा सत्कार या मेरी प्रशंसा नही करेगें,
अथवा लोग कहेगे कि इनमे द्वेषभाव है, अत एक-दूसरे
की प्रशसा नही करते है, आदि विचारो से भय खाकर
जो व्यक्ति ऊपर से प्रशसा करता है, वह व्यक्ति
अपनी प्रामाणिकता से गिरता है, अप्रामाणिकता का
दूषित वायुमण्डल तैयार कर अन्य को भी
अप्रामाणिकता बनाता है। ऐसे मुनष्य
की कृतियॉ हानिप्रद होती है।

{221}

अमुक समाज या अमुक व्यक्ति मेरा
सत्कार-समान कैसे करे, उनको मेरे अनुकूल
कैसे बनाऊॅ, जब तक ये मेरे अनुकूल नही बनेगे,
तब तक मेरी प्रतिष्ठा नही होगी, ऐसा विचार कर जो अपनी
आत्मा के माप-दण्ड को गिराकर आचरण करता है, वह व्यक्ति
अपने आपको विश्व के निम्नतम प्राणियो
से भी नीचे स्तर पर ले जाता है । उसका
उपदेश व आचरण कृत्रिम होता है।

{222}

{223}
जो प्रवृतिया असावधानी,
प्रमाद एव आसक्तिवश बनती
है। उनका परिमार्जन करने के
लिए आप कोई सशक्त
प्रायश्चित रखे।
{224}
विवशताजन्य
होने वाले अशुभ क्रिया
कलापो के प्रति हार्दिक
पश्चाताप के भाव है।
{225}
जीवन दीप की
ज्योति प्रज्वलित रखने के
लिये सस्कार स्नेह (तेल)
का कार्य
करता है।
{226}
मन की एकाग्रता की
निर्मलता एव आत्म-विशुद्ध के
साथ समभाव की उपलब्धि ही
सच्चा सुख प्राप्त कराने
वाली बनाती है।
{227}
धर्म ध्यान करते समय
आपको इच्छाओ का दमन
करना पडता है। मन नही चाहता फिर भी
आप मन को वश मे करके बैठते है। यह
भी मन पर अकुश करना है।
{228}
शिशु जीवन
को सौम्य बनाने
के लिए माता-पिता के
सुन्दर कर्तव्य ही बच्चो मे
सस्कार का
रूप लेते है।
संस्कार बीज
है, जीवन वृक्ष को
पल्लवित करने के लिये।
{229}
दुनियॉ का सर्वश्रेष्ठ मंत्र
नवकार है। पर यह ध्यान रखना
है कि अन्दर मे यदि विषय-कषाय की आग
जलती रहे और ऊपर से मंत्र का जाप करते
रहे, तो
उससे कभी विशुद्ध शांति
नही मिल सकेगी।
{230}

मानवता-विरूद्ध किसी वर्ग या जाति
का निर्माण करना और उसी को अपने जीवन
का ध्येय बना लेना विकारी मन का परिचय है। अशान्ति,
अराजकता एवं साम्प्रदायिकता तथा व्यक्तिवाद का वीजारोपण
इसी से पल्लवित होता है। ऐसी
विचार-धाराएँ ही इन्सान को इन्सानियत
से दूर हटाती है।

{231}

{232}

हे आत्मन् ! तू यह सोचता
है कि मै अमुक स्थान पर जाकर
मेरे जीवन मे उत्तम अवस्था प्राप्त करूं,
क्योकि वह स्थान पवित्र हैं , पर यह सोचना
एकागीपन है। कारण कि हर स्थान पवित्र और
अपवित्र दोनो अवस्थाओ से परिपूर्ण है। कोई भी
स्थान ऐसा नही जहॉ केवल पवित्रता या अपवित्रता
हो, हॉ न्यूनाधिकता हो सकती है, किन्तु
सच्ची पवित्रता का प्रेमी हर स्थान मे
पवित्रता प्राप्त कर सकता है।
चाहिए दृढ संकल्प।

कोई भी कार्य तब तक
सफल नही होता जब तक उसे विधिपूर्वक
न किया जाय। बीज को पुष्पित फलित होने मे
जैसे बाह्य पृथ्वी, पानी, पवन की अनुकूल सामग्री
की अपेक्षा रहती है वैसे ही सामायिक
साधना के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव
की शुद्धियॉ भी आवश्यक है।

{233}

{234}

जो बात बीत चुकी, उसका स्मरण कर ग्लानि लाने की आवश्यकता नही। किन्तु नवीन उत्साह पैदा करने की जरूरत है। वास्तविक लक्ष्य मे तन्मय होकर कर्त्तव्य कार्य में लग जाने पर कोई कार्य असाध्य नहीं। व्यतीत अवस्था से भी अच्छी अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

{235}

इन्सान तभी खतरनाक होता है, जब वह स्वमस्तिष्क के नियत्रण से बाहर हो जाता है।

{236}

जितनी भी साम्प्रदायिकता से अनुप्राणित संस्थाएँ है, वे प्राय साम्प्रदायिकता के अलावा निर्लक्ष्य होती हैं।

{237}

प्रकृति के अन्दर सभी शक्तियां विद्यमान है। इसका स्वभाव ही बुराई को दूर कर अच्छाई की ओर ले जाना है। यह किसी प्रकार की बुराई को सहन नही करती है, उसे साफ करने की कोशिश करती हैं।

{238}

जनसाधारण का आज जो लक्ष्य बना हुआ है, वही बना रहेगा, यह कोई निश्चित नही। एक समय ऐसा आयेगा जब उसका आज से बिलकुल विपरीत लक्ष्य होगा।

{239}

जीवन का संबंध केवल शरीर तक ही सीमित नही हैं। इसका सबध न्यूनाधिक रूप से सारे संसार के साथ है।

{240}

किसी अभिलाषा से किसी की प्रशसा करना इन्सानियत से गिरना है।

{241}

आदेश का अन्य पर असर तभी होता है जबकि आदेशकर्ता के जीवन मे वह यथाशक्ति उतर पाया हो। जीवन मे उतरे बिना आदेश का अन्य पर विकृत असर होता है, जो कि आगे चलकर दम्भ के रूप मे समाने आता हैं।

स्वय के आचरण के अनुसार किसी
वाक्य को तोड–मरोड कर उसका अर्थ करना
और उसके वास्तविक अर्थ को छिपा देना कमजोर मानस का
काम है। ऐसी क्रिया भयभीत दिल का नमूना है। ऐसे दिलवाले
विशेष कार्य करने मे भी असमर्थ
रहते हैं। अतएव दिल को मजबूत बनाना चाहिए
और निर्भयता पूर्वक व्याख्या करने
में तत्पर रहना चाहिए।

{242}

संगठन दो प्रकार के हो सकते है–
पहले वे, जो ऊपर से गढे जाकर नीचे
तक जाते हैं या नही भी आते हैं– गुम्बद की
तरह ऊपर ही ऊपर से सुशोभित रहते हैं। दूसरा प्रकार
यह होता है कि संगठन नीचे से खडा हो और जडो मे मजबूती पाता
हुआ ऊपर उठाता रहे– जैसे कि वट वृक्ष होता है जो नीचे जमीन के
भीतर तक अपनी जडो को
पक्की करके ऊपर तक उठता है लेकिन वह धरती से दूर नही रहता
और नई–नई जडो को धरती की ओर फैकता रहता है जमकर
नये–नये आधार खडे करने के लिये । इस प्रकार का सुदृढ आधार
और विस्तार ही किसी संगठन को सुव्यवस्थित, कार्य कुशल
एवं दीर्घजीवी बना सकता है।

{243}

कोई भी कार्य करे, किन्तु उसका बराबर
विचार रहे कि दान की भाव–शुद्धता का पूरा–पूरा
निर्वाह किया जाय। कोई भी सुकृत्य भावना खोकर रूढ
और प्राणहीन हो जाये उससे बढकर अन्य कोई हानि
नही। किसी भी उज्ज्वल स्वरूप को विकृत बनाना अक्षम्य
माना जाना चाहिये औश्र दान को व्यापार बनाना तो
दण्डनीय भी। कृपया दान को व्यापार न बनाएँ और
दान की भाव–शुद्धता का सर्वत्र निर्वाह करे।

{244}

{245}

तुम प्रसन्नचित रहो, चिन्ता करने की आवश्यकता नही, किन्तु स्वय अपने जीवन मे जिन-जिन बातो की त्रुटिया या कमजोरियॉ अनुभव करो, उनको शीघ्रातिशीघ्र दृढ संकल्प के साथ दूर कर दो। फिर तुमको कभी किसी विफलता के दर्शन नही होगे।

{246}

शिशु जीवन मे पडे सुन्दर या असुन्दर प्रभाव उसके पूरे जीवन को बनाने या बिगाडने के उतरदायी होते है।

{247}

सस्कार बीज है, जीवन वृक्ष को पल्लवित करने के लिये।

{248}

आजकाल अधिकाश मनुष्यो का केन्द्र-बिन्दु जड बना हुआ है। वह बाह्य भौतिक रूप को ही प्राप्त करने मे अपना श्रेय समझते है। आज के इन्सान मे वास्तविक प्रेम का सचार, केन्द्र बिन्दु के परिवर्तन से ही हो सकता है,मगर वह शिक्षित एव प्रतिष्ठित कहे जाने वालो के अधीन है।

{249}

जिस सद्‌विचारधारा का बीज वपन करते हो, उसको सावधानी के साथ विकसित एव प्रफुल्लित करो। उसके अनुकूल वायुमण्डल से उसका सिंचन करो। उसकी देख- रेख तब तक पूर्ण शक्ति के साथ करे, जब तक कि वह परिपक्च एव मजबूत न बन जाय,अन्यथा उसकी विपतरीत विचारधाराएँ उसको चूम लेगीं।

{250}

जो आत्मा एक बार भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लेता है। उसका अनन्त ससार परिभ्रमण परिमित हो जाता है।

{251}

जिनेश्वर भगवन्तो के वचन अन्यथा कदापि नही होते, ऐसी दृढ आस्था जिसको प्राप्त है, उसको सम्यक्त्व निश्चल है।

{252}

जिस समय विचारो का तूफान आता है, उस समय किसी भी कार्य को करना अनर्थकारी होता है। उस समय ज्ञान की मात्रा विलुप्त हो जाती है। कर्तव्या- कर्तव्य से विमूढ होकर कार्य किया जाता है। अतएव वह अज्ञानमूलक है और अज्ञानमूलक कार्य कभी हितकर नही कहा जा सकता।

जिस वस्तु मे जिस स्वभाव की
अधिकता होगी, उस वस्तु से वही स्वभाव
दूसरे के सामने उपस्थित होगा। अगर दो वस्तुओ का
समान स्वभाव है तो दोनो विना सघर्ष के मिल जायेगी और उनकी
शक्ति दुगुनी हो जायगी। अगर स्वभाव विपरीत है, तो दोनों मे
सघर्ष होगा या जिसकी शक्ति प्रबल होगी, उस रूप में परिणत हो
जाएगी या सघर्ष से नवीन शक्ति पैदा होगी और उसका
स्वभाव भी दोनो से विलक्षण होगा।

{253}

इन्सान की गलती को जानते
हुए भीउसके सामने स्पष्ट बात रखने मे
सकोच करना, भय खाना और यह सोचना कि
स्पष्ट कहने से यह नाराज हो जायगा अथवा यह मेरी जो इज्जत
कर रहा है, उसमें फर्क पड जायगा या मेरी छिपी हुई गलती
प्रकट कर देगा, आदि बातो को लेकर जिस व्यक्ति को गलती
हो, उसके सामने उस का समाधान न कर, दूसरो के सामने
कहकर भ्रम फैलाना, कमजोर दिल के व्यक्तियो का कार्य है। वे
विचार स्वय को ही अधिक हानि पहुँचाते
है। ऐसे व्यक्तियो पर दया करना सामर्थ्य-
सम्पन्न इन्सानो का कर्त्तव्य है।

{254}

जैसे लोगो की दी हुई सत्कार सज्ञा
के लिएमेरा दिल लालायित रहता है, उसी तरह
लोगो के द्वारा दी गई तिरस्कार सज्ञा से भी रहना चाहिए।
एक से प्रसन्न और दूसरी से अप्रसन्न न होना चाहिए।
जब तक द्वैतभाव की कल्पना आचरण रूप मे विद्यमान है,
तब तक स्वयं को इन्सानियत से दूर समझना चाहिए।
अगर जीवन सफल बनाना है
तो सर्वप्रथम इन्सानियत प्राप्त करो।

{255}

{256}

इन्सान व्यर्थ की चिन्ता से परेशान होता है। सार्थक चिन्ता से हैरानी नही आती, किन्तु उत्साह बढता है। कार्य करने मे तत्परता आती है और जीवन के अमूल्य तत्वो का व्यर्थ अपव्यय नही होता।

{257}

'सम' लक्षण
जब अन्तर-चेतना मे विकसित हो जाता है तो जीवन समुज्जवल बनते कोई देरी नही लगती।

{258}

आत्मा ड्राइवर है, तन मन, वचन रूपी गाडी हाकने के लिये।

{259}

बिना सोचे-समझे कार्य करना पाशविक वृति का परिचायक है। साम्प्रदायिकता के नशे मे निरपराधी प्राणी के प्राणो का हरण करना अत्यन्त निकृष्ट कार्य है। यह इन्सान के लिए भारी कालिमा का धब्बा है। इस धब्बे से सदा दूर रहना प्रत्येक इन्सान का प्रथम कर्तव्य है।

{260}

जो कार्य सोच-समझकर उत्साह से किया जाता है, वह दुष्कर होने पर भी आसान मालूम होता है और सहज ही किया जा सकता है। मगर जो कार्य बिना सोच-समझे उत्साह रहित रूढिपरम्परा से किया जाता है, वह आसान होने पर भी दुष्कर मालूम होता है। और सहज मे नही किया जा सकता।

{261}

सम्यक्त्व विहीन तपस्या का कुछ भी महत्त्व नही है।

{262}

जिसका आकार मन मे बसाया जाता है, वह आदमी भी एक दिन उसी रूप मे बन सकता हे।

{263}

जिसमे ज्ञान नही, उपयोग नही वह जड तत्व है, जो जड हे, उसमे चेतना नही होने से राग-द्वेष आदि कुछ भी वृतियॉ नही होती है, राग-द्वेष सकल्प- विकल्प शुद्ध-अशुद्ध आदि भावो की स्थितियां चैतन्य मे बनती है।

प्रकृति का रहस्य अभी अज्ञात है। इसको
मालूम करने के लिए अत्यधिक तपश्चर्या की आवश्यकता है।
तपश्चर्या केवल शारीरिक ही नही, किन्तु मन और वुद्धि को
विशुद्ध करने के लिए निरन्तर प्रयास को ही वास्तविक तपश्चर्या
कहा जा सकता है। इस तपश्चर्या से जो शक्ति प्राप्त होती है,
वही शक्ति वास्तविक रहस्य को ज्ञात करा सकती है।

{264}

{265}

जो पवित्र दिल से सदा सबका हित
चाहता है, कभी भी किसी के प्रति दुर्भाव नही
आने देता और अगर कभी किसी के प्रति कुछ दुर्भाव
आ भी गया हो तो तुरन्त उसको दूर करने की शक्ति रखता हैं, उस
व्यक्ति के लिए सदा ही क्षमा-याचना का दिन समझना चाहिए। किन्तु
जो व्यक्ति अधिकांश रूप से अपने दिल और दिमाग को बुरे विचारो
मे रखता है और यही सोचा करता है कि मै कैसे सबसे श्रेष्ठ
कहलाऊँ ? प्राय इन्हीं विचारो को कार्यान्वित करने के लिए बाह्य
दिखावे के तौर पर नम्र बनता है या क्षमा-याचना का उच्चारण करता
है, वह क्षमा-याचना के संवत्सरी पर्व
को भी लजाता है एवं कपट-क्रिया की वृद्धि करता
है। ऐसे व्यक्ति आत्मशुद्धि से दूर रहते है।

सामान्य मनुष्य को, अबोद्य बच्चे को
एव साधक को उत्तम वातावरण मे रहने की
और प्रत्येक समय सुसस्कारित जीवन को दृष्टि-पथ पर रखने
की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसमे जरा-सी भी सावधानी
नीचे स्तर पर ले जाने मे कामयाब हो सकती है, क्योकि विश्व
मे पिष्टपेषण एव विकृत वायुमण्डल का प्राबल्य रहता है।

{266}

{267}

राग, द्वेष, आसक्ति, मोह
आदि जो आत्मा को मलिन बनाने
वाली विभाव वृतियॉ है, उनसे यह
आत्मा जितनी-जितनी परे हटती है- उतनी
उतनी अपने निज आनन्दमय स्वरूप की
अभिव्यक्ति प्राप्त करती है।

{268}

मन से गति
हो रही है, पर यह
विचारना है कि मन
की यह गति समभाव
से हो रही है या विषम
भाव से हो रही है।

{269}

जितनी-जितनी
त्याग वृति जीवन मे
पनपती है, उतनी-उतनी
बन्धन से आत्मा मुक्त
होती है।

{270}

जीवन को उन्नत
बनाने के लिए प्रत्येक
आत्मा को अपना चरम लक्ष्य
सामने रखना चाहिये और लक्ष्य
के अनुरूप ही अपना आचरण
ढालना चाहिये।

{271}

विषमता एक सक्रामक
रोग है, जो तेजी से मानव जीवन
मे व्याप्त होता जा रहा है। इस सक्रामक
रोग से मुक्त होने के
लिए, रोग के मूल का निदान
करना आवश्यक है।

{272}

यह चतुर्गति
रूप ससार एक
तरह से जेल ही है।
जहॉ यह जीवात्मा कर्म
बेडियो मे बधी विविध
यातनाऍ सहन कर
रही है।

{273}

आत्मिक
स्वतन्त्रता की प्राप्ति होने
पर देश की स्वतत्रता प्राप्ति
भी सहज ही सार्थक
होगी।

{274}

याद रहे, जो व्यक्ति
अपने धर्म व संस्कृति के
प्रति निष्ठावान नही, वह परिवार, समाज
और राष्ट्र के प्रति भी निष्ठावान नही है।

इन्सान को सदा अपनी अवस्था को देखते
रहना चाहिए, किस समय क्या अवस्थ्झा है ? इस
समय मै क्या कर रहा हूँ, मेरी विचार-धाराऍं किस ओर वह रही है,
उसमे किस पदार्थ के प्रति आसक्ति है और किस के प्रति विरक्ति
है, प्रयत्न क्या चल रहा है, शारीरिक सामर्थ्य कैसा है ?
आदि अवस्थाओ में स्वकर्त्त का पता लगाकर उसके ऊपर
दृढता के साथ चलते रहना ही इन्सान की विशेषता है।

{275}

प्राणी प्राय सुख और दु ख मे स्वतन्त्र है,
मगर इसमे कुछ वातावरण भी साधक या बाधक
बनता है। इसकी जिम्मेदारी समाज पर ही विशेष रूप
से आधारित है। समाज जैसा वातावरण तेयार करता है,
उसी के अनुसार प्राणी अपने सुखी या दु खी रूप में अनुभव करने
लगता है और जब वह अनुभव दृढ होकर अधिक समय तक रह जाता
है, उसमे ऊँच-नीच के भावो की सृष्टि होती है। वही सृष्टि अनेक वर्गो मे
विभक्त होकर घृणा एव पाशविक सघर्ष का कारण बनती है।
इससे इन्सान, इन्सानियत को भूलकर किसी अन्य मार्ग पर
चल पडता है। यही वृत्ति परतन्त्रता एव
सुख-दु ख का कारण बनती है।

{276}

चिन्ता करने से कोई लाभ नही होता, बल्कि
हानि होती है। अगर कुछ करना है तो प्रसन्नतापूर्वक उसमे लग
जाना चाहिये। समय या मुहूत की अनावश्यक प्रतीक्षा नही करनी
चाहिये। कार्यारम्भ का वही समय या मुहूत अति उत्तम है, जिस
समय पूर्ण उत्साह हो। बिना उत्साह अच्छे मुहूर्त मे आरम्भ
किया हुआ कार्य भी सफल नही हो पाता।

{277}

{278}

जो वस्तुस्वरूप का प्राय बौद्धिक ज्ञान होता है, वह जीवन का साधक भी हो सकता है और बाधक भी। वस्तुस्वरूप का ज्ञान क्या है और क्यो है, इस बात का जब तक अनुभूतिमूलक ज्ञान नही होता, तब तक वह बाधक रूप मे रहता है। अनुभूति होने पर वह साधक रूप हो जाता है।

{279}

जिसका आधार मन मे बसाया जाता है, वह आदमी भी एक दिन उसी रूप मे बन सकता है।

{280}

आत्मा को साफ करने के लिए सामायिक का स्नान करिये। ध्यान का साबुन लगाइये। यह स्नान महत्वपूर्ण है।

{281}

समता के मगलमय दिव्य वातावरण का सृजन करने और विषमता के विषमय वातावरण को समाज और राष्ट्र के जीवन से जड-मूल सहित उखाड फेकने के लिए देखी-देखी कार्य करने की प्रवृति को छोडकर अपने स्वतत्र चिन्तन को जागृत करते हुए आत्मिक स्वातंत्र्य प्राप्त करे।

{282}

तपश्चर्या, शरीर से ममत्व हटाने पर ही हो सकती है। जब तक शरीर पर मूर्छा भाव है, तब तक आप तपश्चर्या मे अपना कदम आगे नही बढा सकोगे।

{283}

क्रोध करने वाले व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी तरफ से हानि होती है।

{284}

जैसी जिसकी भावना होती है, उसी रूप मे सिद्धि भी होती है।

{285}

कोइ भी कार्य यदि आपको करना है तो उसका नक्शा पहले मन मे तैयार होगा। जब मन मे अच्छी तरह नक्शा जम जायेगा,तभी अस्खलित रूप से,उसी मन के विचारो के अनुरूप वचन प्रयोग होगा और वहीं काया मे भी परिणित होने लगेगा।

जो केवल एक ही अवस्था मे रहता है, वह वास्तविक अनुभव के बिना प्रगति नही कर सकात। जब तक विविध विपरीत परिस्थितियो को सामना होने पर उनमे क्षीर-नीर की तरह सावधानी पूर्वक विश्लेषण कर गुणावगुण का निर्णय नही किया जाता, तब तक वही अवस्था रहती है। यह दृढ विश्वास भी नही हो सकता और न आगे बढने की तीव्र शक्ति ही पैदा की जा सकती है। अतएव प्रगतिशील पुरुष को विपरीत परिस्थितियो का भी धैर्यपूर्वक प्रगति के साधन रूप से ही सत्कार करना चाहिए। हॉ, यह कार्य जनसाधारण का नही।

{286}

आजकल राजधानी मे वोटो की प्रवृत्ति जोरो से चल रही है। वोट प्राप्त करने वाली प्रत्येक पार्टी वोटो के लिए भरसक प्रयत्न कर रही है। यह प्रयत्न सडको, रास्तो, पेम्पलेटो एव भाषणो तक ही सीमित नही रहा है, किन्तु प्रत्येक घर मे, प्रत्येक वयस्क मनुष्य को साम, दाम, दण्ड और भेद आदि का प्रयोग दिखाकर भी चल रहा है। खडा होने वाला व्यक्ति चाहे अयोग्य या स्वार्थ की जघन्य भावना की साकार मूर्ति भी क्यो न हो, उसको भी सुयोग्य एव सत्पुरुष का चोला पहनाया जा रहा है। यह तरीका प्रजातन्त्र का नही, यह तो पूजीपति, साम्राज्यवादी एव कुटिलता का है। इससे प्रजातन्त्र उतना ही दूर है जितना की घोर अधकार से देदीप्यमान प्रकाश। यह प्रवृत्ति दैविक नही है, राक्षसी है , जनता को अन्धकार मे ले जाने वाली है।

{287}

जिस जनहितकारिणी सस्था मे जो मानव रहता हो, उस व्यक्ति को इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि उस सस्था के मौलिक नियमो को मेरे द्वारा आघात न पहुँचे। मै उस संस्था के नियमो का यथाशक्य पालन करता हूँ या नही, अगर करता हूँ तो किस दृष्टि से ? जिस दृष्टि से उन नियमो का पालन किया जाता है, वह दृष्टि दुनिया के सामने स्पष्ट होनी चाहिए। दुनिया मुझे क्या कहेगी, इस विचार से अपना दृष्टिकोण स्पष्ट नही करना दुनिया को धोखे मे डालना है और धोखा देनेवाला व्यक्ति प्रामाणिक नही हो सकता।

{288}

{289}

यदि हमारे विचार
अच्छे होंगे तो हमारा चैतन्य देव
भी पवित्र रहेगा और हमारे विचार बुरे होगे
तो हमारी चेतनना
भी बुरी होगी।

{290}

वाक् संयम
जीवन के श्रेष्ठ
गुणो मे एक
गुण हैं।

{291}

वाणी का
ऐसा सम्यक् प्रयोग हो कि
सामने वाला आपको
अधिकाधिक सुनना चाहे।

{292}

वाणी का सम्यक्
प्रयोग व्यक्ति की महानता का परिचायक है
तो वाणी का गलत प्रयोग व्यक्ति की
हीनता का परिचायक है।

{293}

भौतिकता से ओतप्रोत
मानव को जो चीजे सुखप्रद
लगती है वेसच्चे सुख को प्रकट
नही कर सकती। वास्तविक
आत्मिक सुख बाह्य पदार्थों से
कभी प्राप्त नही होता।

{294}

वाणी सभी
मानवो को प्राप्त
है, लेकिन उसके साथ
सयम है या नही,
इसका विवेक
आवश्यक है।

{295}

वाणी जीवन
का आभूषण है। इस
आभूषण को संभाल कर
रखना आप लोगो का
कर्तव्य है।

{296}

पौद्गलिक सुख क्षणिक
हैं, नष्ट होने वाले है, स्थायी एवं
वास्तविक सुख आत्मिक है अत उसे
प्राप्त करने के लिए सत् पुरुषार्थ
करना चाहिए।

किसी भी सिद्धान्त के सत्य-निष्ठा पूर्वक आचरण से जो प्रचार होता है, वह वास्तविक एव स्थायी रूप से जीवन का निर्माण करता है। किन्तु, जो प्रचार आचरण रूप से न होकर मौखिक आदि साधनो द्वारा होता है, वह अवास्तविक एव अस्थायी होता है। उससे जीवन का ह्रास एवं कपटाचरण का वायु-मण्डल तैयार होता है, जो कि वास्तविक जीवन-निर्माणरूप स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध होता है।

{297}

{298}

प्रत्येक इन्सान को नियमित रूप से एव व्यवस्थित रूप मे विश्व हितकारी कुछ-न-कुछ कार्य करने चाहिए। बिना कुछ किये विश्व से सहायता लेना उचित नही कहा जा सकता। इन्सान को विश्व के पदार्थो से जो भी शारीरिक, मानसिक एव वाचिक, आदि शक्ति प्राप्त हुई है, उसका सदुपयोग तभी समझा जा सकता है, जबकि इन्सान उक्त (विश्व) के लिए कुछ करता हो। अगर वह ऐसा कुछ भी नही करता है और व्यर्थ ही व्यक्तिगत स्वार्थ मे इस शक्ति का व्यय करता है, तब वह विश्व मे दूसरो को कष्ट देने वाला एव कृतध्न की श्रेणी मे आ जाता है।

किसी कार्य मे अतिशीघ्र उत्तेजना आना अत्यधिक अपूर्णता का द्योतक है। ऐसे व्यक्ति हिताहित सोचने मे असमर्थ रहते है। वे तात्कालिक फलाफल को देखकर अपनी शक्ति को पतंग की तरह झोक देते है। जो ऐसा नही करता है, वह उनको दृष्टि मे कायर या भीरू दिखाई पडता है।मगर जो दूरदर्शिता पूर्वक कार्य करने मे तत्पर है, वह कायर व भीरू की श्रेणी मे नही आ सकता।

{299}

{300}

कच्ची मिट्टी रूपी मानव शरीर की कोठी को कितना ही धोया जाय, साफ सुथरा बनाया जाय, उस पर कितनी ही कलाकारी की जाय, पर वह अधिक समय टिकने वाली नही हैं।

{301}

प्रेम की गगा इस वाणी के द्वारा बहायी जा सकती है और जहर की वृष्टि भी इससे की जा सकती हैं।

{302}

जब तक मानव की बाह्य दृष्टि बनी रहेगी तब तक वह वास्तविक आनन्द की राह को नही खोज सकेगा।

{303}

आत्मा के सौन्दर्य को बढाने के लिए सद्गुणो को बढाना चाहिए। सद्गुण बढेगे तो आत्मिक सौन्दर्य निखरेगा। यह सौन्दर्य ही स्थायी एवं शाश्वत रहने वाला है।

{304}

जब आत्मा स्व स्वरूप को विस्मृत कर पर भावो की ओर गमन करती है तब उस मे विषम भावो का सर्जन होता है। जब स्वरूप जागरण मे लगती है, तब समत्व रूप उभरता है।

{305}

स्थायी रहने वाला यदि कोई तत्व है तो वह चैतन्य आत्मा है उसे सस्कारित करना अमरता पाना है।

{306}

बाह्य दृष्टि मे कीह आनन्द नही है। आनन्द का स्त्रोत अन्तर दृष्टि से फूटेगा।

{307}

विषम भावो मे जाकर आत्मा अपने स्वय के स्वरूप को भूलती हुई काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणो का प्रादुर्भाव करने लग जाती है, जो दु खो का महाद्वार है।

जैसे सत्य या सत्य सम्बन्धी किये जाने
कार्य को किसी के भी सामने कहने मे हमे
सकोच या हिचकिचाहट नही होती, वैसे ही विवश
होकर या प्रमाद एवं स्वार्थ आदि की दृष्टि से किये
जाने वाले कार्यो को भी जनता के सामने निर्भय
होकर कहना चाहिये। उसमे संकोच करना या
वचन आदि के आवरण मे उसे व्यक्त करना
इन्सानियत के खिलाफ है।

{308}

इच्छाओ को रोकना जीवन को कुण्ठित
करना है, विकास को रोकना है। उन्हे थेष्ट प्रवृति
करने देना जीवन का विकास करना है। यह विचार बिना मननपूर्वक
गतानुगतिक लोकोक्ति को पुष्ट करता है। वस्तुतः इच्छाओ की यथेष्ट
प्रवृति को रोके बिना अपूर्व जीवन प्राप्त नही किया जा सकता है। नदी का
प्रवाह रोके बिना उससे बिजली पैदा नही की जा सकती। उसको रोकने में
कष्ट का सामना करना पडता है। इन्द्रियों की यथेष्ट प्रवृतियाँ रूकती है,
तभी आत्मसाधना मे सफलता प्राप्त की जा सकती है। इच्छाओं
को रोकने मे आन्तरिक सघर्ष अवश्य होता है, पर इस
सघर्ष के बिना जीवन मे बिजली (ऊर्जा) पैदा नही
की जा सकती है। हॉ, इससे सतत् जागरूकता
की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

{309}

मनुष्य अधिकाश समय इधर-उधर की
बातों मे नष्ट कर देता है। मगर बहुत कम
व्यक्ति यह विचार करते है कि हमारा समय व शक्ति हित कार्य
मे खर्च हो। यह जीवन एक अमूल्य प्रयोगशाला है। इसमे उसी
चीज का प्रयोग करना है, जो अपूर्व एवं कल्याणप्रद हो। पर
जिसकी विश्व मे आवश्यकता न हो अथवा प्रचुर मात्रा मे प्रयोग
हो चुका हो, स्वलिप्सा से उसका प्रयोग करते रहना,
समय व शक्ति का दुरूपयोग करना है।

{310}

{311}

मनुष्य तन को प्राप्त कर
मानवता को प्राप्त करना यह दुलभा अंग
माना गया है। मानव बनकर भी
मानवता का न होना, सच्चा मानव
जीवन नही है।

{312}

आत्मा को शुद्ध
एव पवित्र बनाने के लिए
मन को मांजने की कला
सीखना चाहिए।

{313}

जो क्षण
बीत गया है वह
लाख प्रयत्न करने पर
भी वापस नही
लौटता ।

{314}

शासन रहितता से अभिप्राय
उस शासन से है, जो शासन शोषण
या हिंसा से युक्त हो, जिसमे विचार-स्वातन्त्रय
का दमन नही किया जाता हो। शासन
इन्साद्रिय से वचित रखने वाला हो, बल्कि प्रेम
या अहिंसा का शासन तो अवश्य हो। इसके
बिना प्रगति नही की जा सकती।

{315}

जिस पदार्थ के जैसे गुण या
अवगुण हो, उस पदार्थ के विषय
मे निष्पक्ष दृष्टि से वर्णन करने मे कोई
आपत्ति नही है। अगर वास्तविक वर्णन नही
किया गया तो साधारण जनता भ्रम मे
पडकर अपना या अन्य का भी अहित कर
सकती है।

{316}

शारीरिक सौन्दर्य
को छोडकर आत्मिक
सौन्दर्य को प्राप्त करने के
लिए प्रत्येक मानव को
प्रयत्नशील
होना चाहिए।

{317}

वैभाविक भावों
से मुक्त होने के लिए
तथा स्वस्वरूप को प्रकट
करने के लिए समभाव की
साधना की जाय।

{318}

प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक
पदार्थ की तह में बैठकर गुणावगुण नही
देख सकता । इसका निरीक्षण तो वही
मनुष्य कर सकता है, जो व्यक्तिगत स्वार्थ
से रहित, निर्लिप्त एवं निष्पक्ष हो।

किसी एक ही एकान्तिक नियम मे
बधी हुई विचार-धाराएँ गन्दी हो जाती है,
उनमे से सार तत्त्व धीरे-धीरे निकल जाते है और
निस्सार एव व्यर्थ के तत्व इकट्ठे हो जाते है। जिस समय
उनमे सार तत्त्व का प्राबल्य होता है, उस समय उनका
परिवर्तन करते रहने से उनकी
तात्त्विक शक्ति नष्ट नही हो पाती।

{319}

आजकाल आजादी के लिए विभिन्न व्यक्ति
अपनी-अपनी इच्छानुसार बौद्धिक व्यायाम कर रहे है।
किसी का कहना है- हमको पूजीपति आजाद नही होने
देते अथवा यह यन्त्रवाद हमारी आजादी मे बाधक हो रहा है। किसी का
कहना है हमारी आजादी सफेद टोपी ने छीन ली, आदि। जितने मुँह
उतने मत बनते जा रहे हैं। मगर वास्तविक दृष्टि से सोचने का कष्ट
बहुत कम व्यक्ति करते हैं। आजादी क्या कोई चीज है जो हमसे कोई
छीन ले। वह हमारे से कोई नही छीन सकता, अगर सही रूप से
आजादी समझ नी गई हो। आजादी की मूल स्थिति हमारे अन्दर
विद्यमान हैं, उसको हम वास्तविक रूप से अपनाएं तो हम निश्चित रूप
से आजाद एव आबाद हो जाये और वह है सत्य को सामने रखकर
विवेक एवं धैर्य पूर्वक कर्मशीलता।

{320}

जीवन के यात्रा-काल मे किसी भी
इन्सान को पापी या दुष्ट, कुपात्र या नीच
कहना व समझना, स्वय को वैसा बनाना है।
प्रत्येक इन्सान के साथ प्रेमपूर्वक पेश आना, उसकी स्थिति,
समय की स्थिति एव उस स्थान के वातावरण को देखकर
सहानुभूति पूर्वक पवित्र एवं व्यापक वायुमण्डल का निर्माण
करना जीवन-यात्रा का कर्त्तव्य होना चाहिये।

{321}

{322}

किसी चीज का पहले भार
मालूम होता है। उसका लगातार
अभ्यास होने पर वही चीज हल्की मालूम होने
लगती है। इसमे अधिक अभ्यास की
आवश्यकता रहती है। अभ्यास नही करने पर
हर एक काम कठिन हो जाता है
चाहे वह छोटा भी क्यो न हो।

{323}

सम या विषम
भावो का प्रादुर्भाव
आत्मा मे ही
होता है।

{324}

मन को माजने
के लिए परोपकार
की भावना आना
आवश्यक है।

{325}

जो शिक्षा दूसरे को देनी है,
वह शिक्षा पहले अपने पर आजमाकर अनुभव
करे कि यह मुझे हितकर एवं प्रियकर मालूम
होती है या नही। फिर जो उसे हितकर एव
प्रियकर ज्ञात हो, वही दूसरे को दे।

{326}

कोई भी महापुरुष बने
और प्राणी मात्र के लिये कल्याणप्रद मार्ग
प्रशस्त करे, ऐसी भावना जिस मानव के
अन्त करण मे बार–बार उठती हो, वह मानव
एक रोज अवश्य महापुरुष बन सकता है।

{327}

क्षमा, सौहार्दता,
अनासक्ति, विरक्ति,
शत्रु–मित्र दोनो पर
समत्व की वृत्ति बनाना
आत्मिक सौन्दर्य को
जगाना है।

{328}

भव्यात्माओ !
जगने का समय है,
जागो, उठो और आत्म
जागरण मे आगे बढो।

{329}

मन की तरगे अनेक है।
इनके बीच मे स्वतत्त्व छिपा हुआ
है। इस निजी तत्त्व को यदि पाना है,
तो पहले मन की विभिन्न तरगो को पहचानना
अत्यावश्यक है। उसके पश्चात्
आगे की गति बनती है।

जिसने मुझे जो कुछ भी सहायता दी, उसको
मुझे नहीं भूलना चाहिए। उसका प्रत्युपकार करना
मेरा कर्त्तव्य होना चाहिए। अगर मेरे दिल में ये भाव उठते हो कि
अमुक व्यक्ति ने इतने दिन तो मेरी सहायता की और अब वह
सहायता नही कर रहा है, तो उसके किञ्चिदपि दोषों को प्रकट
करके उसको अपमानित करूं या उसको भला–बुरा कहूं तो मेरे
समान कृतघ्न और कौन हो सकता है ? इस प्रकार के विचार
इन्सानियत को भी तिलाञ्जलि देने वाले होते है।

{330}

विकास और ह्रास की दोनो अवस्थाएं
अन्त करण से सम्बन्ध रखती है। बाह्य निमित्त
भी उसमे कारण बनते है, मगर उनका स्थान गौण है।
कितना ही नीचे स्तर पर रहा हुआ प्राणी उच्च अन्त करण
से विश्व के विविध दृश्यो को देखता हैं, सबके अन्दर दिव्य शक्ति का
अनुभव करता है और वैसा ही अपना आचरण बनाता है, तो वह अवश्य ही
एक रोज जीवन के उच्च स्तर पर पहुँच जाता है। जो इन्सान उच्च स्तर
पर पहुँचकर स्वय को महान् एवं श्रेष्ठ समझता है, विश्व के विविध दृश्यों
को दोषपूर्ण एवं घृणा की दृष्टि से देखता है और वैसा ही आचरण उनके
साथ करता है तो वह एक समय अवश्य अत्यन्त
निकृष्ट स्तर पर पहुच जाता है।

{331}

मुझे आपत्ति मे डालने वाला कोई
नही हैं। जो मेरी उन्नति में बाधक दिखता
है वह बाधक नही, साधक है। वह चारों ओर
से विचारों को केन्द्रित कर सत्य के मार्ग में गति
और कर्त्तव्य को देखता है।'अगर मेरी गति एवं कर्त्तव्य निरन्तर
रूप से जारी है तो विश्व का कोई भी
पदार्थ मुझे रोक नही सकता' ऐसा सोचना
विचारों का सदुपयोग है।

{332}

{333}

एक शरीर को छोड़
कर आत्मा जाती है तो
उस शरीर का मरण हो जाता
है तथा चट दूसरे शरीर मे प्रवेश करती है
तो उस शरीर मे
जीवन आ जाता है।

{334}

समत्व की वृत्ति
सदा के लिए स्थिर
एवं कायम बनी रहे यह
लक्ष्य प्रत्येक
साधक को होना चाहिये।

{335}

प्रेम की
पराकाष्ठा होती
है—सर्वस्व का
समर्पण

{336}

चैतन्य और जड
का सयोग होने से शरीर
की सरचना होती है। शरीर जो जड था,
चैतन्य के सयोग से रूपी
चैतन्य हो जाता है।

{337}

जब तक कर्मों का बंध
हैं—जड चेतन का संयोग बना
रहता है तथा ससार परिभ्रमण होता रहता
है। कर्मों का सम्पूर्ण क्षय होने पर ही संयोग
टूटता है तथा चैतन्य जडबंध से मोक्ष पा
जाता है।

{338}

आत्मा की
परमात्मा से एक
कडी जुड जाती है—एक लौं
लग जाती है तो वह
अलौकिक प्रेम अमित
आनन्द का अखंड
स्रोत बन जाता है।

{339}

सच्चा व ऊँचा
प्रेम एक ही बात
मागता है कि प्रेम
की वेदी पर सर्वस्व
का समर्पण कर
दिया जाय।

{340}

आप अपने क्रोध का
शमन कर लेते हैं तो सामने वाले
के क्रोध का भी शमन हो जायेगा। उसकी
उत्तेजना तब बढती है जब आप
चिनगारी डालते है।

दिन भर वाते करते रहने से या एक
दूसरे से मिलते रहने से सच्चा भ्रातृभाव पैदा हो
गया हैं, ऐसा नही कहा जा सकता। जितना अधिक वाह्य दिखावा
है, उतनी ही अधिक भ्रातृभाव से दूरी है। सच्चे भ्रातृभाव में वाह्य
दिखावा नही के समान रहता है। उसमे हित-कामना पूर्वक कर्त्तव्य
की अधिकता रहती है। जहॉ हितकामना पूर्वक कर्त्तव्य की
अधिकता नही हैं, वहॉ निरादम्भ है, भ्रातृभाव नही।

{341}

साधारण जनता के सामने
विश्वस्त पुरुष का नाम रखकर व्यक्ति
उसको अपनी ओर आकर्षित करता है और उसी
से वह अपनी उद्देश्य पूर्ति मे कुछ अंश तक सफल होता है। वह
उद्देश्य विश्वस्त पुरुष के आदर्शानुकूल है या प्रतिकूल, यह बात
साधारण जनता नही समझ पाती। क्योकि वह नाम के पीछे कुछ
नही सोचती। मगर सत्यान्वेषण-निष्ठ पुरुष का यह कर्त्तव्य होता है
कि वह साधारण जनात के सामने भी दिल और दिमाग से सही
रूप मे सामने आये। किसी भी व्यक्ति को उसके द्वारा
धोखा न हो, इसका पूरा खयाल रहे। व्यक्तिगत सफलता या
विफलता का विचार उसके
दायरे से बाहर की चीज है।

{342}

अधिकांश प्राणी सत्य का वास्तविक स्वरूप
नही समझने के कारण जिस किसी के प्रवाह में
बह जाते है, परिणाम चाहे कुछ भी हो। ऐसे व्यक्ति कठपुतली या
भेड प्रवाह के समान होते है, इसी से आज का विश्व पाशविक
प्रवृत्ति का शिकार बना हुआ है। इसकी जिम्मेदारी साधारण जनता
पर नही, किन्तु ऐसे व्यक्तियो पर है, जो साधना अवस्था में ही
सिद्ध बन बैठे है। ऐसे व्यक्ति ही साधारण जनता को
भ्रम मे डालकर धोखा देते है।

{343}

{344}

आत्मा अब अलोकिक
प्रेम की साधना करे और सासारिक
बन्धनो से मुक्त होकर निराकार
प्रभु की आराधना करे तो वह
अपनी गति को नई और सुनहरी दिशा मे
मोड सकती है।

{345}

साहित्य का
उद्गमस्थान पुस्तके
या लेखक नही,वे तो साधन
मात्र हो सकते है। वस्तुत
उनका उद्गम तो प्रकृति
एवं उसका कार्यरूप
लालित्य है।

{346}

आध्यात्मिकता
सीखने से पहले
नैतिकता सीखनी
चाहिये।

{347}

कोई भी राष्ट्र
या समाज दीर्घजीवी
तभी बनता है जब वह अपनी
ज्ञान निधि की सुरक्षा भी करता
है तथा उसकी प्राभाविकता
को भी फैलाता है।

{348}

श्रेष्ठ ज्ञान का उत्कृष्ट
प्रतीक केवल ज्ञान होता है।
उससे बढकर और कोई ज्ञान नही होता
उसी तरह जैसे कि सूर्य के प्रकाश से
बढकर और कोई
प्रकाश नही होता।

{349}

श्रेष्ठ तत्त्वो
की रक्षा के
लिये भी सत्पुरुषार्थ की
आवश्यकता
होती है।

{350}

आत्मा का
सबसे बडा सम्बल
पुरुषार्थ ही होता है।
पुरुषार्थ बल के माध्यम से
अपने भाग्य को
तो आप मोड ही
सकते है।

{351}

विनय का एक गुण
अनेक आत्कि गुणो का विकास
करता है, आचरण के चरण जीवन
की सारी वाधाओ को दूर कर देते
है तो तपस्या सम्पूर्ण विकार को
जला कर आत्म स्वरूप को
निखार देती हे।

मनुष्य की आयु, शरीर व ज्ञान
बढने पर भी प्राय उसमे वच्चे की-सी
वृत्ति की प्रबलता रहती है। वह वाह्य रगरूप मे
अपने आनन्द की सामग्री खोजता है, पर वाह्य रग-रूप का और
वस्तु-स्वरूप का हृदय-स्पर्शी ज्ञान नही होता। इसी से वह वाह्य
चकाचौंध मे फॅस कर अमूल्य
जीवन को व्यर्थ ही नष्ट कर देता है।

{352}

विश्व का प्रत्येक पदार्थ एक-दूसरे से
सम्बद्ध है। कोई भी ऐसा नही, जो एक-दूसरे से
बिल्कुल निरपेक्ष हो। समाज के अन्दर ही सब कुछ है।
अर्थात् समस्त उन्नति की जननि कहो तो समाज है। समाज के
सुव्यवस्थित रहने पर ही कुछ किया जा सकता है। अत सामाजिक सुधार
अत्यावश्यक है। उनको सुधारने का तरीका अपेक्षाकृत नवीन हो सकता
है, किन्तु सर्वथा नवीन समाज की रचना नही की जा सकती। यह जो मै
विचार कर रहा हूँ, वास्तविक एवं व्यापक समाज का विषय है, न
कि-विकृत- समाजाभास का। जो व्यक्ति यह कह सकता है कि समाज
और आध्यात्मिकता बिल्कुल पृथक् है, उनका आपस मे कोई सम्बन्ध नही,
वह कथन विकृत समाजाभास मे पले हुए अबोध बच्चे के समान है। ऐसे
व्यक्तियों को अभी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता हैं।

{353}

सोच-समझकर धैर्य के साथ किया जाने
वाला कार्य ही उचित कार्य कहा जा सकता है।
बिना सोचे-समझे उत्तेजना मे आकर किया जाने वाला कार्य
अनर्थकारी होता है। जरा-सी शक्ति का आभास होने पर मनुष्य
एकदम उतावला हो जाता है और शीघ्र ही अपनी किंचित् शक्ति
के आभास को पूर्ण शक्ति मानकर कार्यरूप में परिणत करने की
कोशिश करता है। इसी से मनुष्य न वास्तविक शक्ति पा
सकता है और न सफलता ही।

{354}

{355}

महावीर वाणी के अमृत
को जो अपनी आत्मा के कण-कण मे रमा
लेती है, वह एक जन्म के क्या
जन्म-जन्मान्तरो के दु.खो
को नष्ट कर देती है।

{356}

जीवन शक्ति
और पुरुषार्थ के
सहारे सब कुछ बदल
सकते है-भाग्य को बदल
सकते है, हाथ की रेखाओ
को बदल सकते है।

{357}

चरित्र सम्पन्नता
के बिना जीवन मे न
सदाशयता प्रकट होती है,
न तेजस्विता।

{358}

जीवन मे सही ज्ञान प्राप्त
नही किया, साधना के क्षेत्र मे आगे नही बढा
और अन्तिम समय मे पंडित मरण को प्राप्त
नही कर सका-वैसे व्यक्ति ने यह समझे कि
जीवन को व्यर्थ गवा दिया।

{359}

ऐसी महान् आत्माओ
की मृत्यु मे स्वयं मृत्यु लज्जित
होती है तो जीवन अमर हो जाता
है। जीवन मे जो उनकी विकसित गुणशीलता
होती है, वह मृत्यु क बाद अधिक सुवासित
होकर चारो ओर प्रसारित हो जाती है।

{360}

चरित्र
सम्पन्नता को
प्रदीप्त बनाये बिना लक्ष्य
की प्राप्ति नही हो
सकती है।

{361}

राष्ट्रीय चरित्र
का विकास तभी हो
सकेगा, जब व्यक्ति पहले
अपने जीवन को चरित्र
सम्पन्न बनाने का प्रयास
करेगा।

{362}

ससार की अवस्था मे तो
सयोग के साथ वियोग लगा हुआ रहता है,
लेकिन आध्यात्मिक जगत् मे एक बार स्वस्थ
सयोग स्थापित हो जाता है तो वहाँ पर
वियोग की स्थिति नही आती।

प्रत्येक प्राणी प्रत्येक समय अपनी
प्राणशक्ति का व्यय करता रहता है। उसमे
विवेकशील प्राणी उसका दुरूपयोग करता है। अन्य
अधिकाश प्राणी तो इस व्यय को समझ ही नही पाते। उनकी
अवस्था बडी शोचनीय होती है। अबोध प्राणी- नाशक पदार्थो का
उपयोग करते समय कुछ नही
समझ पाता। वह तो जो चीज सामने आई
उसी को काम मे लेना जानता है।

{363}

अत संघर्ष के अनुसार प्रतिकूल
विचार-धाराओ पर प्रहार करने के लिए जिस
य मननपूर्वक प्रहारक विचारो का मोर्चा तैयार होता हैं
और जिस समय प्रहार करना चाहता है, वह समय अगर
चूक जाता है तो फिर उसके ऊपर मनन चलता है और उस मोर्चे को भी
छिन्न-भिन्न कर उसका सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए वह प्रत्येक भाग पर पहुँच
जाता है।उस समय पहले का उत्साह शान्त हो जाता है और अगर
मननशील व्यक्ति स्वय पर काबू नही रख सका तो वही निस्तेज होकर बैठ
जायगा। फिर उस विषय मे प्रगति उसको बहुत कठिन मालूम होगी और
अगर स्वय पर काबू रख सका तो प्रत्येक भाग का निरीक्षण कर संशोधन
करता हुआ उसी मोर्चे पर आयेगा और पहले
से भी अधिक दृढता के साथ संघर्ष करता हुआ
शान्तिपूर्ण तरीके से आगे बढेगा।

{364}

जिस समय जैसा वेश हो, उस समय
उसी के अनुरूप कार्य एव व्यवहार होना चाहिए
और जिस समय जैसा कार्य किया जाता हो, उस समय उसी कार्य
मे मन, वचन और काया का एकाकार होना जरूरी है। अगर ऐसा
नही होता है, तो किसी भी कार्य में वास्तविक सफलता प्राप्त नही
की जा सकती।
विपरीत एव विकृत कार्य से दूषित वातावरण तैयार
होता है, जो किसी के लिए हितकर एव
सुखद नही हो सकता।

{365}

{366}

ज्ञान, दर्शन और
चारित्र्य की एक धारा मिलने
से जैसे मोक्ष मार्ग का निर्माण होता है,
उसी तरह से चुतर्विध संघ की चरित्र
सम्पन्नता की
एक ही धारा बहे।

{367}

बुद्धि अपने 'स्व'
से विलग होती है तो
अपने आप को खाती है
और अपने 'स्व'के साथ
जुडती है तो स्वस्थ बनकर
आत्म स्वरूप को
विकसित करती है।

{368}

दिशा बदली तो
दशा बदलने मे देर
नही लगेगी। दृष्टि बदली तो
सृष्टि बदल जायेगी। जो इस
वक्त दृष्टि मे सृष्टि है
वह न रहकर दूसरे
सृष्टि आ जायगी।

{369}

पुरुषार्थ के माध्यम से
बाधक तत्त्वो के ये संस्कार चाहे
जितने दृढी भूत बने हुए हो, इनको छन्न-भिन्न
किया जा सकता है और नवीन सुसस्कारो के
निर्माण से जीवन मे उच्चतम विकास
साधा जा सकता है।

{370}

बुद्धि की गति की दो
विपरीत दिशाएँ होती है। एक तो आत्मनिष्ठ
होकर चलने की सही दिशा और उससे ठीक
विपरीत और गलत दिशा कि वह जड तत्त्वो
मे मोहान्ध बन कर भटकती फिरे।

{371}

साधना पथ पर
स्वय चले और अपना
आत्म-विकास सम्पादित
किया। उसके बाद उन्होने
जनकल्याणार्थ उपदेश दिये
और आत्मोत्थान का
मार्ग दिखाया।

{372}

अपने सर्वस्व
को परमात्मा के
चरणो मे समर्पित करने
को तत्पर हो जाती है। यह
सर्वस्व समर्पण सुसंस्कारो
का श्रेष्ठतम स्वरूप
होता है।

{373}

सारे शारीरिक रोगो
का मूल मन की अवस्था मे ही
होता है। मन रोगी वनता है तो
वह चारो ओर के रोगो को
एकत्रित कर लेता है।

प्रगतिशील पुरुष समय एवं परिस्थिति को देखकर
किसी कार्य विशेष पर जोर दिया करते है। उनका कोई
त्रैकालिक विशेष कार्य निश्चित नही होता। विशेष कार्य का
निश्चय समय एवं परिस्थिति पर बहुत कुछ आश्रित रहता है।
इससे वे विश्व एवं स्वयं को बहुत आगे ले जा सकते है। मगर
साधारण व्यक्ति इसे समझ नही पाते। वे तो प्रगतिशील पुरुषों के
द्वारा निर्दिष्ट विशेष कार्य को ही सब कुछ मानकर बैठ जाते है।
उनके लिए वही चरम सीमा हो जाती हैं, ऐसी स्थिति
मे वे पीछे रह जाते है, आगे नही बढ सकते।

{374}

{375}

आज हिस्दुस्तानी सही रास्ते से भटक
गये है। उनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति
इस समय बडी शोचनीय हैं। इन दोनो परिस्थितियो
के आधार पर ही शान्ति एवं उन्नति की जा सकती
है। अतएव प्रत्येक इन्सान यह प्रतिज्ञा कर ले कि वह प्रत्येक समय
को सार्थक बनाएगा, किसी भी समय ऐसा कार्य नही करेगा, जो
वस्तुतः निरर्थक एव अनावश्यक हो। यह प्रतिज्ञा, मनसा,
वाचा,कर्मणा कार्यरूप मे परिणत हो जाने पर ऐसी कोई भी अवस्था
नही रह सकती, जो कि हिन्दुस्तान को शोचनीय दशा में रख
सके। यही आर्थिक एवं सामाजिक समुन्नति का प्रमुख साधन है।

सत्य समझना, उसको आचरण में लाना तलवार
की पैनी धार पर चलने के समान है। आवश्यक व्यावहारिक
सत्य भी यदि प्रत्येक इन्सान पूर्ण-रूपेण आचरण में उतार ले तो
आज की बाह्य अशान्तिमय स्थिति का प्रायः अन्त हो सकता है।
मगर जब व्यावहारिक सत्य का अंश भी अपनाने मे पूरा ध्यान
नही जाता है तो फिर वास्तविक सत्य को कैसे प्राप्त कर सकते
है? वह तो जीवन का पूर्ण विकसित स्वरूप है। व्यावहारिक सत्य
को जीवन में उतारकर ही उसकी ओर आगे बढा जा
सकता है, क्योंकि विकास क्रमश. होता है।

{376}

{377}

स्वयं वही है जो चिन्तन
करने वाला है, जो समझने वाला
है और जो जागने वाला है। यह स्वय
अपनी आत्मा है। स्वस्थ वही कहलाता है
जो अपनी आत्मा
मे स्थित हो जाता है।

{378}

दृश्य और अदृश्य-
दीखने वाले और नही
दीखने वाले इन दोनो
प्रकार के तत्त्वो का
सम्मिश्रण ही
यह सृष्टि है।

{379}

संसारी आत्मा
को अपने इस लक्ष्य तक
पहुँचाने वाला जो साधन
है, उसे धर्म कहते है।

{380}

मानव को समता
दृष्टि से विचार करना चाहिए
कि जैसे वह सुखी रहना चाहता
है। वैसे ही अन्य मानव भी
सुखी रहना चाहते है।

{381}

मानवता के पुजारी मानव
धर्म को अपना करके चलते है। वे अपने
सुख साधनो को छोडकर परोपकार के
लिए अपने प्राणो तक का
उत्सर्ग कर देते है।

{382}

बीती जिन्दगी
को स्मरण कर वर्तमान को
व्यवस्थित बनाया गया तो
भविष्य उज्जवल होगा।

{383}

मानव तन को
प्राप्त करके जो लोग
खाना-पीना,ऐशो-आराम
करना ही सब कुछ समझते
है, वे भारी
भूल मे है।

{384}

दु खो के अकुरो
को जलाने एव ममत्व की
जड को खत्म करने के लिए मानव को
समत्व भाव का
सहारा लेना चाहिए।

साधना मे सबसे ज्यादा
खतरनाक है- प्रमाद, वह अनेक रूपो
मे प्राणी को फसा लेता है। इसके जाल को
तोडकर जो हर समय नियमित कार्य मे लगा रहता हे और
शुद्ध अन्त.करण की प्रेरणा को महत्व देता है, वह प्राय सफल
होता है। उसके सामने खतरा
या आपत्ति नाम की कोई शक्ति अधिक
समय नही ठहर सकती।

{385}

सवाल यह है कि व्यक्ति के विकास
से ही समष्टि का विकास सम्भव है। फिर
समष्टि की मुख्यता और व्यक्ति की गौणता कैसे ?
समाधान के लिए हमे व्यक्ति के विकास-क्रम की ओर
ध्यान देना होगा। साधारण दृष्टि से देखने पर वाह्य रूप से यह
मालूम होता है कि व्यक्ति की प्रधानता होनी चाहिये। मगर वस्तुत.
यह दृष्टि सूक्ष्म चिन्तन का अभाव द्योतन करती है। विकास समष्टि
प्राधान्येन होता है। इसके अभाव मे विकास न होकर हास होता है।
व्यक्ति अपने-आपको समष्टि के लिए अर्पण कर देता है, तभी उसका
विकास सम्भव है। विकास की चरम सीमा समष्टि प्रधानता से
भी बहुत दूर, बहुत दूर पहुँचाती है। इसका विशाल अन्वेषण हुए बिना
सही विकास-क्रम जल्दी
समझ में नही आ सकता।

{386}

भाषाज्ञान ही पूर्ण शिक्षा का रूप नही
ले सकता। वह तो स्वानुभूति व्यक्त करने के
साधनो मे से अनुकरणशील साधन का अंशमात्र है। आर्थिक एवं
राजनैतिक समस्याओ का हल करने के लिए जो शिक्षा दी जाती
है, वह भी आशिक शिक्षा ही कही जा सकती है। सम्पूर्ण सामाजिक
एवं आध्यात्मिक समस्याओ का हल जिस कला से हो सकता हो,
वही कला शिक्षा का पूर्ण रूप पा सकती है।

{387}

{388}

समात के सहारे परमात्मा
तक पहुँचा जा सकता है।
प्रभु महावीर का छद्मस्थकालीन
जीवन-वृत इस बात का
ज्वलन्त उदाहरण है।

{389}

मानव केवल
जीवनयापन तक ही
सीमित न रहे। जीवन-
यापन के साथ उसे
धर्म का आँचरण भी
करना चाहिए।

{390}

समत्व के
धरातल पर
सब मानव, जीने
के समान
अधिकारी है।

{391}

क्रोध स्कन्ध लाल-लाल
चिनगारियो के साथ विषमय
बाणो की वर्षा होती है। फलत शरीर मे विष
ग्रन्थियो का नियन्त्रण समाप्त सा हो जाता
है। विष ग्रन्थियो का प्रभाव शरीर पर व्यापक
मात्रा मे पडता है।

{392}

क्रोध की अवस्था मे विष
वर्षा ग्रन्थियो के सक्रिय एव सतेज
हो जाने से शरीर का सम्पोषक रक्त
कुछ मात्रा मे तो वही जल जाता है तथा
अवशिष्ट रक्त विषैला बन जाता है। इसी
विषैले रक्त के कारण शारीरिक एव मानसिक
व्याधियो का प्रादुर्भाव होने लगता है।

{393}

धर्म से
हीन मानव पशु
के समान माना
जाता है।

{394}

मानवता के
आधार पर ही
अध्यात्म का भव्य प्रसाद
खडा हो सकता है।

{395}

जब तक क्रोध के स्वरूप
एवं उसके प्रभाव से होने वाली
हानियो का सम्यग् प्रकार से समता पूर्वक
अवलोकन करने का प्रयास नही किया जायेगा
तब तक क्रोध जैसे दुर्दान्त शत्रु को परास्त
नही किया जा सकेगा।

अभी भी मानव-मानव मे समानता या एक-दुसरे के प्रति हमदर्दी नही आ पाई है। कल्पित कुटुम्च तथा व्यक्तिगत स्वार्थ ही मनुष्यो के दिलो पर जाल की तरह छाये हुए है। जब तक यह जाल रहेगा, तब तक मनुष्य के दिल व दिमाग साफ नही हो सकते और हमारे बन्धुओ की जो हालत बनी हुई है, उसमे परिवर्तन नही हो पायेगा। इस परिवर्तन के बिना सभी विकास-मार्ग कुण्ठित हो रहे हैं। अतएव हम प्रतिज्ञा करे कि सबसे पहले मानव-मात्र को सच्चे बन्धुत्व के रूप मे देखें, फिर दूसरे काम को हाथ मे ले। {396}

नई तालीम दी जाय, मगर नई तलीम का नक्शा वास्तविक एवं स्थायी शान्ति का हो। बुनियादी आवश्यकताओ के साधनो का विकेन्द्रीकरण होकर अन्न-वस्त्र आदि जरूरी चीजो मे स्वालम्बी एवं स्वतन्त्र हो जाये, फिर भी जब तक प्रत्येक प्राणी एक-दूसरे का अंग हैं, एक कुटुम्बी है, एक ही प्रकृति माता की सन्तान-सहोदर भाई है और उनके साथ मेरा वही कर्त्तव्य है जो कि स्वशरीर के साथ है, ऐसी विश्व-व्यापी एकात्मीयता की शिक्षा नई तालीम के नक्शे मे मुख्य रूप से नही रखी जायेगी, तब तक वर्ग-विहीन, शोषण-विहीन एवं स्थायी शान्ति नही हो सकती । {397}

जो इन्सान हिन्दुस्तान को ही अपना देश मानता है और अन्य देशो को अपना देश नही मानता, वह वस्तुस्वरूप को समझने मे भूल करता है। अगर अन्य देश - निवासी भी अपने-अपने देश को तो अपना और हिन्दुस्तान आदि अन्य देशों को दूसरे देश समझते हैं तो वे भी गलत रास्ते पर हैं। यह सकुचित दायरे की शिक्षा का परिणाम है। इन्सान अपनी इन्सानियत को नही समझकर ही ऐसा कहता है। वस्तुत प्रत्येक प्राणी का समस्त विश्व अपना देश है। यह इन्सान की प्रवृत्ति का प्रथम कदम होना चाहिए। {398}

{399}

मानव के मस्तिष्क पर
कल्पनाओ का बोझ इतना लद
चुका है कि जिस बोझ के रहते हुए वह
जीवन के सम्यक् स्वरूप से अनभिज्ञ सा
हो गया है।

{400}

समत्वभाव के
आधार पर उसे प्रिय
के प्रति राग भाव एवं अप्रिय
के प्रति द्वेष भाव को मिटाने
का प्रयास करना चाहिए।

{401}

व्यक्ति अपने समत्वभाव
के विचारो के आधार पर
भयकर दु.ख मे भी
सुखानुभूति कर
सकता है।

{402}

जो आवेश, क्रोध, मोह,
ईर्ष्या और द्वेष के विचारो मे भोजन कर रहा
है वह अपने वर्तमान जीवन मे भी जहर घोल
रहा है और भावी जीवन को भी
बिगाड रहा है।

{403}

जैसे भार मुक्त व्यक्ति
सरलतापूर्वक पर्वत की ऊँचाई को
नाप सकता, वैसे ही साधना की ऊँचाई वही
व्यक्ति नाप सकता हे जिसके मस्तिष्क पर
कल्पानाओ -इच्छाओ का भार न हो।

{405}

किसी भी
व्यक्ति विशेष या
परिस्थितिविशेष से भय खाना
और उससे पीछे हटना या
स्वय परकाबू नही रख
सकना अत्यधिक
कायरता है।

{406}

मानव की
इच्छाओं का जाल इतना
विस्तृत होता है कि उसको
कोई छेदना चाहे तो वह
छेद नही सकला।

{407}

इच्छा लोक मे जीने वाला
मानव इच्छाओ की सफलताओ
के संबंध मे अवश्य विचार करता हे पर
उसका फल सुखदायी होगा
या दु.खदायी ? इसका विचार
वह नही करता।

नास्तिक और आस्तिक का विवाद चलता रहता हे, मगर ऊपर-ऊपर से। आस्तिक इहलोक, परलोक, आत्मा, पुण्य, पाप आदि की व्यवस्था किया करते है, साथ ही इन वातो को पुष्ट करने के लिए भरसक प्रयत्न भी करते है, किन्तु इधर-उधर की युक्तियो प्रत्युक्तियो से, न कि वस्तुस्वरूप को समझकर। यही हालत नास्तिक की है। वह भी आस्तिक से विपरीत पैतरा लेकर चलता है, पर वस्तुस्वरूप को नही समझ पाता। दोनो अन्धकार मे भटकते रहते है और इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ ही नष्ट कर देते है। {408}

'अुमक बडे आदमी ने अमुक मत का समर्थन कर दिया, वह अधिक फैलेगा, हमारे मत का समर्थन नही हुआ, अतएव हमारा मत कमजोर हो जायेगा, उसके पास हमें भी पहुँचना चाहिए' ऐसी बाते कमजोर दिल के मनुष्य कहा करते है। यह नही सोचते कि हमने जो मत स्वीकार किया है, वह सोच-विचार कर किया है या बिना सोचे। अगर सही मायने मे सोचा है और उसे जीवनोपयोगी अनुभव भी कर रहे है, तो हमें किसी प्रकार की चिन्ता नही करनी चाहिए। निर्भयता एव दृढता से उसका अनुसरण करते हुए आगे बढना चाहिए। दूसरे किसी असयमी की प्रामाणिकता की छाप का गुलाम रहने वाला मनुष्य कभी सुख तथा शान्ति नही पा सकता है, सुख एवं शांति का सही मायने मे वही अनुभव कर सकता है, जो पवित्र अन्त.करण की प्रामाणिकता तथा दिव्य दृष्टि की छाप चाहता हो। {409}

अगर अपने वचन को सार्थक एवं असरकारक देखना चाहते हो, तो कम बोलो, आवश्यकता के अनुसार वाणी का प्रयोग करो, अवसर एव समय का अवलोकन कर शब्द का उच्चारण करो। इससे तुम्हारे शब्दो की कदर होगी और वाचिक प्रयोग सार्थक एव हितकर होगा। मुँह मिला है, जिह्वा मिली है, इसका प्रयोग हर समय होना ही चाहिए, ऐसा विचार कर जो हर समय बोलता ही रहता है, वह अपनी वाचितक शक्ति को व्यर्थ नष्ट करके विफल होता है। उसके शब्दो की कोई इज्जत नही करता। {410}

{411}

व्यक्ति का अन्तरग
ह्रइय यदि स्वच्छ, निर्मल एव
पवित्र है तो उसके हृदय से उठने वाली
बाल आन्तरिक अनुभूति से सम्पन्न होगी जो
अन्तर को छूए बिना नही रहेगी।

{412}

क्रोध मानव
जीवन का प्रबल शत्रु है।
जिसको परास्त करना
सामान्य मानव के लिये
आसान नही होता है।

{413}

क्रोध का
आक्रमण व्यक्ति को
हिताहित का विवेक भुला
देता है। जिससे विनाशकारी
स्थिति बन जाती है।

{414}

आज के अधिकाश
उपदेष्टा जैसा कहत है वैसा
जीते नही और जैसा जीते है वैसा कहते
नही। ऐसी स्थिति मे उनके उपदेशो का
स्थायी प्रभाव न पडे, यह सम्भव है।

{415}

हर उपदेष्टा को यह
अवश्य ख्याल रखना चाहिये
कि वे जैसा उपदेश कर रहे है वैसा ही
शक्ति भर जीने का प्रयास करे। जीवन
की द्विरूपता को समाप्त कर
शुद्ध हृदय से उपदेश करे।

{416}

क्रोध आतरिक
शक्तियो की प्रबलता
से घात करेन वाला है। यह
एक तीक्ष्ण शस्त्र के समान
आत्मा पर करारी चोट
करता है।

{417}

क्रोध की
अवस्था मे आत्मा,
विवेक-विकल हो जाया
करती है। उस समय उसे
अपने हित,अहित का कुछ
भी विज्ञान नही हो पाता।

{418}

मनुष्य के विचारो पर
उसके भोजन का पर्याप्त पडता है जैसा
भोजन वह करता हे उसी के अनुसार उसके
विचार वनते है और जैसे विचार वनते हे,
तदनुसार उसका आचरण वनता है।

कितना ही सुन्दर सिद्धान्त
हो और उसका शाब्दिक प्रचार सारे
संसार मे भी क्यो न कर दिया हो, उसे
वास्तविक प्रचार नही कहा जा सकता। वास्तविक प्रचार
जितना आचरण द्वारा हो सकता है, उतना अन्य साधनो से
नही हो सकता। चाहे उनकी (आचरणकर्त्ताओ की) सख्या कम
ही क्यो न हो, मगर वही स्थायी होता है।

{419}

विश्व एक घर है। इसमे विविध प्राणीगण
तथा विविध पदार्थ विद्यमान है। इन सभी को सही
तौर पर भलीभाति जानना एव उनके साथ यथार्थ वर्तन स्वरूप
कर्त्तव्य-दृष्टि का पालन होना जन्मसिद्ध अधिकार
के रूप मे स्वत. बनता है। उस अधिकार के हस्तगत होने के पूर्व ही
जन्म-जन्मान्तर को प्राप्त होना अकालमृत्यु के समान हैं, जो कि
मानव-जीवन के लिए कत्तई योग्य नही है पर मानव इस रहस्य को
सही माने मे यथार्थ रूप से समझ ही नही पाता और एक दृष्टि के
बचपन के जीवन को सब कुछ मानकर उसी मे समाप्त हो जाता है।
यह कितनी विचारणीय बात है, खासकर
समझदार कहलाने वालो के लिए।

{420}

मनुष्य स्वाभाविक तौर से शान्त
वातावरण पसन्द करता है। उसी की प्राप्ति
के लिए कुछ कोशिश करता है। अंशमात्र का आभास पाकर
वह सोचता है कि मैंने सफलता पा ली। मगर जिस समय
उससे विपरीत वातावरण सामने आता है, उस समय वह
आभास किधर रह जाता है और मनुष्य किधर चला जाता है।
वह स्वय नही सोच पाता कि मै कहा हूँ ... ?

{421}

{422}

मानव प्रतिदिन जो भोजन करता है, उस भोजन मे यदि वह शुभ विचारो का आतरिक तत्त्व मिला ले तो उस भोजन से वह मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। साथ ही आत्मशुद्धि का भी भव्य प्रसग उपस्थित करता है।

{423}

जीवन की एकरूपता का प्रभाव भी जवर्दस्त पडता है।

{424}

मोह का भुजंग किसी आत्मा को न डसे हमारी यह भावना समस्त आत्माओ के साथ तादात्म्य रूप से जुड जाये।

{425}

शुभ-विचारो को भी विटामिन की सज्ञा दी जा सकती है। वह विटामिन अगर मनुष्य के भोजन के साथ मिल जाये तो उस भोजन मे द्विगुणित शक्ति-ताकत पैदा हो जाती है। उस ताकत से आत्मशक्ति से कमजोर व्यक्ति भी बलवान बन जाता है।

{426}

भोजन को जीवन का वरदान भी कह सकते है और अभिशाप भी। शुद्ध विचारो के साथ किया गया भोजन वरदान स्वरूप बन जाता है और अशुभ विचारो के साथ किया गया भोजन अभिशाप स्वरूप बना जाता है।

{427}

मनुष्य का लक्ष्य, जीने के लिए खाना है, न कि खाने के लिए जीना है।

{428}

आकाश का जैसे कोई ओर छोर नही होता वैसे ही इच्छाओ का भी कोई ओर-छोर नही होता ।

{429}

व्यक्ति यदि क्रोध की अवस्था मे भोजन करता है तो वह उस भोजन से अपने शरीर मे जहर पैदा कर लेता है। कभी-कभी उस जहर से व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है।

शान्त दिमाग के विना वस्तुस्थिति का
सही अनुभव नही हो सकता। बुद्धि-विस्तार के
लिए प्रेरक विचार विमर्श की आवश्यकता होती है। जय-पराजय
की दृष्टि से किया गया विचार-विर्मश सही निर्णय पर नही पहुँच
सकता। सही निर्णय पर पहुँचने के लिए पवित्र दिल, शान्त
दिमाग एवं जिज्ञासावृत्ति
की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

{430}

जब तक अन्य कार्यो मे मन उलझा रहता है,
तब तक विचार-प्रवाह को समझने की ओर मुडना
मुश्किल होता है। अपूर्ण व्यक्ति के उपयोग की अवस्था
एक समय मे एक ही विषय की ओर होगी। जिस विषय की तरफ अधिक
आकर्षण होगा, उसी विषय की तरफ उसका
ध्यान अधिक जायेगा और उस तरफ से ध्यान हटे
बिना अन्य विषय मे प्रवेश नही बन पायेगा।
जिसमे आकर्षण बना है, उसके वास्तविक
स्वरूप को जानने पर उसके गुण-दोष का भान हो
सकता है। गुण-दोष का भान होने पर उसमे आकर्षण की
शक्ति कमजोर बनती है और जिसकी ओर मुडना चाहता है
उसके महत्त्व का भली-भाति ज्ञान होने पर उधर आकर्षण पैदा
हो सकता है और वैसी स्थिति मे उस ओर मुडने में तथा
उसके स्वरूप को समझने मे अधिक प्रयास
करने की आवश्यकता नही रहेगी।

{431}

छोटी-छोटी बातो को लेकर पद-लिप्सा से
कोई गुट या पार्टी बनाना जनता के प्रति धोखा
करना है। यह देश या समाज की सुव्यवस्था की ओट
मे देश व समाज के प्रति द्रोह है। वास्तविक रूप से जन-सेवा करने
वाले ऐसा कभी नही सोचते। उनके तन, मन और धन व्यर्थ के
कामो मे नष्ट नही होते। वे व्यक्तिगत स्वार्थ के पीछे पार्टीबाजियो मे
नही पडते। वे सही रूप से कर्त्तव्य को सामने रखकर चलते
है, न कि निजी या व्यक्तिगत स्वार्थ को।

{432}

{433}

मानव मस्तिष्क से ही
पुरुषार्थ की तेजास्विता को पहचाना
जा सकता है। आप जो कुछ पुरुषार्थ कर रहे
है वह सम्यक् दिशा मे कर रहे हैं या विपरीत
दिशा मे? इस बात की समीक्षा करना ही
आपका लक्ष्य होना चाहिए।

{434}

असीम
इच्छाओ को समीम
बना लेना और उन ससीम
इच्छाओ को भी छोडते
चले जाना साधना का
स्वरूप है।

{435}

सुख दु.ख
के अनुभव के पीछे उस
आत्मा के स्वीकृत कर्मो
का ही खेल
रहा है।

{436}

कर्मो की गति
बडी विचित्र होती है और उसमे
भी विचित्र इस आत्मा की प्रवृतियॉ होती
है। जिन प्रवृतियो से सुख
दु ख निमित्तक कर्मोपार्जन
होता है।

{437}

फिल्म हॉल मे बैठ कर कोई
इन्सान सिनेमा को देख-देख कर हसे और रोए
तो उसे क्या आप उचित कहेगे? वैसे ही इस
दुनियाँ के हाल मे बैठकर जिन्दगी के सुख दु ख
के चल-चित्रों को देखकर इन्सान का हसना, रोना
भी उचित नही कहा जा सकता।

{438}

सुख निमित्तक
कर्म के बीज भी इन्सान
ही बोता है और दु.ख
निमित्तक कर्म के बीज
भी वही
बोता है।

{439}

क्षण भगुर
सुख दु.ख के
प्रसंगो पर समत्व का
अवलम्बन लेना ही श्रेष्ठ
कहा जा
सकता है।

{440}

अशुभ कर्मोदय के परिणाम
को भोगने मे हाहाकार किया,
आर्तरौध ध्यान किया तो और अधिक अशुभ
कर्मो के बीज पल्लवित होगे ओर यदि
समभाव रखोगे तो वे अशुभ कम्र बीज अपने
परिणाम बताकर खत्म हो जायेगे।

आर्थिक समस्या के हल मे अनेक बाधाएँ है।
उनमे पूजीपति आदि भी शामिल है। उन बाधाओं को
दूर करने मे हिसक तरीका गलत मार्ग है। इससे समस्याएँ
उलझेगी ही, सुलझेगी नही। अहिसक तरीके से बुनियादी
आवश्यकताओ मे स्वावलम्बीपन बहुत कुछ सहायक हो सकता है।
मगर जब तक पदार्थो की दुरूपयोगिता एवं व्यर्थ अपव्यय नही
मिटेगा, तब तक आर्थिक समस्या का सही हल नही हो सकता।

{441}

सृष्टि में अनेक प्रकार की प्रक्रियाएं
चला करती है। उनमे विभिन्न रूप एवं विभिन्न
शक्ति काम करती है। उनमे एक शक्ति के साथ दुसरी शक्ति के
बलाबल का विषय भी रहता है। जिस शक्ति का अपेक्षाकृत अधिक
प्राबल्य होगा, वह शक्ति अपने से हीन शक्ति को तोडने की प्रक्रिया
करेगी। कमजोर शक्ति यदि शक्तिशाली शक्ति की सजातीय है, तो वह
उसमे मिल जायगी और यदि विजातीय है, तो उसको बिखेर देगी,
जिससे उसका प्रभाव बिखर जायगा। वह अन्य पर
अन्य रूप से जायगा और उसका प्रभाव भी
इतना नही रहेगा जिससे अन्य को मूल
शक्ति से प्रभावित कर सके।

{442}

अन्त करण मे अनन्त वासनाएँ छिपी हुई है।
जिसका जिस समय प्रबल निमित्त आता है, उसी
समय वह उभर पडती है। हर समय उन्ही वासनाओ का परस्पर
संघर्ष एवं विप्लव होता रहता है। अतएव अधिकांश मनुष्य
स्वजीवन की वास्तविक झॉकी नही देख सकते और उसके बिना
जीवन का सही मार्ग नही मिल सकता। प्रशान्त एवं निर्मल मन
की स्थिति ही इसके साधन रूप मे सिद्ध हो सकती है।

{443}

{444}

वास्तविक शक्ति को केन्द्री
भूत करने के लिए शक्ति का
सदुपयोग करना नितान्त आवश्यक है।
इसके बिना जीवन प्राप्त होना,न होना
प्राय एक–सा है। अत प्राप्त जीवन का
वस्तुत लाभ उठा लेना बुद्धिमान मानव
का परम कर्तव्य बन जाता है।

{445}

सत्प्रयत्न
निरन्तर चालू रहना
चाहिए। एक रोज अवश्य
सफलता मिलेगी। इसमे
जरा भी सशय को
अवकाश नही है।

{446}

निरन्तर एक
ही प्रयत्न करते रहने से
मन के ऊब जाने की
स्थिति बन सकती है।

{447}

सस्कार–केन्द्र जीवन का
मुख्य माध्यम है। सम्पुट रस मे
इससे शक्ति प्राप्त हुआ करती है। वह सम्पुट
रस का प्रवाह विभिन्न अनेक ग्लेण्डस् कोशो मे
प्रवाहित होकर विभिन्न रासायनिक शक्तियो मे
परिणत होता है, जिससे समग्र जीवन के
परिनिर्माण मे सहायता मिलती है।

{448}

छलना भयकर पाप है। इससे
सभी तरह की हानिया हैं।आन्तरिक
जीवन पर पर्दा पडता है, विकास–मार्ग समाप्त
होता है, विकसित जीवन की कडियाँ कुण्ठित
होकर दब जाती है, मलीनता का साम्राज्य छा
जाता है, मानव मानव के रूप मे न रहकर
दानव व पशु के
रूप मे चरण रखता है।

{449}

सही जीवन
कला को प्राप्त करने के
लिए प्रतिक्षण सजग रहने
की नितानत आवश्यकता
है।

{450}

समूह को
समाज नही कहा
जा सकता। समूह के साथ
नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा एव
उसको जीवन मे स्थान देने
वालो का समाज
बनता है।

{451}

एक समान सत्प्रत्यन
मे मन के ऊब जाने की
स्थिति महसूस होने लगे तो सजातीय अन्य
प्रयत्न किय जा सकते है। बशर्ते कि
निर्धारित लक्ष्य
सदा सन्मुख रहे।

आर्थिक समस्या के हल मे अनेक वाधाएँ हे।
उनमे पूजीपति आदि भी शामिल है। उन वाधाओ को
दूर करने मे हिसक तरीका गलत मार्ग हे। इससे समस्याएँ
उलझेगी ही, सुलझेगी नही। अहिसक तरीके से वुनियादी
आवश्यकताओ मे स्वावलम्बीपन वहुत कुछ सहायक हो सकता हे।
मगर जब तक पदार्थो की दुरूपयोगिता एव व्यर्थ अपव्यय नही
मिटेगा, तब तक आर्थिक समस्या का सही हल नही हो सकता।

{441}

सृष्टि मे अनेक प्रकार की प्रक्रियाएं
चला करती है। उनमे विभिन्न रूप एवं विभिन्न
शक्ति काम करती है। उनमे एक शक्ति के साथ दुसरी शक्ति के
बलाबल का विषय भी रहता है। जिस शक्ति का अपेक्षाकृत अधिक
प्राबल्य होगा, वह शक्ति अपने से हीन शक्ति को तोडने की प्रक्रिया
करेगी। कमजोर शक्ति यदि शक्तिशाली शक्ति की सजातीय है, तो वह
उसमे मिल जायगी और यदि विजातीय है, तो उसको विखेर देगी,
जिससे उसका प्रभाव विखर जायगा। वह अन्य पर
अन्य रूप से जायगा और उसका प्रभाव भी
इतना नही रहेगा जिससे अन्य को मूल
शक्ति से प्रभावित कर सके।

{442}

अन्त करण मे अनन्त वासनाएँ छिपी हुई है।
जिसका जिस समय प्रबल निमित्त आता है, उसी
समय वह उभर पडती है। हर समय उन्ही वासनाओ का परस्पर
सघर्ष एव विप्लव होता रहता है। अतएव अधिकांश मनुष्य
स्वजीवन की वास्तविक झॉकी नही देख सकते और उसके बिना
जीवन का सही मार्ग नही मिल सकता। प्रशान्त एवं निर्मल मन
की स्थिति ही इसके साधन रूप मे सिद्ध हो सकती है।

{443}

{444}

वास्तविक शक्ति को केन्द्री
भूत करने के लिए शक्ति का
सदुपयोग करना नितान्त आवश्यक है।
इसके बिना जीवन प्राप्त होना,न होना
प्राय एक–सा है। अत प्राप्त जीवन का
वस्तुत लाभ उठा लेना बुद्धिमान मानव
का परम कर्तव्य बन जाता है।

{445}

सत्प्रयत्न
निरन्तर चालू रहना
चाहिए। एक रोज अवश्य
सफलता मिलेगी। इसमे
जरा भी सशय को
अवकाश नही है।

{446}

निरन्तर एक
ही प्रयत्न करते रहने से
मन के ऊब जाने की
स्थिति बन सकती है।

{447}

सस्कार–केन्द्र जीवन का
मुख्य माध्यम है। सम्पुट रस मे
इससे शक्ति प्राप्त हुआ करती है। वह सम्पुट
रस का प्रवाह विभिन्न अनेक ग्लेण्डस् कोशो मे
प्रवाहित होकर विभिन्न रासायनिक शक्तियो मे
परिणत होता है जिससे समग्र जीवन के
परिनिर्माण मे सहायता मिलती है।

{448}

छलना भयंकर पाप है। इससे
सभी तरह की हानिया है।आन्तरिक
जीवन पर पर्दा पडता है, विकास–मार्ग समाप्त
होता है, विकसित जीवन की कडियॉ कुण्ठित
होकर दब जाती है, मलीनता का साम्राज्य छा
जाता है, मानव मानव के रूप मे न रहकर
दानव व पशु के
रूप में चरण रखता है।

{449}

सही जीवन
कला को प्राप्त करने के
लिए प्रतिक्षण सजग रहने
की नितानत आवश्यकता
है।

{450}

समूह को
समाज नही कहा
जा सकता। समूह के साथ
नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा एवं
उसको जीवन मे स्थान देने
वालो का समाज
बनता है।

{451}

एक समान सत्प्रत्यन
मे मन के ऊब जाने की
स्थिति महसूस होने लगे तो सजातीय अन्य
प्रयत्न किय जा सकते है। बशर्ते कि
निर्धारित लक्ष्य
सदा सन्मुख रहे।

सस्कारो को वस्तुत सस्कार
के रूप मे समझने की तथा स्वय
को सही माने मे समझने की क्षमता जिसमे है,
वही नित्य तथा मूल रूप मे शाश्वत तत्त्व है। वह शाश्वत तत्त्व
शून्य नही, वस्तुस्वरूप है। सस्कार
का आधारस्वरूप तत्त्व अशाश्वत यानी
नष्ट हो जाता है। उसको बिखेरना
चेतनाशक्ति का काम है।

{452}

{453}

विचार–धाराओ का प्रवाह यदि सही मायने मे समझ लिया
जाय, तो उनकी विभिन्न अवस्थाएं ज्ञात हो सकती है और वह प्रवाह
कहॉ से किस उद्देश्य से प्रवाहित हुआ, कहॉ किन से टकराया, किस प्रकार
उस प्रवाह की स्थिति बिखरी, उसमे मौलिक अंश कितना रह पाया, वह अब
कितना अन्य पर असर कर पायेगा, कितनी गति से उस व्यक्ति तक पहुँचेगा,
अन्य वायुमण्डल को कितना दूषित कर पायेगा, जिस व्यक्ति से वह प्रवाहित
हुआ, उस व्यक्ति की शक्ति से क्या–क्या परिवर्तन आ पावेगा,इसका भी पता
चल सकता है। किस जाति के किन–किन विचारो से उसका संसर्ग हुआ और
किन–किन विचार–प्रवाहो के साथ उसका संघर्ष हो सकता है, उसके बाद
उनमे क्या परिवर्तन आ सकेंगे, उनकी मूल जड क्या है, कैसे उनमें ताकत आ
सकती है? आदि अनेक तरह की अवस्थाओं का ज्ञान होने पर इन्सान की
स्थिति कुछ और ही बन जाती है। उसमें स्वयं वह ताकत आ सकती है कि
बिना किसी तार या मशीन, आदि भौतिक माध्यम के काफी दूर तक का विज्ञान
प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार की प्रक्रियाओ से यदि आगे बढने की शक्ति
प्राप्त की जाये तो मनुष्य स्वतन्त्र स्वावलम्बिता के साथ मनुष्यपन
को प्राप्त करता हुआ अमृत की ओर बढ सकता है। और वर्तमान
की अशान्ति का किसी हद तक अन्त आ सकता है।

जीवन विश्व की अनेक विभिन्न इकाइयो
मे से एक है। इसक के अन्दर तत्त्व न्यूनाधिक
रूप से बीज रूप मे विद्यमान है। उन सभी तत्त्वो का विकास भी
किया जा सकता है और शरीर के अतिरिक्त अन्य भौतिक साधन
के बिना विश्व की हलचल का ज्ञान हो भी सकता है। अपने
अस्तित्व को स्वतन्त्र रूप में कायम रखते हुए विश्वस्थ सबंधों को
स्वच्छ भी रखा जा सकता है।

{454}

{455}

स्वय के लिए कठोर
आचरण एव अन्य के साथ मृदुल
आचरण एक विशिष्ट वायुमण्डल का
निर्माण करता है। उसकी कृति चमत्कृति
से ओत- प्रोत हो
जाया करती है।

{456}

शान्ति तो
स्वय से व्यक्त की जाती
है,शान्ति पर आया हुआ
आवरण पर पदार्थो के
ममत्व के हटने
पर हटता है।

{457}

जो सम्यक्
निर्णायक है,
समतामय है
वही जीवन है।

{458}

भारतीय सस्कृति एक
आदर्श संस्कृति है। विदेशो के आकर्षण का
केन्द्र है। इस सस्कृति के द्वारा मानव
अपना आध्यात्मिक विकास करके चिर सुख
शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

{459}

जो शक्ति प्रभु मे है वही
शक्ति हमारे अन्दर भी विद्यमान
है। अत प्रभु का स्मरण करने से उस शक्ति
से सम्पर्क हो सकता है। और एक दिन हम
भी उतने शक्तिवान
बन सकते है।

{460}

चिर काल
से असंस्कारित जीवन
को सस्कारित करने मे
प्रमाद
मत करो।

{461}

हमे समता के
पीछे जाना है, समानता के
पीछे नही। समता और
समानता मे भारी
अन्तर है।

{462}

विभिन्न रगीन एकागी
विचारो के समूह मे अधिकाश प्राणी उलझ
गये है। अत. अनन्त सूर्य के प्रकाश को भी
मात करने वाले आत्मिक शुद्ध स्वरूप को
पकड नही पा रहे है।

जो पंडित मरण करता है, वह मृत्यु को
जीत ही तो लेता है। पडित मरण की दृष्टि से जो
मृत्यु को समझ लेता है और निर्भयता के साथ उसका आह्वान
करने के लिये अग्रसर होता है कि मै मृत्यु के लिये ही चल रहा
हूँ– मृत्यु कब आवेगी किन्तु मै पहले ही उस मृत्यु के रूप को
अंगीकार करता हूँ तो वैसा साधक मृत्यु को मृत्यु के आने से
पहले ही हरा देता है। जो मरने के लिये तैयार होता है, उसी
से मृत्यु खुद डरने लग जाती है।

{463}

{464}

किसी भी तत्त्व का परीक्षण उसके
कुछ स्वाभाविक भाग से किया जा सकता है।
सारे तत्त्व को मथने की आवश्यकता नही रहती। हाँ,
उस तत्त्व में यदि कोई विजातीय तत्त्व हो, तो उसका निखालस
वर्गीकरण पहले हो जाना आवश्यक है। यही बात व्यक्ति के व्यक्तित्व
मे, व्यक्ति की वृत्तियो मे प्रवृत्तियो मे, मन की स्थितियो मे, स्वभाव
मे, आत्मिक स्वरूप मे और सृष्टि की प्रक्रिया मे भी समझना चाहिए।
पर वर्गीकरण व परीक्षण तथा उसका सही तरीके के साथ
निरीक्षण करने में पूरी–पूरी सावधानी की
नितान्त आवश्यकता हैं।

सच्ची कर्तव्यनिष्ठा के सामने भय और
चिन्ता व्यर्थ है। भय और चिन्ता से शारीरिक
एवं मानसिक हानियां अधिक हुआ करती हैं। इससे जीवन निर्माण
मे अनेक बाधाएं उपस्थित होती है पर यदि मानव उन बाधाओ मे
उलझ गया, तो सर्जनशक्ति का उपयोग उसी में लग सकता है।
वैसी स्थिति मे एक दृष्टि से उस शक्ति का दुरूपयोग होगा,
जो कि एक बहुत बडी हानि हैं।

{465}

वास्तविक जीवन-कला प्राप्त करने के लिये सही दिशा मे सतत चिन्तन की नितान्त आवश्यकता रहती है। उसके पश्चात् स्वानुभूति की दिव्य शक्ति जागृत की जाये, तभी उससे सही जीवन-कला की चाबी प्राप्त की जा सकती है। इन प्रक्रियाओं मे विवेक-शक्ति के पुट का रहना नितान्त जरूरी है।

{474}

{475}

शरीर के अन्दर रहने वाला प्रत्येक अवयव अपने-अपने स्थान पर रहता हुआ किस खूबी से अपना कार्य संपादन करता हे। केन्द्रीय स्थान से जिस भी बात की आज्ञा प्राप्त होगी, उसके अनुसार वह अवयव निरन्तर अपनी गति से अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है, उसको कोई देख या नही देखे। कोई उसकी तारीफ करे या निन्दा। वह अवयव इन बातों पर जरा भी ध्यान न देकर प्राप्त आज्ञा को कार्यरूप मे परिणत करता रहेगा। निन्दा या स्तुति का असर यदि केन्द्रीय स्थान पर हुआ, तो उस असर की झॉई के साथ आज्ञा अवयव के पास पहुॅचेगी तथा उतनी मात्रा के अनुरूप परिवर्तन आयेगा। जरा भी विपरीत या न्यूनाधिक नही। अतः शरीर के प्रत्येक अवयव की इस प्रमाणिकता से भी मनुष्य को प्रमाणिकता की शिक्षा लेनी चाहिए।

अशाति जीवन को तपाती है और शान्ति जीवन को सुख देती है। अशान्ति एक जहर है और शान्ति अमृत है। अशान्ति जीवन मे वेदना पैदा करती है और शान्ति जीवन के प्रत्येक अणु को प्रफुल्लित करती है। शान्ति स्व-आश्रित है। जब तक मनुष्य पराश्रित है और बाह्य पदार्थो मे शान्ति ढूढता हे, तब तक वह शान्ति का वास्तविक दर्शन नही कर पाता।

{476}

{477}

हमे अपने स्वरूप का निर्माण विकास स्वय को ही करना हे और जो निर्णायक शक्ति छिपी हे, शरीर मे दबी हुई है, उसको प्रकट करना है, उसमे निखार लाना है।

{478}

भोतिकता मे रहकर भी उस से दूरी वनाए रखे। यदि उसमे एकमेक नही होते हे तो अध्यात्म का फूल खिल जाएगा।

{479}

समता किसी व्यक्ति विशेष की बपोती नही है। वह प्राणी मात्र के अपनाने का तत्व है। मानव जीवन का निचोड है।

{480}

हम अपनी आत्मा के समान यदि प्रत्येक प्राणी को देखते हे और सुख दु.ख मे समता का भाव करते हे तो हम समता सिद्धान्तवादी हे।

{481}

आध्यात्मिक और बाह्य ये जीवन के दो पक्ष हे, जीवन की दो धाराएँ है। एक दूसरे से सर्वथा भिन्न नही है, अपितु पूरक हे। इन दोनों के वास्तविक चिन्तन से ही जीवन का सर्वागीण स्वरूप अभिव्यक्त होता है।

{482}

अपने जीवन के अदर दूसरो की वेदना की जव अनुभूति नही करेगा,तब तक मानव समता के धरातल पर आरूढ नही हो सकेगा।

{483}

विवेक के प्रकाश मे चलता हुआ भक्त मार्ग मे नही भटकता।

{484}

विचारो की शुद्धि करना ही समता दर्शन का प्रमुख कार्य हे, शुद्ध विचारो से आचार शुद्ध होता हे, ओर फिर सारा जीवन पवित्र व मगलमय हो जाता हे।

प्राणी को अपने स्थान से कोई नही हटा सकता। अन्य प्राणी हटाने की कोशिश अवश्य करते है। मगर वह स्वयं अपने कर्तव्य पर अटल रहकर अपने अन्दर उन आपत्तिजनक कोशिशो को स्थान नही देता है, तो कोई कारण नही कि वह अपने स्थान से जरा भी हट सके। अपने स्थान से विचलित होकर वह तभी दु:ख का अनुभव करता है, जबकि स्वकर्तव्य को छोडकर वह भागना प्रारम्भ करता है। भागते हुए को छोटा प्राणी भी आतंकित कर सकता हे।

{485}

{486}

बाह्य वस्तु के तथा काल्पनिक विचित्रताओ के अंकुर अन्तर मे उत्पन्न होते है। वे ही अंकुर स्व-जातीय, स्व-पोषक परिस्थिति को पाकर निरन्तर बढते है। कच्ची अवस्था से कुछ परिपक्व स्थिति मे बनते हैं। उन्ही मे अधिक परिपक्वता आती है, तब वचन में परिणत होने की योग्यता आ जाती हैं। उससे भी अत्यधिक गाढ स्थिति का निर्माण होता है, तब काया के व्यापार मे व्याप्त होने की योग्यता आती है। उसमें भी अत्यधिक प्रगाढता से काया मे व्याप्त स्थिति मे अत्यधिक तीव्रता दृष्टिगत होगी। इन सभी अवस्थाओ मे आन्तरिक प्रवाह ही न्यूनाधिक रूप मे काम करता रहता हैं। शब्दो का व्यवहार मुख्य-गौणभाव से होता है, लेकिन मन, वचन, काया में तीनों एक दूसरे के यथास्थान पूरक बनते हैं। उसी अनुपात से आन्तरिक सत्व का व्यय-अपव्यय अथवा सद्व्यय एवं सर्जन होता रहता है। अतः इस विषय के सम्यग् विज्ञान को प्राप्तकर विधि के साथ चलना सीख जाये, तो दिव्य शक्ति चमक उठाती है।

जो कुछ भी बाह्य नेत्रो से दिखाई दे रहा है, वह तो उडते हुए निस्सार बारीक भूसे के समान है। अत: इसी में उलझ जाना अमूल्य जीवन को व्यर्थ गवाना हैं, जो कि बुद्धिमान मनुष्य के लिए बहुत ही विचारणीय हैं। इस विषय पर वास्तविक वस्तुस्थिति अवर्णनीय है, पर अनुभवगम्य अवश्य है।
यदि वह अनुभव सही मायने मे हो जाय तो उसे चिन्तामणि रत्न की उपमा सृष्टि के वास्तविक अन्तररहस्य के रूप मे दी जा सकती है।

{487}

ks

{488}

समता ही जीवन
है, ओर विषमता मृत्यु
है। यदि सचमुच ही आप मृत्यु
से जीवन को बचाना चाहते
है तो समता दर्शन का
आराधना कीजिये।

{489}

सच्चा
मानव सदा
आत्म जागरण की
भावना से ही प्रार्थना
करता है।

{490}

अपने भविष्य
को देखने के लिए
वर्तमान एक दर्पण का
काम करता है।

{491}

आप अपने से भिन्न किसी
चिन्तामणी से कामना-पूर्ति चाहते
है पर यह आपका भ्रम मात्र हे। चिन्तामणी तो
आप स्वयं ही है, अपने आपको सभालिये,
अपने आप को पहचानिये, तव चिन्तामणी
रहन का प्रभाव आपके सम्मुख होगा।

{492}

हम जेसा सकल्प
करेगे, जैसा विचार करेग,
जिस प्रकार समता दर्शन का
सहारा लेगे, जिस ढंग से सोचेंगे, वैसे ही
बन जायेगे।

{493}

वर्तमान ही
भविष्य का निर्माण
करता हे।

{494}

जिस दिन
शरीर से आत्मा अलग
हो जाएगी, उस दिन
इसकी सारी सुंदरता
मुरझा जाएगी।

{495}

जिन्होने प्रत्येक क्षण
अपने जीवन को देखा हे, पढा
हे ओर परखा हे ओर जीवन के तथ्यों को
पालते हे। उन्हें जीवन निर्माण की कला
आती ह।

जब समता दर्शन के दृष्टिकोण को
मनुष्य के मस्तिष्क मे जमायेगे, उसके अनुसार
जीवन का निर्माण करने का प्रयत्न करेगे तब मनुष्य समता दर्शन
के दृष्टिकोण से न केवल अपने आपको ही देखेगा बल्कि अपने
पडौसी को भी समता से देखेगा, अपने गांव व राज्य को देखेगा,
राष्ट्र को देखेगा, उसके साथ में समूचे विश्व को उसी दृष्टि से
देखने की स्थिति में आ जायेगा।

{496}

किसी भी व्यक्ति की उन्नति देखकर
अन्तर मे जलन पैदा करना या मन मे पैदा
होने देना कितना निरर्थक कार्य है, इसमे आन्तरिक
महत्वपूर्ण शक्तियॉ कितनी व्यर्थ नष्ट होती हैं, इसका सूक्ष्म निरीक्षण किया
जाये, तो विदित होगा कि उसने बहुत बडी महत्वपूर्ण शक्ति व्यर्थ में नष्ट
कर डाली है, जिसे वह हजारो रूपया खर्च करने पर भी पुन उसी रूप
मे प्राप्त नही कर सकता। इतना ही नहीी, उसने अपने आन्तरिक पवित्र
स्थान मे एक तरह का विचित्र जहर भ्ज्ञी लिया, जिससे वहॉ रही हुई अन्य
शक्तिया भी जहरीली बन सकती है और संक्रामक रोग की तरह फैलकर
अन्य स्थान के वायुमण्डल को भी दूषित
कर सकती है। फलस्वरूप अनेक भद्रिक प्राणी इसके
दुष्प्रभाव से प्रभावित होकर स्व–पर का अहित कर
सकते है। अत बुद्धिमान पुष्ष को पूरी सावधानी
रखने की आवश्यकता है।

{497}

जीवन की सही कला की स्थिति पर
पहुॅचने के लिए आन्तरिक भी तरह के ज्ञान–
विज्ञान का सच्चा अनुभव होने की आवश्यकता है।
इसके लिए पॉच इन्द्रिय और मन की गतिविधि को भलीभॉति समझा
जाये, उसके पश्चात् क्रमिक रूप मे यथाशक्ति इन इन्द्रियो सम्बन्धी
विज्ञान को भलीभांति परखते हुए उन पर योग्य नियन्त्रण की शक्ति
प्रबल बनाई जाये, ताकि उसके माध्यम से आन्तरिक
शक्ति का उद्घाटन किया जा सके।

{498}

{499}

समाज का तात्पर्य हे जहॉं
अनेक व्यक्ति मिलकर साधारण जनसमूह के
लिए हितप्रद मगलप्रद भावनाओ से
ओत-प्रोत होकर मोलिक, नेतिक आचार
सहिता का निर्माण करे।

{500}

आध्यात्मिक
श्रद्धा के विना जीवन का
पोधा पनप नही सकता हे,
वह तो समय से पहले ही
कुम्हला जाएगा।

{501}

आत्म तत्त्व
की सुरक्षा से
ही जीवन की
सुरक्षा है।

{502}

समाज हमारा जीवन हे,
उसको सुव्यवस्थित वनाने वाले
नियम एव सुव्यवस्था उसके प्राण है। अत.
समाज की सुरक्षा, सवृद्धि एव विकास में
सक्रिय योगदान देने
की आवश्यकता रहती हे।

{503}

समाज के प्रत्येक कार्यकर्ता
को पद का व्यामोह छोडकर प्रतिभाशाली
कार्य सक्षम युवा चेतना को प्रोत्साहित कर
आगे लाने
का प्रयास करना चाहिए।

{504}

समता हमारे
जीवन का मूल
तत्त्व हे।

{505}

अपने जीवन
मे धार्मिक क्रांति
लाइये।

{506}

जेसे एक मानव सुखी रहना
चाहता हे वेसे ही समस्त मानव
सुखी रहना चाहते ह। इसी तरह समस्त
आत्माएँ भी सुखी रहना चाहती हे। इसलिए
किसी को कष्ट देना, अपने को कष्ट देना
हे।

जहा क्रिया होती है, वहा प्रतिक्रिया भी होती है, आघात का प्रत्याघात, ध्वनि की प्रतिध्वनि भी होती है। कौन किसके लिये क्या सोच रहा है, उसके मन की कल्पना पास बैठा हुआ साथी भले नही जानता हो, क्योंकि अपूर्ण है। पर मन की क्रिया की गति बडी तीव्र होती है, वह संबधित व्यक्ति के मन तक पहुँच जाती है, और उसकी प्रतिक्रिया उसके मन में अवश्य रूप में होती है। {507}

जैसे भाषाविज्ञान के लिए सर्वप्रथम समग्र अक्षरों का ज्ञान विभिन्न तरीके से उनको पहचान तथा उनका क्रम–व्युत्क्रम,उच्चारण –स्नान, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, व्यंजन, स्वर, किसमे किसकी किस रूप मे स्थिति, आदि का भलीभांति विज्ञान हो जाना आवश्यक है। वैसे ही मानसिक स्थिति की वृत्तियो का विज्ञान भलीभाति हो जाना आवश्यक है। वे वृत्तियां स्थूल और सूक्ष्म होती हैं। द्रव्य और भाव की सज्ञा को भी वे धारण करती हैं।विभिन्न प्रकार से उनके प्रादुर्भाव तथा विलीनता, क्रम–व्युत्क्रम, परस्पर सम्बन्धित– असम्बन्धित, प्रत्यक्ष–परोक्ष, स्थायी,अस्थायी, संस्कारित–असंस्कारित, संकल्पी–असंकल्पी, भावुक–अभावुक,निष्ठुर–कोमल,इन दोनो से विपरीत,आदि अनेक तरह का रूप होता है, उनका चक्रव्यू उनमे परिवर्तन, संक्रमण तथा विनाश एव परिवर्द्धन, परिमार्जन तथा विलग करने की कला,चक्रव्यूह का भेदन करने का विज्ञान, विपरीत अनुभूति को सम्यक् के साथ जोड–तोड करने का ज्ञान,विकारयुक्त आत्मा का निर्विकार स्थिति के साथ शुद्धादि स्थिति से विकास का सही ज्ञान होने पर आगे की अवस्था मे प्रवेश का अवसर आ सकता है। अत· उपर्युक्त विषयो के सही विज्ञान की योग्यता जिस प्रतिमा–बुद्धि में आ सके, वह प्रतिमा माध्यमिक सूक्ष्म स्थित की कही जा सकती है। {508}

ज्ञान की अनुभूति के कुछ गहराई मे पहुँचने पर प्रत्येक बाह्य एव आभ्यन्तर क्रिया–प्रतिक्रिया के आभास की झलक होने लगती है। प्रत्येक क्रिया का असर न्यूनाधिक रूप मे शरीर के अन्य अवयवो पर हुआ करता है। उसका रिएक्शन(असर)भी प्राय· किसी–न–किसी रूप मे बनता है। लेकिन इस का ज्ञान जन –साधारण को तो, दूर बडे–बडे विद्वान या साधारण योगियो को भी नहीं हो पाता। यह भी द्रव्य मन को अधिक एकाग्र नही होने देने मे एक कारण बनता है। {509}

{510}
अन्तरनाद को जगाने
मे यह भौतिकता यह पच विषयो
में प्रवृत्ति समर्थ नही है, यदि इनसे अन्तर
लालसा की पूर्ति होती तो फिर मनुष्य सुख
की दौड में इधर–उधर नही भटकता।
{511}
समता जीवन
की गति मे बाधक नही,
सहायक है। आवश्यकता
है उसे समझने की।
{512}
किसी
को दु ख मे
देखकर उसकी
यथा शक्ति सहायता
न करना मानवता
के कर्तव्यो की
अवहेलना है।
{513}
सनाथ–अनाप का
स्वरूप बाहरी उपाधियो एव
परिधियो से नही समझा जा सकता है,
उसके लिए आत्मिक धरातल
पर आन्तरिक अनुभूति होना
आवश्यक है।
{514}
समग्र आत्म शक्ति
से सम्यक् सर्वांगीण संपूर्ण
आत्मीय निर्णायक विकास को
दृढता पूर्वक सदा सर्वदा
ध्यान मे रखना है।
{515}
जेनेन्द्र प्रवचन
विश्व शाति के लिए
एक मात्र अमोघ
उपाय है।
{516}
कुछ भी
न करने से तो
जो कुछ योग्य बन सके
वह करना
अच्छा है।
{517}
सेठ के नीचे रहने वाला
नौकर भी अपने पुरुषार्थ से एक
न एक दिन सेठ वन जाता हे, वैसे
ही वीतराग भगवान् की साधना
को निरन्तर अपनाने वाले
वीतराग वन जाते है।

वृत्तियो के आकार को धारण करने
वाला एक–द्रव्य विशेष, जो अत्यधिक विशिष्ट
द्रव्यो से बना होता है, उसका विशिष्ट एवं विशेष
महत्त्वपूर्ण प्रवाह शरीर के उत्तमाग में विद्यमान रहता है। उससे
सम्बन्धित अन्य सब द्रव्य सचेतन शरीर के अन्दर विद्यमान है। उसी
मे प्रत्येक क्रिया–प्रतिक्रिया के
अंकन एव यथास्थान प्रसारण मे माध्यम
होने की योग्यता रहती है।

{518}

जब अशुम वृतियो का रंग सही ज्ञानशक्ति से धुलता है, तब
आन्तरिक आचरण शक्ति वृत्तियो को आलोक देती हुई प्रस्फुटित होती
है तथा आन्तरिक एव बाह्य वृत्तियो मे समाज्जस्य स्थापित करती हुई उन्हें विस्तृत
बनाती है, तब छोटे परिवार की सीमा समाप्त होकर वसुधैव कुटुम्ब की सीमा बनती
है। किसी भी जीवन को चाहे वह छोटे–से–छोटा क्यों न हो, मनसा–वाचा–कर्मणा सताने
का परित्याग, दूसरे से सतवाना या अन्य के द्वारा सताये जाने का अनुमोदन तो दर
किनार बल्कि त्रिकरण त्रियोग से उनके रक्षण के सत्संकल्प को सुदृढ़ करना, जीवन
में सहज प्राप्त विषय साधनो के संपरित्याग के साथ अन्य के रक्षण मे यथायोग
सवितरण मे सदुपयोग का प्रतिपादन, आदि का प्रवाह वह आचरण शक्ति पैदा कर
देती है। उस प्रवाह से अन्य का कुछ बने या नही, पर स्वय का तो बहुत बन जाता
है। द्वन्द्वात्मक सापेक्ष द्रव्य वृत्तियो के नीचे दबी भावशक्ति का विकास द्रुतगति से
होने लगता है और उसी विकास को वसुधैव कुटुम्ब की स्थिति से ऊपर उठकर
समतदर्शन की पराकाष्ठा पर पहुँचने का अवसर प्राप्त हो सकता है। इसको अहिंसक
शक्ति भी कह सकते है। शास्त्रो मे ऐसी शक्ति को महाव्रत की सज्ञा दी है, लेकिन
तलस्पर्शी दृष्टि से इसे आचरण मे लाना तो दूर अनुभूति
के साथ समझने का प्रयास भी प्राय विरल–सा ही रहता है।

{519}

अंकनस्थन अत्यधिक सूक्ष्मतर परमाणु का
बना हुआ होता है, जो कि समस्त वृत्तियो का
आधार कहा जा सकता है। उसी पर समस्त वृत्तियो का अकन
बनता–गिडता है। पर इसके पीछे विशिष्ट शक्ति की धार रहती है।
इसके बिना वृत्तिया व उनके अकन की स्थिति व्यवस्थित कलापूर्ण
तरीके से नही बन पाती। वह विशिष्ट शक्ति ही समस्त वृत्तियों की
एव अकन की निर्माता विज्ञाता तथा स्वयं की भी विज्ञाता है।
उसी से संचालन आदि की क्रिया बनती है।

{520}

किसी भी नवीन विषय को मस्तिष्क जल्दी ग्रहण करना नही चाहता। लेकिन जिस विषय की अति प्रशंसा और उससे होने वाले विभिन्न लाभ एव विविध प्रलोभनों के लगातार कथन एवं प्रश्रय-दबाव से वह ग्रहण करने की कोशिश करता है, और जब ग्रहण करने लगता है तथा जब उसकी निरन्तर वह प्रक्रिया चालू हो जाती है, तो फिर उस विषयक अभ्यस्त आदत-सी बन जाती है। फिर उसको कोई छुडाना चाहे, तो अति ही कठिनता जाती है। उसके लिए फिर अन्य तरह के प्रयत्न की आवश्यकता रहती है।

{529}

अचल, अविनाशी, अखण्ड, परमशुद्ध, अन्तिम परिपूर्ण ज्ञान विज्ञान आदि समस्त श्रेष्ठतम शक्तियो के स्व-पर-स्वरूप के चरम विज्ञान को सत्य को-अविचल-परम लक्ष्य के रूप मे स्थापित करने का दृढ़ संकल्प आने पर कोई भी बाधक तत्त्व बाधकता के रूप मे नही रह सकता। ऐसे पुरुष के सामने जीवन की व्यक्तिगत कितनी भी जटिल समस्याए क्यो न आ जाये, उसके लिए जटिलता रह ही नही सेती। पारिवारिक, सामाजिक,राष्ट्रीय तथा विश्व सम्बन्धी परस्पर अत्यधिक भिन्नता के कारण विरुद्ध दिखाई देने वाली गूढ़ गुत्थिया सरलतम प्रतीत होगी। इतना ही नही सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अन्तर दृष्टि से विलोकित चलित दार्शनिक दृष्टिया आज तक के समस्त वैज्ञानिक औजार के माध्यम से नही देख पाती, उनके अन्तर्गत रहने वाली समस्त गतिविधि किसी भी रूप को लेकर क्यो ने सामने आये, उस पुरुष के लिये न कोई आश्चर्य का विषय होगा, न किसी प्रकार का सकोच, न किसी जाति की ग्लानि, न किचिदपि किसी कोने के अनन्तवे भाग मे भय की छाया की झलक। वह तो पवित्र अलिलधारा की भाति अपनी परम मस्तानी अबाध शक्ति का आलोक लेकर चलता हरेगा। उसके लिये न कोई विरूप है, न कोई बाधक, न कोई सर्वथा पर, न विद्वेष की काली घटा, विराग की परमलता, न कोई बाधक दीवार और न आपत्ति की चट्टान। उसके लिए तो सदा-सर्वदा राजमार्ग विद्यमान रहता है। किसी प्रकार की रुकावट नही। अत गति अवरोध का प्रश्न ही पैदा नही होता।

{530}

अधिकाश मानव स्वय के जीवन के विषय मे ऊपर-ही-ऊपर तैरा करते है। अन्दर मे प्रवेश का उन्हें प्राय अवकाश ही नही मिल पाता। क्योकि उनके मस्तिष्क मे अन्यान्य जगत सम्बन्धी वैचारिक विषयो की चट्टान-सी बनी रहती है। जब तक उसका भेद न होकर पृथक् होने की स्थिति नही बनती, तब तक अन्त.स्थल पर पहुँचना अति दुष्कर रहता है। लेकिन उस वैचारिक चट्टान को विच्छिन्न करने का प्रयास किया जाये, तो कुछ सफलता अवश्य मिल सकती है। बशर्ते प्रयास विधि-विज्ञान पूर्वक दृढसंकल्प एव आशावादिता के साथ हो।

{531}

{532}
"गरीबी हटाओ" का
नारा आज बुलन्द है। पर
गरीबी तभी हटेगी जब प्रत्येक भारतीय समता
दर्शन के दृष्टिकोण
को अपनाएगा।
{533}
जीवन की
अंशाति एक
समस्या है, इसका
समाधान समता मे
निहित हैं।
{534}
हमे अपने
मूल की भूल को
मिटाना है, तभी शान्ति
मिल पायेगी।
{535}
विश्वास ही जीवन
वृक्ष के विकास का सृजक
है। विश्वास एक बीज है। वह चाहे कितना
ही छोटा हो, उसमे एक
वडे से बडे वृक्ष का शरीर
समाहित है।
{536}
जीवन के प्रत्येक
क्षेत्र के लिए त्याग आवश्यक
है त्याग से जीवन सुखी बनता
है। जीवन का महत्व
त्याग में है।
{537}
जीवन की
सच्ची स्वतन्त्रता मे
ही, सब का हित निहित
है।
{538}
दूसरो पर
नियंत्रण की अपेक्षा सदा
अपने आप पर नियंत्रण
रखिये।
{539}
इन्द्रिय जनित विषयो
से मन को उपर उठाएंगे तो ही आत्मिक
रूप प्रकट होगा। यही नही किसी भी कार्य
मे पूर्ण सफल होने के लिए इन्द्रियक
विषयो मे उपरमता आवश्यक है।

जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए
ज्ञान-ज्योति की नितान्त आवश्यकता है।
ज्ञान-ज्योति के अभाव मे सद्-असद् का विवेक-विज्ञान नही हो
सकता और बिना विवेक के जीवन जीने का रहस्य नही समझा
जा सकता । सम्यक् ज्ञान ज्योति के प्रकट होने पर व्यक्ति
के विचार, उच्चार एव आचार एक रूप
एवं उज्ज्वल बन जाते हे।

{540}

अभी तो आप बेशक चांदी के टुकडे जमा
करने मे लग रहे है, लेकिन उनके स्वरूप के
विषय मे ज्ञान भी कियाहै या नही ? ये चादी के
टुकडे मृत्यु के समय साथ मे चलने वाले नही है। इस
बात की भी गारटी नही है कि पूरी जीवन तक ये अपने पास सुरक्षित
बने ही रहेगे। न मालूम इन पर किन-किन की निगाह किस रूप मे
लगी हुई हैं? चोरी हो जाती है, आग लग जाती है, जेब कट जाती है
या व्यापार मे घाटा लग जाता है, मगर यह इच्छा नही होती कि अपने
पैसे से खुशी-खुशी किसी जरूरतमन्द की मदद करे दे। इतनी
सी सहानुभूति और सहयोग भावना रखकर भी कोई अपने जीवन मे
चले तो उसके जीवन का नव निर्माण प्रारंभ हो सकता है तथा अन्र्दर्शन
के माध्यम से आत्म स्वरूप
में भी यत्किचित् उज्ज्वलता निखर सकती है।

{541}

मानव की पहली समर्पणा माता-पिता,
दूसरी समर्पणा अध्यापक के प्रति, तीसरी
समर्पणा वीतराग भगवान् की आज्ञा के प्रति
होनी चाहिये। प्रथम दो समर्पणा जीवन मे है पर वीतराग
भगवान् की आज्ञा के प्रति समर्पणा
जब तक नही होती है, तब तक सच्ची
शान्ति प्राप्त नही हो सकती।

{542}

{543}

धर्मकरणी का
प्रशस्त भावनाओ का सुफल
शब्द द्वारा अकथनीय अनुभवगम्य
आत्मशुद्धि के रूप मे उपलब्ध
होता है।

{544}

मानव जीवन
सभी शक्तियो के पूर्ण
विकास का केन्द्र है। अत.
ऐसे जीवन को प्रमाद मे
न खोए।

{545}

एक बार
जब मनुष्य अपने
कर्तव्य से फिसलता है तो
फिसलता ही जाता है।

{546}

विचारो को समाप्त
नही किया जा सकता, बल्कि रूपान्तरित
किया जा सकता है। प्रवाह को रोका
नही जा सकता, मोडा जा सकता हे।

{547}

वचन का विशेष महत्व
नही, महत्व हे प्रवचन का।
आप निर्णय करिये कि महत्व वादित्र की
आवाज का है या घडी
के टणकारे का।

{548}

अपनी वौद्धिक
शक्ति को आत्म शुद्धि
की ओर लगाना ही
हमारा मुख्य उद्देश्य हो।

{549}

अपने लक्ष्य
को स्थिर कीजिये।
अस्थिर लक्ष्य किसी काम
को पूर्ण नही होने देता।

{550}

दु ख से निवृत्ति लेने
हेतु जो परिपूर्ण सुखी हे, उसी
की शरण लीजिए, दु.खी की नही। एक
भिखमंगा क्या दूसरो की
भूख मिटाएगा ?

वर्तमान का समय ही
अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योकि अतीत
बीत चुका, अस्तित्त्व रहित है, और भविष्य
अभी आया नही हैं, और अपने लिए इस रूप मे आएगा भी
या नही, यह भी निश्चित नही है। वर्तमान का समय *"देहली
दीपक न्याय"* से भूत एवं भविष्य को भी प्रकाशित करने
मे समर्थ हो जाता है।

{551}

{552}

जीवन की प्रयोगशाला मे अध्यात्म विज्ञान के
परीक्षणो का प्रयास करने को जब जिज्ञासु मानव तत्पर
बनता है उसको अपनी दृष्टि तथा कार्य विधि अति सूक्ष्मता मे ढालनी होती
है। अध्यात्म विज्ञान के समान सूक्ष्म विज्ञान और कई विज्ञान नही होता। इसी
सूक्ष्म स्वरूप के कारण ही आत्मा का साक्षात्कार केवल आध्यात्म विज्ञान की
सहायता से ही सभव हो सकता है। आतमस्वरूप की पहिचान कराने वाला
विज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ कहा जायगा क्योकि मूल मे तो सभी विज्ञानों की ज्ञाता
तथा संचालिका यह आत्मा ही होती है। आत्म स्वरूप इतना सूक्ष्म होता है कि
जो इसको जान लेता है, वह इस संसार की सारी वस्तुओ का स्वरूप भी
जान लेता है। फिर उससे इस दुनिया में छिपा हुआ कुछ नही रहता। अणु
परमाणु की एवं भूत वर्तमान तथा भविष्य की समग्र गति को और उसकी
समस्त पर्यायों को इस आतमिक विज्ञान की ऊँचाई पर चढ़कर देखा जा
सकता है। जो इस आत्मिक विज्ञान की ऊँचाई तक पहुँच
जाता है, वही अविनाशी बन जाता है।

एक तरफ तो सभी प्राणियों से
"खामेमि सव्वेजीवा" के माध्यम से क्षमा
याचना करे और दूसरी तरफ उसी समय
अग्नि–विघुत् के माध्यम से षट्काय जीव हिसा करे
तो क्या यह सच्वी क्षमा याचना होगी ? एक व्यक्ति किसी को
बिजली के हटर से मारे और दूसरी
तरफ क्षमा याचना करे तो क्या वह उसे
माफ कर देगा ? कभी नही ?

{553}

{554}
दूसरो के अवगुणो
को प्रकट करने से स्वयं के
अवगुणो की वृद्धि होगी। क्योकि दूसरे के
ऊपर कीचड उछालने से पहले स्वयं के
हाथ कीचड से भरते है।
{555}
सत्य की
प्रतिष्ठा मे ही
जीवन की महत्ता है। असत्य
की नींव पर टिका महल
लम्बे समय तक नही
टिकता।
{556}
आत्मिक
विकास मे विश्वास
का प्रमुख-योग है।
विश्वास · जीवन की
उन्नति का प्रारम्भिक
राजमार्ग है।
{557}
रचनात्मक विद्वता
जो कि जीवन निर्माण की
भूमिका अदा करती हो वही
विद्वता व्यक्ति को सच्चा
विद्वान् बनाती है।
{558}
दूसरो को शान्ति देने
वाली आत्मा स्वयं अक्षय शांति
प्राप्त कर सकती है, अशांति देने वालो को
कभी शांति नही मिलती। क्योकि क्रिया और
प्रतिक्रिया दोनो साथ-साथ चलती है।
{559}
जो व्यवहार
आत्मा क लिए अनुचित
है वह दूसरों के लिए
उपयुक्त केसे हो
सकती हे ?
{560}
पूर्व पुण्योदय
से प्राप्त शक्ति
का सदुपयोग ही
जीवन को सफल
वनाता हे।
{561}
स्तुति का अर्थ हे-
प्रभु की प्रशंसा करना, प्रभु के
गुणो का वर्णन करना ओर उसकी
अभिव्यक्ति स्वय मे लाने के लिये
सत्पुरुपार्थशील वनना।

प्रत्येक मानव की ऐसी कामना अवश्य ही
रहती है कि मे जानू, देखू ओर परखूं, किन्तु
इस कामना की पूर्ति का सबसे वडा रोडा उसके सामने आता हे
उपयुक्त साधनो के अभाव के रूप मे। यदि आवश्यक साधनो एवं
शक्तियो का संयोग उसे प्राप्त हो जावे तो वह साहसिक प्रयासो के
लिये भी तैयार हो जाता है। विभान का सहारा मिल जाये तो वह
आकाश में उड जाता है और उससे भी आगे भारहीनता
वाले अवकाश क्षेत्र मे भी चला जाता हे।

{562}

आध्यात्मिक विमान मे जब बैठ जायेगे तो किसी
ग्रह तक जाने की जरूरत नही होगी। आपको अपने
स्थान से ही वे ग्रह ओर ससार का प्रत्येक वस्तु स्वरूप सुस्पष्ट दिखाई देगा।
मंगल ग्रह मे रहने वाले प्राणी जिस रूप मे मगल ग्रह को नही देख पाते,
उससे भी अधिकतम सुस्पष्टता के साथ एक आत्म ज्ञानी मंगल ग्रह को तथा
सारे ब्रह्माड को देखता है। आध्यात्मिक विज्ञान मे यह सब अन्तर्दृष्टि से
दिखाई देता है जो महान् शक्ति होती है। इस शक्ति के सामने शारीरिक
शक्तियो की बाधा भी रिर्थक हो जाती है। एक आध्यात्मिक वैज्ञानिक के भले
ही नेत्र बन्द हो या कान की खिडकियॉ रुंधी हुई हो अथवा हाथ पैरो को
लकवा हो रहा हो, फिर भी वह एक स्थल पर बैठकर अपनी आन्तरिक शक्ति
एव अन्तर्दृष्टि की सहायता से सारे ससार को समस्त जड चेतन प्रवृत्तियों को
एक साथ देख लेगा तथा देखता रहेगा। ऐसा चमत्कार भौतिक उपलब्धियो के
बल पर नही, बल्कि आध्यात्मिक शक्तियो के प्रभाव
से ही प्रत्यक्ष दिखाई दे सकता है।

{563}

अध्यात्म विज्ञान के परिणाम बडे
चमत्कारिक होते है, किन्तु इनका चमत्कार
तभी समझ मे आवेगा, जब जीवन की प्रयोगशाला मे जिज्ञासा का
रसायन खूब प्रयोग मे लाया जाये। कितनी व्यापक जिज्ञासा
जागती है, जीवन मे पुरुषार्थ भी उतना ही बलशाली बनता है,
लेकिन इसके साथ अध्यात्म विज्ञान के प्रति प्रबल आस्था भी होनी
चाहिये। यही ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य की आराधना है
तथा मुक्ति की साधना है।

{564}

{565}
सुसाधओं की संगत
अधिक से अधिक बनाने का
प्रयास करना चाहिये। वह व्यक्ति के
अन्तर बाहर दोनो को
सुखमय बनाते है।
{566}
वीतराग मार्ग
में प्रवृत्ति ओर निवृत्ति
दोनों का ही प्रावधान हे।
असंयम से निवृत्ति और
सयम मे
प्रवृत्ति हो।
{567}
जीवन का
अनियत्रंण समाप्त
करो। उसे सुव्यवस्थित रूप
से चलाओ।
इसी मे सफलता
निहित है।
{568}
समत्व भाव के
साथ होने वाला वैचारिक
आदान-प्रदान एक नई ज्योति,
नई ऊष्मा, नई क्राति लाने
वाला बनता है।
{569}
बबूल पर कितने ही रेशमी
कपडे बांध दे, लेकिन उसमे से
तो काटे ही निकलेगे और आम का वृक्ष
बोएगे तथा साधु जीवन की जडो को
मजबूत बनायेगे तो मीठे
आम जरूर मिलेंगे।
{570}
स्नेह
संवध सदा
समान प्रकृति मे ही
टिक सकते
है।
बुद्धि को
पतिव्रता बनाइये-
आत्मा के अनुरूप आचरण
करने वाली।
{571}
पीडित मानवता के उद्धार
के लिये पवित्र आत्मीय भावना
की आवश्यकता होती हे ओर वह यदि उन
पिछडे हुए लोगो को मिल जाये तो फिर
उनके उद्धार में अधिक
कठिनाई नही होती हे।
{572}

शुद्ध कर्त्तव्यदृष्टि को सामने रखकर
चलते रहना, निष्ठापूर्वक जीवनकला को
मद्देनजर (दृष्टिगत) रखना, विनयशीलता व सुविधि
का त्याग ने करते हुए निर्भयता पूर्वक मन.स्थिति को रखना,
मान-अपमान आदि स्थिति का मन मे विचार तक नही आने देना,
इससे ज्ञान फल की कुछ स्थिति बनती हे, अतः उपर्युक्त दशा
साधना में सर्वप्रथम आनी चाहिए।

{573}

जो वस्तु जिस समय, जिस रूप मे रही हुई हैं,
उसे उस समय, उस अपेक्षा से उस रूप मे जानना-मानना सम्यक्ज्ञान है।
इससे विपरीत, यानि जो वस्तु जिस समय, जिस रूप में नही है, उस अपेक्षा
से उसकी उस समय, उस रूप मे जानना या मानना मिथ्याज्ञान है। जिस
समय मुख्य रूप से जिस भाग का वर्णन होता है, उस समय अन्य भागों का
विषय गौण रूप मे रहता हो, वह सम्यक् नयादि का कथन समझना चाहिए।
लेकिन विषय प्रतिपादन मे गौण-मुख्यभाव की अपेक्षा सर्वथा छोड दी जाती
है। एकान्त रूप से एक ही भाग का प्रतिपादन एवं अन्य भाग का सर्वथा
अपलाप हो, वे दुर्नयादि मिथ्या है। उससे दु.ख, दारिद्रय, पतन का कार्य
बनता है। सुख, समृद्धि, उत्थान का कार्य नही बनता है। अतः
मिथ्याज्ञान-दुर्नयादि से सर्वथा
दूर रहकर सद्ज्ञान, सम्यक् नयादि से वस्तु स्वरूप
समझ कर श्रेयमार्ग की ओर बढना चाहिए।

{574}

द्रव्यमन और शरीर का सम्बन्ध एक दृष्टि से अवयव-अवयवीभाव
वाला कहा जा सकता है। यह शरीरस्थ पॉच इन्द्रियो और आत्मा के
बीच का एक माध्यम है। इस माध्यम से विशेष रूप से तथा तीव्र-
मन्दादिभाव से कर्मो का सचय और विनिवृत्ति प्राय हुआ करती है, पर
भावमन के बिना यह कुछ भी करने मे समर्थ नही रहता। यानि
व्यवस्थित एव कलापूर्ण स्थिति नही बन पाती। अतः भावमन, जो कि
आत्मा की शक्तिरूप है, से वह प्रक्रियाओ का संचालन बनता है।

{575}

{576}

आत्मा के सर्वागीण विकास
के लिए प्रभु के प्रति परिपूर्ण समर्पणा
अत्यावश्यक हे। जेसे विना मां के प्रति
समर्पणा के, वालक का सर्वागीण विकास संभव
नही है। वीतराग के
प्रति सर्वात्मना सर्मपणा हो।

{577}

अनुभूति का
आनद जुदा होता है,
अनुभूतियो से ही निज
स्वरूप की अभिव्यक्ति
सम्यक् रूपेण
हो सकती है।

{578}

हमारी सारी
समस्याओ का हल हमारी
चेतना से, हमारी सम्यक्त्व
स्थिति से ही हो सकती हे।

{579}

साधु जीवन समाधि
का प्रतीक है, वह किसी
प्राणी को कष्ट देना, सताना नही चाहता हे,
चाहे स्वय कितने
ही कष्ट उठा लेता हे।

{580}

जहां तप करने वाला अपने
तप का अधिक से अधिक प्रदर्शन करता हे,
आत्मीय गुणो की सजावट के वजाय तप
महोत्सव मनाते हुए शरीर को वस्त्राभूपणो से
सजाता हे तो वहां तप की शक्ति एवं आत्मीय
गुण विलुप्त होते जाते हें।

{581}

वीतराग वाणी
रूपी मत्र विपयो के जहर
को उतारने मे
पूर्ण सक्षम हे।

{582}

आत्मीयता के
प्रतिकूल आचरण
भयानक, घातक परिणाम
दिखला सकता हे।

{583}

भोतिक सपत्ति को जेसे
आप तिजोरी मे वद करके रखते
हं, वेसे ही आध्यात्मिक गुणो को भी आत्मा
रूपी तिजोरी मे स्थित
करे, प्रदर्शन न करे।

वास्तविक लक्ष्य को ओझल करके जो आत्मा भौतिक इच्छाओं की तृप्ति की तरफ दौडती है, उसे वह तृप्ति कभी होती नही। क्योकि एक बात की तृप्ति दूसरी बात के लिये तृष्णा को जगा देती है और श्रृंखला कभी टूटती नही है। संसार की विविध प्रलोभन उसको लुभाते रहते है, इनका यह नियम है कि आशाएँ अधिकाशतः मृगतृष्णा का रूप लिये रहती है। इसलिये एक आशा की पूर्ति मे कभी-कभी सारे जीवन का भटकाव हो जाता है और आशा पूरी नही होती।

{584}

प्रक्षेपण का अर्थ होता है फैकना और फेकता वही है जोपहले अपने पास जमा कर लेता ह। जैसे किसान खेते मे पक्षियो को भगाने के लिये गोफन से पत्थर फैकता है तो पहले पत्थर अपने पास जमा कर लेता है। इसी प्रकार जो दूसरो पर आक्षेप या दोष लगाता है, वह पहले दोषों का सचय कर लेता है। मन मे दोषों का भंडार भर कर वह फिर उन पत्थरों को वचन के गोफन पर लगाकर फैंकता है तो वह कितने नये पापों का भी सचय कर लेगा। अतः सबसे पहले अपने द्वारा पाप के प्रक्षेपण को बन्द कर दे। इससे मलिनता मिट जायगी तो विमलता का विस्तार होगा। ऐसा कार्य आध्यात्मिक शोधकर्ता अपने आत्मिक पुरुषार्थ से ही कर सकता है।

{585}

वस्तुत. बुद्धि के प्रयोग का आधार मन का स्वरूप होता है। मन मे जिस रूप मे पवित्रता अथवा अपवित्रता होती है, वैसी ही झलक बुद्धि में दिखाई देती है और वैसा ही उसका प्रयोग सामने आता है। पानी स्वच्छ और निर्मल हो तो काच की तरह वह भीतर से भी साफ दिखाई देता है लेकिन उसी पानी को अगर आग पर उबलने को रख दिया जाये तो उबलते हुए उसके अणु परमाणु इस तरह उथल पुथल होते हैं कि स्वच्छता होते हुए भी उसकी निर्मलता पहले की तरह दीखनी बन्द हो जाती है।

{586}

{587}

विचक्षण व्यक्ति सदा
सुन्दरतम अवसर की प्रतीक्षा
मे रहते है। वे चाहते हैं कि ऐसा सुनहरा
अवसर आवे जिसे साध
कर जीवन को सार्थक
बना लिया जाये।

{588}

शरीर एक
पिड है, इसमे सारे
ब्रहमाण्ड का नक्शा रहा
हुआ है। अत शरीर को
साधना सीखें।

{589}

जहा नगर
धर्म की व्यवस्था
टूटती है। वहां
आध्यात्मिक धर्म ही नही
हो पाता।

{590}

सन्त जीवन पवित्र होता है
और उसे कठोर मर्यादाओ मे पवित्र रखने मे
मददगार होना चाहिये। सन्तो का जीवन
जितनाा मजबूत रहेगा,
पर–हित चिन्तन की भावना को भी
उतना ही अधिक बल मिलेगा।

{591}

ज्यो–ज्यो अन्तर्चक्षुओ
की ज्योति तेजस्वी बनती
जाती है, त्यो–त्यो श्रद्धा का रूप भी
अधिकाधिक प्रभावशाली बन कर
आत्म कल्याण का प्रेरक
होता जाता है।

{592}

अनैतिक
कार्य वीर नही
कायर पुरुष ही
करते हैं।

{593}

प्रत्येक विषम
स्थिति का डट
कर सामना करना
ही वीरता का
मापदण्ड है।

{594}

जितनी आत्मा की
परतत्रंता है, वही अन्तर्दृष्टि
का लुप्त हो जाना है तथा
भीतर का अंधापन
फैल जाना है।

अध्यात्म विज्ञान के क्षेत्र मे जब जिज्ञासा, शोध एवं पुरुषार्थ की त्रिवेणी का बल लगता है तो उसके चमत्कारिक परिणाम सामने आते हैं। यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। अनेक विभूतियो ने इस क्षेत्र मे जो सर्वोच्च विकास सम्पादित किया तथा ज्ञान की ऊँचाइयो पर पहुँच कर संसार को जो दार्शनिक मार्ग दर्शन दिया, उसका संसार के सभी दर्शनो मे महत्वपूर्ण स्थान है। जिज्ञासा का रसायन इतना प्रभावशाली होता है कि जब जीवन की प्रयोगशाला मे इस रसायन पर परीक्षण किया जाता है तो वास्तव मे चमत्कारपूर्ण परिणाम सामने आ सकेत है।

{595}

भय और चिन्ता को सदा–सर्वदा जीवन से निकाल ही देना चाहिए। ये जीवन के बहुत बडे शत्रु हैं। इन्हीं से जीवन का अधिक हास होता हैं। इसका दूसरा पक्ष भी है जो जीवन के लिए प्रेरणादायक भी बन सकता है। वह है सही ज्ञानपूर्वक वास्तविक दिशा मे चिन्तन। यह समय जितना अनुकूल है उतना अन्य समय अनुकूल हो पायेगा या नहीं , उस समय फिर मुझे पश्चाताप न करना पडे, अत जो कुद करना है, वह यथाशीघ्र कर लेना चाहिए, जीवन निर्माण के समय को हाथ से नहीं खोना चाहिए, आदि विषयक विचारो मे भी सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन किया जाये, तो कुछ चिन्ता और भय की झलक आयेगी। लेकिन यह झलक जीवन हास की नहीं , जीवन– निर्माण की है। अतः इसे आवश्यक भी माना जा सकता है पर सावधानी नही रखने से शत्रु, रूप भय–चिन्ता का अधिक दौरा रहता है, जैसे कि अब मेरा क्या होगा ? अमुक आपत्ति आ गई इसको हटाने वाला कोई साथी नहीं। अमुक ग्रह भी ऐसे ही आ गये, वे मुझे सता रहे है। अमुक मेरा शत्रु है। इसके द्वारा मार दिया जाऊँ या सताया जाऊँ आदि विषयक भय के कारण प्रायः हाथ पर हस्त मस्तिष्क देकर काल्पनिक जगत मे डूब जाना किसी तरह हितावह नहीं । क्योकि यह शत्रु रूप भय और चिन्ता का परिणाम है। इन से सावधान रहना है और जीवन निर्माण करना है।

{596}

धर्म के नाम पर भी जहॉ नारी जाति को तिरस्कृत किया गया, उस धर्म के प्रवर्तकों मे क्या यह नही मानना चाहिये कि रागद्वेष एव भेदभाव का कालुष्य भरा हुआ था ? उसका धर्म का नाम ही कहॉ सार्थक होता है जहॉ समता का ही अभाव हो ?
धर्म नाम के क्षेत्र में भी अगर विषमता की ज्वालाऍं सुलग रही हो– मानवता के आधे अंग के प्रति घृणा के भाव जग रहे हो तो उस धर्म से क्या मानव जीवन को सुख और शाति मिल सकेगी ?

{597}

{598}

जिस आत्मा मे जितना
मिथ्यात्व होता है, वह अविद्या रूप होता है
ओर यह अविद्या
जितनी गाढी होती है, उतनी ही आत्मा की
अधिक दुर्दशा होती है।

{599}

श्रद्धापूर्ण
अज्ञान अच्छा लेकिन
मिथ्यात्वपूर्ण अविद्या बडी
खतरनाक होती है।

{600}

संघर्ष
शक्ति ओर विजय
का प्रतीक
होता हें।

{601}

मुक्ति पथ पर प्रगति करने
के दो ही उपाय हे कि या तो स्वयं
ज्ञानी बनो अथवा अटूट श्रद्धा के साथ ज्ञानी का
अनुसरण करो। जिसका अनुसरण करो वह
परखा हुआ ज्ञानी हो ओर तव उस की
आज्ञा का पालन करना ही अपना परम धर्म
मान लो।

{602}

आत्मा की आन्तरिक शक्ति
का प्रकटीकरण तभी सभव वनता
है, जब संसारी आत्मा ससार के अन्दर की
अपनी उलझन को पहिचान लें तथा उस
उलझन से निकलने के सही
रास्ते को भी पहिचान ले।

{603}

अन्त करण
से उठने वाली दुर्गंध
चारो ओर विकृति
फैलाती है।

{604}

आत्मा
निर्विकार अवस्था
मे शरीर के अन्दर सत्ता
के रूप मे
वेठी हुई है।

{605}

तपश्चर्या उस आग
के समान होती हैं, जिस में
रखने से सोना अपनी मलिनता को ही
समाप्त नही करता वल्कि अपने स्वरूप मे
भी कुन्दन की तरह
दमक उठता हे।

अन्तरात्म की समस्या अति ही जटिल है।
मनुष्य के सामने इससे बढकर कोई प्रश्न नही बन सकता। क्योंकि अनेक तरह के चित्र मन मे चक्कर काटते रहते है। उनको रोकना और अन्दर में प्रवेश करना एक वज्र की चट्टान को लकडी से तोडकर गुफा मे प्रवेश करने के समान है अर्थात् लकड़ी से चट्टान नही टूट सकती। उसी तरह ऊपर–ऊपर के हल्के प्रयत्नों से कुछ नही हो पाता। पर शिला को कला से हटाया जा सकता है। उसी तरह कला –पूर्ण जीवन से अन्त स्थल पर पहुँचा जा सकता है।

{606}

दिव्य शक्ति की उपलब्धि के लिए पैनी दृष्टि की नितान्त आवश्यकता है। इसके बिना जीवन की सब कलाएँ अधूरी एव अल्प विकसित रह जाती है तथा वास्तविक तत्त्वो का भी सही पता नहीं लग पाता, न चित्त की स्थिरता बन पाती है और न स्थायी सुख की दिशा का निर्णय बनता है। फलत. आचरण–दिशा भी सम्यक् नहीं बन पाती। उसके बिना जीवन प्रायः बेकार–सा रह जाता है। उस शक्ति को प्राप्त करने के लिए बाह्य धन, धान्य, स्त्री, परिजन आदि के परित्याग की नितानत आवश्यकता है ही। लेकिन इसी तरह क्रोध–मान–मार्यादिक का त्याग भी बहुत जरूरी है। उसमें प्रवृत्ति रूप क्रोधादिक का त्याग तो भूमिका के रूप मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसी प्रवृत्ति का बारीकी से निरीक्षण करने के लिए सजग विवेक प्रतिमा की आवश्यकता रहती है। लेकिन यह प्रतिमा भी एक दृष्टि से स्थूल ही कही जा सकती है। अतः इसी प्रतिमा को सब कुछ नहीं मान लेना चाहिए। ऐसे प्रतिमायुक्त आचरण की दशा तो मानो प्रथम कक्षा में प्रविष्ट होने के तुल्य है। विशिष्ट, विशिष्टतर,आदि अध्ययन तो आगे की स्थिति मे होता है। अत उसी को सब कुछ मान के निश्चित बैठ जाना बहुत बडी भूल है।

{607}

सच्ची समझ के साथ जिस वस्तु या अवस्था की ओर ध्यान आकर्षित हो, उसको ही सम्मुख रख कर प्रयत्न चालू कर दिया जाय। वही स्थिति निरन्तर, हर अवस्था मे चमकती रहे, अन्य तमाम बाते गौण बन जाये। फिर चाहे कितनी ही ऑधी या तूफान क्यों न आयें, उनका जरा भी असर वास्तविक स्थिति पर न हो पाये, इस बात का अवलोकन चलता रहे, तो व्यक्ति अवश्य सफलता की स्थिति में बढेगा और उसे अन्यान्य सभी समस्याओं का हल भी करने में शक्ति प्राप्त होगी। इस विषय मे संशय को अवकाश नही कर पायेगा।

{608}

{609}

यह अनुभूत सत्य है कि
अन्त.करण के समदर्शी भाव से
जो व्यक्ति कर्त्तव्यपरायण होकर अग्रसर बनता
है तो वह अपने लक्ष्य मे भी सफल होता है
तथा स्वत. ही समाज या राष्ट्र मे उसको
यथोचित सत्कार भी मिलता है।

{610}

ससार की
नश्वरता को हृदय
मे रखकर विकास की गति
के वेग को सम बनाने की
नितान्त आवश्यकता है।

{611}

जीवन के
सभी क्षेत्रो मे समता की
पुष्टता का नाम
है आस्था।

{612}

आत्माभिमुख बनने का
अर्थ है आत्मा के मूल स्वरूप को
समझना तथा उसके अनुकूल जीवन की
समस्त वृत्तियो एवं प्रवृत्तियो पर आत्मा के
कठोर अनुशासन को स्थापित करना ।

{613}

सिद्धान्तो की प्रशंसा मात्र
करने से आत्मा मे विराटता नही
आएगी। आत्म स्वरूप तभी विराट बनेगा
जब सिद्धान्तो की विराटता आचरण मे
उतर कर चारित्रिक
शक्ति को विराट बना देगी।

{614}

क्षमाभाव का
विकास तब होता
है जब दूसरो की तरफ
दृष्टि डालने की बजाय
अपनी ही आत्मा पर दृष्टि
रखी जाये।

{615}

आत्मानुसार
की कठिन प्रक्रिया पर
जिस साधक का समग्र
जीवन आरूढ हो जाता है,
वह श्रमण
कहलाता है।

{616}

जब अनन्त क्षमा
आत्मा मे विराजमान हो
जावें तब समझिये कि आत्म स्वरूप की
विराटता अपने कीर्तिमान
तक पहुँच गई है।

किसी भी विषय मे लगाव की
अत्यधिकता होने प मन उस विषय मे प्रवेश
पाने की चेष्टा करता हैं ओर यदि निरन्तर लगाव
का आकर्षण बढता रहे तथा मन की प्रवेश गति भी उसी तरह
बढती रहे, तो इस विषय का अन्तस्तत्त्व पाया जा सकता है।
लेकिन उसमे मन पर बुद्धि
का नियत्रंण बराबर रहना चाहिए।

{617}

जिसमें सस्कार ग्रहण की योग्यता हैं, उसी मे सभी
तरह के संस्कार पड सकते हैं। आन्तरिक नित्य प्रकाश
स्वरूप शक्ति के सामने जिन-जिन संस्कारों के दृश्य आते रहते है, उन-उन
सस्कारो को वह स्वय के समझ कर चलती हैं तथा उन्ही के साथ अपना
घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर लेती है, अत· उन संस्कारो के अनुरूप ही उस
शक्ति का संकोच-विकास प्राय. बनता रहता है। नाशवान वस्तु के संस्कार के
साथ तदाकार होने से उसके नाश के साथ वह भी संकोच रूप में सिकुड
जाने से नाश समान समझी जाती है। फिर अन्य किसी उत्पन्न पदार्थ के
साथ उस शक्ति के तादात्म्य सम्बन्ध स्थापन के जरिये विकास प्राप्त होते
रहने की प्रक्रिया अनादि से चली आ रही है, इससे वास्तविक दशा की ओर
नही पहुँचा जा रहा है। अत. अविनाशी सदा सत्य समग्र विषयों के तथा स्वयं
के ज्ञान-विज्ञान की अवस्था मे अवलोकन करने वाले तत्त्व के
सस्कार डालने की नितान्त आवश्यकता है।

{618}

प्रत्येक क्रिया का असर सारे
विश्व मे प्रसारित होता है। प्रतिक्षण अनन्त क्रिया-प्रतिक्रियाएँ
बनती-बिगडती रहती है, अथवा
न्यूनाधिक रूप मे उनका असर होता रहता है। बलवती प्रक्रिया का
कमजोर प्रक्रिया पर अधिक प्रभाव पडता है और कमजोर प्रक्रिया
का बलवती क्रिया पर मामूली असर होता भी है और बिखर भी
जाता है। इसका विशिष्ट विज्ञान अति गहन है।

{619}

{620}

जव विकारो मे तृप्ति पाने
की कामना करने वाला मन
नेत्रो, कानो नासिका, रसाना ओर त्वचा को
इस रूप मे प्रलोभन देता हो तथा उत्तेजित
वनाता हो तो फिर इन्द्रियॉ अपने-अपने विषय
क्षेत्रो मे भटकने से केसे रूक सकती हैं ?

{621}

त्रुटियॉ विकारो
के साथ ओर विकार मन
के साथ जुडे
रहते हे।

{622}

जो वस्तु का
स्वभाव ह,वही उसका
धर्म हे। जो भाव मे रहे तो
समझना होगा कि वह धर्म
के साथ चल रहा हे।

{623}

आत्म शक्ति की
प्रधानता से निर्भीकता इस रूप
मे ढलती हे कि एक श्रमणोपासक या साधक
मन या इन्द्रियो की उदृडता अथवा
उच्छृंखलता को सहन नही करता हे तथा
नियत्रण की डोरी को कस देता हे।

{624}

यह निर्भीकता जितनी
वढती है, उतनी ही यह आत्मा विकारी
तत्त्वो से निर्लेप वनती जाती हे।
निर्लिप्तता की चरम स्थिति ही तो
परमात्म स्थिति होती हे।

{625}

जो विज्ञान
अपने परिणामो
को मानव हित में प्रयुक्त
नहीं करवा पाता, वहीं
उसकी पराजय हे।

{626}

जिस विन्दु पर
भोतिक विज्ञान हार जाता
है, उसी विन्दु से सच पूछे
तो सर्वोच्च विज्ञान-अध्यात्म
विज्ञान का कार्य आरभ
होता हे।

{627}

जो श्रमणो के सत्सग मे
आता ह तथा उनकी उपासना मे अभिरूचि
वढाता हं, वह अपने आत्म स्वरूप को ही नहीं
पहिचानता ह,वल्कि आत्मा के मूल गुणो के
विकास मे भी यत्नशील वन जाता ह।

जीवन की श्रेष्ठ कला आन्तरिक विज्ञान को सम्यक् रूप से विकसित करने मे है। इसके विना जीवन को प्राप्त करने का कोई महत्त्व नही हैं, क्योकि जिस शरीर मे आत्मा रहे और उस शरीर से आभ्यन्तर मे प्रस्फुटित चमत्कृति का अनुभूतिपूर्वक सही विज्ञान का परिचय न हो, यह वडी विचारणीय बात है। इस प्रकार की दशा को क्या वस्तुत.जीवन का महत्व समझा जाये? एक दृष्टि से कदापि नही । नाम मात्र के जीवन अनेक मिले और मिल भी सकते हैं पर उससे क्या?

{628}

वर्तमान जीवन में अन्य अनेक संस्कार प्रविष्ट हो चुके है और दिन-प्रतिदिन नये-नये विषय के सस्कारो का प्रवाह आ रहा है। उन्ही संस्कारों में स्वशक्ति उलझ रही है। उससे छुटकारा पाना अति कठिन बन रहा है। छुटकारे का यह तात्पर्य नही कि उनको त्याग दे। त्यागना चाहें तो भी त्याग नही सकते। भूलना चाहे तो भूल नही पाते। छुटकारा पाने का मतलब उनके प्रति जो आकर्षण है, उसका परित्याग यानि वास्तविक वस्तु का आकर्षण पैदा होने पर उनका आकर्षण धूमिल पड जाता है। वह स्थिति आ है। तो छुटकारा पाना सहज बन जाता है।

{629}

मनुष्य के जीवन मे अनेक विचार-धाराएँ प्रवाहित होने के लिये प्रादुर्भाव के रूप मे व्यक्त होती है पर स्थायित्व को प्राप्त नही होती। क्योंकि सत्व शक्ति की पूर्णरूपेण दृढता की कचावट रहती हैं, प्रायः प्रतिक्षण फूलझडी की तरगों के समान व्यक्त होकर तिरोभाव को प्राप्त होती रहती है। इसी से मानव किसी भी कार्य मे अधिक सफलता प्राप्त करने मे प्राय. असफल रहता है।

{630}

{631}

भोतिक विज्ञान की प्रगति को देखकर कभी-कभी मनुष्य आश्चर्य करता हे कि ऐसा युग अभी ही आया हे, पहले कभी नही आया। लेकिन इस दृष्टि से भी सोचे तो इससे भी अच्छे युग पहले आये हं ओर चले गये तथा आगे भी ऐसे युग आयेगे और चले जायेगे।

{632}

धेर्य ओर साहस का मधुर फल इस जीवन मे ओर अगले जीवन दोनो मे मिलता हे।

{633}

आत्मा मे अनंत शक्तियॉ समाहित है, आवश्यकता हे- सत्पुरुषार्थ द्वारा उन्हे जागृत करने की।

{634}

समाज, राष्ट्र एव विश्व के नेताओ को पहले शान्ति स्थापना के योग्य अपने को वनाना होगा। वे कूटनीति भी छोडे तथा अपने निहित स्वार्थो का भी त्याग-करे तव काम चलेगा।

{635}

जिस दिन अन्त करण मे अनन्त शक्ति को आविष्कृत करने की जिज्ञासा उत्पन्न हो जायेगी- आवश्यकता का अनुभव हो जायगा, उसी समय उस तरह का मार्ग भी मिल जायगा- यह एक निश्चित सत्य हे।

{636}

आत्मा की सच्ची तृषा भोतिकता से त्रिकाल मे भी न कभी वुझी हे, न वुझेगी।

{637}

आत्मा पुस्तक से श्रोता को जो ज्ञान होता हे, वही जीवन्त ज्ञान हे।

{638}

वहुत समय का प्यासा व्यक्ति जिस प्रकार पानी के साथ चिपकता हे-मुंह से पानी के वर्तन को छोडता नहीं ह, उसी प्रकार जव मार्ग मिल जायगा तो उस पर से चरण कभी डोलायमान नहीं होंगे।

जीवन की श्रेष्ठ कला आन्तरिक विज्ञान को सम्यक् रूप से विकसित करने मे है। इसके बिना जीवन को प्राप्त करने का कोई महत्त्व नही है, क्योकि जिस शरीर में आत्मा रहे और उस शरीर से आभ्यन्तर में प्रस्फुटित चमत्कृति का अनुभूतिपूर्वक सही विज्ञान का परिचय न हो, यह बडी विचारणीय बात है। इस प्रकार की दशा को क्या वस्तुत.जीवन का महत्व समझा जाये? एक दृष्टि से कदापि नही । नाम मात्र के जीवन अनेक मिले और मिल भी सकते हैं पर उससे क्या?

{628}

वर्तमान जीवन में अन्य अनेक संस्कार प्रविष्ट हो चुके है और दिन-प्रतिदिन नये-नये विषय के सस्कारों का प्रवाह आ रहा है। उन्ही सस्कारो में स्वशक्ति उलझ रही है। उससे छुटकारा पाना अति कठिन बन रहा है। छुटकारे का यह तात्पर्य नही कि उनको त्याग दें। त्यागना चाहें तो भी त्याग नही सकते। भूलना चाहे तो भूल नही पाते। छुटकारा पाने का मतलब उनके प्रति जो आकर्षण है, उसका परित्याग यानि वास्तविक वस्तु का आकर्षण पैदा होने पर उनका आकर्षण धूमिल पड जाता है। वह स्थिति आ है। तो छुटकारा पाना सहज बन जाता है।

{629}

मनुष्य के जीवन मे अनेक विचार-धाराएँ प्रवाहित होने के लिये प्रादुर्भाव के रूप मे व्यक्त होती है पर स्थायित्व को प्राप्त नही होती। क्योंकि सत्व शक्ति की पूर्णरूपेण दृढता की कचावट रहती है, प्रायः प्रतिक्षण फूलझडी की तरगो के समान व्यक्त होकर तिरोभाव को प्राप्त होती रहती है। इसी से मानव किसी भी कार्य मे अधिक सफलता प्राप्त करने मे प्राय. असफल रहता है।

{630}

{631}

भौतिक विज्ञान की प्रगति को देखकर कभी-कभी मनुष्य आश्चर्य करता है कि ऐसा युग अभी ही आया है, पहले कभी नही आया। लेकिन इस दृष्टि से भी सोचे तो इससे भी अच्छे युग पहले आये है और चले गये तथा आगे भी ऐसे युग आयेगे और चले जायेगे।

{632}

धैर्य और साहस का मधुर फल इस जीवन मे और अगले जीवन दोनो मे मिलता है।

{633}

आत्मा मे अनत शक्तियॉ समाहित है, आवश्यकता है- सत्पुरुषार्थ द्वारा उन्हे जागृत करने की।

{634}

समाज, राष्ट्र एव विश्व के नेताओ को पहले शान्ति स्थापना के योग्य अपने को बनाना होगा। वे कूटनीति भी छोडे तथा अपने निहित स्वार्थो का भी त्याग-करे तब काम चलेगा।

{635}

जिस दिन अन्त.करण मे अनन्त शक्ति को आविष्कृत करने की जिज्ञासा उत्पन्न हो जायेगी- आवश्यकता का अनुभव हो जायगा, उसी समय उस तरह का मार्ग भी मिल जायगा- यह एक निश्चित सत्य है।

{636}

आत्मा की सच्ची तृषा भौतिकता से त्रिकाल मे भी न कभी बुझी है, न बुझेगी।

{637}

आत्मा पुस्तक से श्रोता को जो ज्ञान होता है, वही जीवन्त ज्ञान है।

{638}

बहुत समय का प्यासा व्यक्ति जिस प्रकार पानी के साथ चिपकता है-मुंह से पानी के बर्तन को छोडता नही है, उसी प्रकार जब मार्ग मिल जायगा तो उस पर से चरण कभी डोलायमान नही होगे।

अपने वर्तमान को भव्य बनाने के
लक्ष्य को ही प्रधानता दी जानी चाहिये।
और इसके लिये यह देखने की आवश्यकता
होगी की वर्तमान में आपका जीवन किस धारा मे चल रहा
है, वह धारा कितनी सही और कितनी गलत है तथा उस
धारा की भव्यता की ओर अग्रसर बनने के लिये किस दिशा
में कितने वेग से मोडनी चाहिये ?

{639}

{640}

अपूर्ण दशा की शक्ति की भी दो तरह की सीमा होती है। परिपक्व अवस्था मे पहुँचने के पहले यदि उस शक्ति को व्यवस्थित रूप से विवेक के साथ नही सभाला जाये,तो वह कच्ची अवस्था मे ही छिन्न-भिन्न होकर बेकार-सी बन जाती है। अत उस अवस्था मे मुख्यता वास्तविक विकास की ओर ही लगना चाहिए। जब वह परिपक्व अवस्था मे पहुँच जाये,तब उसकी अखूटता को देखना चाहिए कि परिपक्व होने पर भी वहाँ रूकने वाली है या उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाली है। यदि यह मालूम हो कि वह रूक गई है, तो वहाँ पहले दूसरी दशा में न लगकर निरन्तर उसको बढाने मे लगना चाहिए। यदि ज्ञात हो कि रूकी नही, वृद्धिगत हो रही है और अखूटता की अवस्था को प्राप्त हो रही है, तो उसे अन्य दिशा की ओर भी यथासम्भव लगाया जा सकता है। यह एक सीमा है। दसूरी परिपक्व होने के पश्चात् भी कवेल भौतिक विज्ञान की ओर ही लगती है, तो उसमे काल्पनिक- सतुष्टि भले ही समझी जाये, वास्तविक शाति का आनन्द प्राप्त नही हो सकता। क्योकि वह शक्ति ऊपर ही ऊपर तैरती हुई विलय को प्राप्त हो जाती है। अन्त -तोगत्वा जीवन विफलता की भट्टी मे जल जाता है। अत इन अपूर्ण अवस्था की दोनो सीमाओ को मद्देनजर रखते हुए वास्तविक सम्पूर्ण सर्वागीण अमरता के लक्ष्य को दृढता पूर्वक स्थिर बनाकर चलना चाहिए।

कोई भी कठिन कार्य बनता है
संघर्ष करने से और सघर्ष करने से
ही शक्ति का प्रकटीकरण भी होता है। सघर्ष
के प्रारभ मे शक्ति का स्फुरण होता है तो संघर्ष की सम्पन्नता
विजय श्री मे प्राप्त होती है। सघर्ष एक प्रकार से लक्ष्यपूर्ति के
लिये जीवन को आन्दोलित कर देता है।

{641}

{642}

अन्तदर्शन की ओर
बढेगे-भीतर झाककर देखेगे तो
दिखाई देगा कि विषय भोगो की
उग्र लालसाएँ भीतर ही भीतर उद्दाम बनी
हुई है तथा वे उसी के
अनुरूप विकारी सस्कारों का
निर्माण कर रही है।

{643}

अनुभवो की
उपलब्धि कराने
वाला हमारा ही
चैतन्य है।

{644}

स्व स्वरूप
के परिज्ञानार्थ हमेशा
स्थाध्याय के साथ-साथ स्व
का अध्ययन भी
करना चाहिये।

{645}

बुद्धि जब सत्याभिमुखी
हो जायगी तो आध्यात्मिक खोज
भी सफल बन जायेगी तथा मोह आदि
विकारो को दूर करने की क्षमता भी उसमें
आ जायेगी।

{646}

जो सांसारिक प्रपंचो मे
पडकर बुद्धि को मलिन नही होने देता है,
वही अपनी विमल बुद्धि के साथ
आध्यात्मिक ज्ञान एवं सत्य की खोज मे
निकल सकता है।

{647}

विचारो का
एक्सीडेन्ट (टकराव)
बडा खतरनाक
होता है।

{648}

विचारो के
आधार पर ही उच्चार
एव आचार की भव्यता
निखतरी है।

{649}

ससार के नाशवान
पदार्थो के साथ यह आत्मा
जितना अपना गहरा सम्बन्ध जोडती है,
उतनी इसकी निज स्वरूप से विस्मृति
होती जाती है।

चांदी के टुकडो की चाह के साथ
मृत्यु का भय सामने लटकता रहता हे।
तृष्णा और मृत्यु-दोनो मे जेसे होड लगी रहती हे।
फिर भी मृत्यु सामने आ जाती है तब तक भी तृष्णा मिटती नही
हैं। ऐसा वासनालिप्त जीवन बन गया है कि आत्म कल्याण की
अभिलाषा भी नही बन पाती हे।

{650}

अधिकाश मनुष्यो का दृष्टिकोण वर्तमान विज्ञान की
ओर आकर्षित है। वे उसी मे सव कुछ पाने की आशा मे है, लेकिन
सृष्टि का वास्तविक तत्त्व कुछ रहस्यमय हे। उस रहस्य की खोज की गतिशील है।
एक रोज कुछ मात्रा मे अभिव्यक्ति हो सकता है, लेकिन वैसी योग्य भूमि तैयार
होने पर। ससार सोच रहा है कि विज्ञान परमाणु भेदन कर रहा है, पर बात ऐसी
नही है। परमाणु का भेदन कोई वैज्ञानिक नही कर सकता। वैज्ञानिक क्या, देव,
दानव आदि कोई कितना ही शक्तिशाली व्यक्ति क्यो न हो, त्रिकालवर्ती अनन्त
भूत-भविष्य मे भी न किसी ने वास्तविक परमाणु का भेदन किया है, न करता है, न
करेगा। पर आजकल जो कुछ हो रहा है, वह वस्तुत परमाणु-भेदन नही। वह तो
अनन्त परमाणु के स्कन्ध का भेदन है। ऐसे भेदन से भी भौतिक शक्ति का
प्रादुर्भाव हुआ है और हो सकता है। पर जिस विधि से जो हो रहा है, उस विधि के
अतिरिक्त भी कुछ विधियां ऐसी है जिनसे प्रचलित मशीनो के बिना भी अनन्त
परमणसु के सूक्ष्म स्कन्धो को आसानी से तोडा जा सकता है और वर्तमान विज्ञान
भी विवेक के साथ सही दिशा मे आगे बढता रहा, तो एक
रोज यह भी उस विधि पर पहुॅच सकता है।

{651}

अध्यात्म विज्ञान की साधना
किसी भौतिक प्रयोगशाला मे नही की
जाती है। इस साधना के लिये पूरा जीवन ही
हर प्रयोगशाला का रूप होता है। जीवन की प्रयोगशाला मे
भावात्मक रसायनों के साथ संयम और तप की आग मे जब
वह आत्मा तपती है, तब उसका स्वरूप निखरता है। तब
जीवन सुसज्जित बनता है।

{652}

स्वानुभूति प्राप्त विचारशील मानव जिस अपूर्व गहराई का, जितनी मात्रा मे स्वय अनुभव करता हैं, उतनी ही मात्रा मे वह वचन अथवा लेखनी द्वारा अन्य के समक्ष नही रख पाता। कारण कि अनुभव को गहनता अतुल होती है। शव्द उसको पूर्णरूपेण वहन करने में सर्वथा अक्षम रहते है। दिव्य पदार्थ का साक्षात्कार दिव्य अनुभव ही कर सकता हे ओर दिव्य अनुभव की उपलब्धि सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य के स्थिर होने पर संचित होनी प्रारभ होती है। {661}

{662} मानव प्राय स्थूल दृष्टि वाला रहता है। उसके पास सूक्ष्म दृष्टि प्रायः नही के वरावर रहती हे। यही कारण हे कि -वह आन्तरिक आनन्द का अनुभव नही कर पाता। स्थूल पदार्थ में ही वह सब कुद पाना व देखना चाहता है, लेकिन स्थूल पदार्थो मे सार प्राय. नही रहता। अधिकांश सारतत्त्वो के हटने पर स्थूलता आती हे। स्थूल पदार्थ जल्दी ही बिखर जाते है, अत. उनमे वास्तविकता का दर्शन नही हो पाता है और उसी को यदि सब कुछ समझ लिया जाता है, तो समझिये यह बहुत बडी नासमझी है अर्थात् अमूल्य जीवन को हाथ से खोना है, जो कि पुनः शीघ्र मिलना दु·स्वार ही परिलक्षित होता है। एतदर्थ प्राप्त समय का सदुपयोग जीवन की सार्थकता एव वास्तविक आनन्दानुभूति के आन्तरिक रसास्वादन की उपलब्धि के लिए स्थूल पदार्थ, चाहे वह दृश्य या अदृश्य हो, की ओर दृष्टिकोण रखना अत्यावश्यक है। वर्तमान में पूरा समझ मे नही आ रहा है, एतावता उसको नही मानना बहुत बडी भूल होगी और जीवन-विकास भी रूक जायेगा। जीवन-ग्रन्थियॉ उलझ जायेगी। दिशा मे परिवर्तन आ जाएगा। अतः केवल स्थूल दृष्टि खतरे से खाली नही है।

दिल एवं दिमाग का असर शरीर पर पडता है और वह शरीर के प्रत्येक अंग से बाह्य वायु -मण्डल मे फैल जाता है। बिना बोले वह सूक्ष्म रूप से प्रत्येक पदार्थ पर असर करता रहता है। जिस भाव की जितनी प्रबल शक्ति होगी, वह जनसाधारण पर उतनी ही अधिक असर करेगी और समय पाकर अपने ढाचे मे ढाल देगी। विचारक पुरुषो के साथ उसका संर्घष होगा। उसमे या तो प्रबल शक्ति विजय प्राप्त कर लेगी या तीसरी शक्ति की सृष्टि होगी। {663}

{664}

जैसे बूद-बूद करके
घट भर जाता है वैसे ही
एक-एक समय का मूल्याकन
करने वाला एक दिन महान् कार्यों को सिद्ध
करने मे सफल हो जाता है।

{665}

सत्य का
सफल साधक
अमर हो
जाता है।

{666}

समदर्शी
हो जाना समता
का सर्वोच्च विकास
प्राप्त कर लेना
होता है।

{667}

मानव जीवन एक
चौराहा है। यहा से आत्मा
जहा भी जाना चाहे जा सकता हे।
जैसा भी बनना चाहे
बन सकता है।

{668}

मानव जीवन सर्वतत्र
स्वतन्त्र हे इसमे परतंत्रता का
काम नही पर शर्त यह है कि इस शरीर को
धारण करने वाला
चैतन्य देव स्वय के स्वरूप
को समझ ले।

{669}

आज का
मानव क्षणिक ऋद्धि प्राप्त
करके भी अभिमान से
फूला नही समाता है।

{670}

सभी प्रकार
की अवस्थाओ मे
सम्यक् दृष्टि आत्मा
का विलक्षण व्यवहार
दृष्टिगत होता है, जो सबको
प्रभावित बनाता है।

{671}

विचार, वचन और व्यवहार
मे अपवित्रता बरतने वाले अपने
को बहुत चतुर समझते है, लेकिन वे यह
भूल जाते है कि आखिर जाकर अपवित्रता
का भाडा फूटेगा ही और कालिमा प्रकट
होकर रहेगी।

आध्यात्मिक शोधकर्त्ता कभी अपने मित्रो पर कोप नही करता है-अपने साथियो के साथ वैमनस्य नही रखता है। सबके साथ उसका सहानुभूति का व्यवहार होता है। अपने मित्र का कोई दोष देख भी लेगा तो उसके लिये वह उसे एकान्त मे स्नेह पूर्वक चेता देगा। वह अपने दिल में स्वच्छता रखेगा- किसी के प्रति भी मलिनता भी नही।

{672}

मनुष्य क्या सोचता है और क्या सोचना चाहिये ! वह सोचता है मै व्यापार करू, उद्योग करू, नौकरी करूं अथवा अन्य किसी विधि से पेसा कमाऊ, धनवान बनूं, परिवार वाला बनूं, अध्किार प्राप्त करूं, हकूमत करू, आधिपत्य जमाऊ, यशकमाऊ, संसार के विषयो का उपभोग करूं। यही जीवन का सार है, आदि। लेकिन उपर्युक्त प्रकार से सोचना और उसी को लक्ष्य बना लेना नितान्त भ्रातिपूर्ण है, भूलभुलैया है, जीवन के साथ धोखा है। विपरीत मार्ग है, अध·-पतन की सीढी है। मानवता खोना है, पशुत्त्व में प्रविष्ट होना है, अत· सही तरीके से सोचने की आवश्कता है। वह यह कि धन स्थायी नही, परिजन प्राय· स्वार्थ भावना से प्रेम करते है, अधिकार, अहंकार बढाने वाला है, आधिपत्य जीवन को झकझोरने वाला है। समग्र स्थितियो का भली-भॉति चिन्तन करते हुए शुद्ध लक्ष्य के साथ यथास्थान, यथायोग्य स्वय की सीमा के अनुरूप कार्य करते हुए निरन्तर कदम आगे बढाने का चिन्तन करना चाहिए ।

{673}

मानवता के आधे भाग औरत का जिन्होने ठुकराने का दुस्साहस किया, हकीकत मे उन्होने सारी मानव जाति के भाग्य को ही ठुकराने की चेष्टा की। क्योकि उन्होने मानव जीवन की जननी के सम्मानपूर्ण स्थान का ही अनादर किया। यह एक ऐसा कुकर्म था, जिस ने मानव जाति मे एक बहुत बडी भेद की दीवार खडी कर दी।

{674}

{675}

यह आत्मा जितनी भी
इच्छाएँ, आशाएँ एव अभिलाषाएँ
रखती है, उन सब की पूर्ति तभी
हो सकती है, जब वास्तविक
लक्ष्य को अपना मार्ग
दर्शक बनाया जाय।

{676}

दृष्टि सम
होती है तब,
जब गति सम होती है और
मति सम होती है तो गति
और दृष्टि दोनो सम बन
जाती है।

{677}

अहकार विषमता
का जनक होता है,
इसलिए जब अहंकार
समाप्त हो जाता है तो
विषमता भी मिट
जाती है।

{678}

जब आप सारे संसार
की सभी आत्माओ के साथ समभाव,
समदृष्टि एवं सम व्यवहार बना लेगें-
आत्मवत् भावना से अभिभूत हो जायेगे।

{679}

जब सन्तप्त आत्माओ की
सेवा का सुअवसर मिलता है और उनका
ताप मिट कर उनमे आनन्द की कलियाँ
खिलती है, तभी अपनी अन्तरात्मा मे भी
सच्चे आनन्द का प्रवाह बहता है।

{680}

ससार के
विषय भोगो मे
फसे हुए मनुष्य के लिये
सबसे बडा भय होता है,
मृत्यु का भय।

{681}

भविष्य की
चिन्ता छोडकर
पहले वर्तमान को
भव्य बनाइये।

{682}

जहाँ से भी सुगन्ध
मिले, आगे बढकर सुगन्ध
लीजिये, और जब अपने आपको
सुगन्ध से सुवासित बना ले तो दूसरो को
भरपूर सुगन्ध दीजिये। मुक्त भाव से लेना और
सुगन्ध देना सीख ले तो शान्ति का
अमृत-पान अवश्य कर सकेगें।

एक बटन दवाने से एक वल्व भी
जलता है तो पूरा विजलीघर भी चलता हे
और ज्यों-ज्यो जीवन की सुन्दर उज्ज्वलता वढती जाती हे,
त्यो-त्यो बटन की शक्ति का भी विकास होता रहता हे। यह
विकास इहलोक में करलें तो वर्तमान जीवन पहले सुधर
जायगा तो परलोक भी सुरक्षित वन जायगा।

{683}

कुछ व्यक्ति कहते है कि स्व की ओर ही देखो, पर की तरफ नही। पर की तरफ देख लिया तो गलत वन जाओगे। भटक जाओगे। किन्तु इस प्रकार का कथन करने वाले अधेरी गुफा मे, वेठने वाले अन्धे व्यक्ति के समान हे। वे स्वयं को भी नही देख पाते, ओर जो स्वय को नही देख पाता वह स्व-पर के मार्ग को केसे वता सकता है? कारण कि जो पर की ओर देखेगा ही नही, वह स्व को भी कैसे पहचानेगा? जो पाप को नही जानता, वह धर्म को कैसे जानेगा? जिसने जड के स्वाभव को नही समझा, वह चेतन्य के स्वभाव को कैसे समझेगा? अर्थात् एक दूसरे के स्वरूप को समझे बिना, उन दोनो मे भेद है, यह निर्णय कैसे करेगा? प्रेक्टिकल रूप मे भी देखा जाये, तो परिवार के एक सदस्य को उसी परिवार का दूसरा सदस्य नही देखे, तो क्या वह परिवार चल सकता है? पथिक अपने आप को ही देखे और अपने से भिन्न यानि-पर-दूसरे पथिक को, साइकिल, तागे, मोटर, कार, स्कूटर, मार्ग आदि को बिना देखे, विना सोचे चलता है,तो क्या वह बिना टकराये चल सकता है? बुद्धिमान का उत्तर होगा नही ! वैसे ही पर का ज्ञान किये बिना स्वय का ज्ञान नही कर सकता। जिसका भी ज्ञान करना होगा, जिसको भी समझना होगा, उसकी ओर देखे बिना, न ज्ञान किया जा सकता है, और न उसकी समझा ही जा सकता है।अत स्व का ज्ञान करने के लिए भी पर की ओर देखना अर्थात् पर का ज्ञान करना भी आवश्यक हो जाता है।

{684}

अन्दर की शक्तियॉ जब
सक्रिय बन जाती है तो फिर बाहर की शक्तियो की उच्छृखलता
चल नही सकती हैं, बल्कि बाहर की शक्तियों को भी
अन्तशक्तियो के अधीन बन कर उनके निर्देशो के
अनुसार कार्य करना पडता है।

{685}

{686}

जब भौतिक एवं
आध्यात्कि मानवता की सेवा
मे ही नियोजित किये जा सकेगे। तव दोनो
विज्ञान एक-दूसरे के पूर्वक
भी बन जायेंगे।

{687}

धन के
इस बढते हुए
प्रभाव
ने मानवीय मूल्यो को क्षीण
बना दिया है।

{688}

धन बडा
और इन्सान छोटा
हो गया है।

{689}

समता की जीवन प्रणालि
को जो अपना लेता हे, उसे जीवन
का सम्पूर्ण वैभव भी प्राप्त होता है।
तो सुयश भी मिलता है। मूल रूप मे उसका
वर्तमान जीवन सार्थक तथा
आनन्ददायक बन जाता है।

{690}

मन, वचन एव काया के
परस्पर सहयोग तथा परस्पर नियत्रण की
प्रणाली ठीक तरह से जम जायेगी तो
भीतर की कई समस्याएँ सहज ही
मे सुलझती रहेगी।

{691}

यह एक
निर्विवाद सत्य है
कि विनय के पुजारियो को
सिद्धि लाभ
मिलता ही है।

{692}

आन्तरिकता
की पवित्रता
मधुरवाणी एव निर्मल
व्यवहार मे प्रकाशित होती
है।

{693}

यदि समुद्र जनकल्याण की
भावना से अपनी मर्यादा तोड दे,
तो कल्याण नही प्रलय हो सकता है। वैसे ही
साधु भी भले जन कल्याण की भावना से
महाव्रतो को तोडता है,तो वह आगमिक दृष्टि
से अपना व दूसरो का सरक्षण नही ससार
सवर्धन कर रहा हे।

सत्य तो यह है कि अहिसा के
अंचल मे ही शाश्वत शान्ति की उपलब्धि होती हे।
इसी पवित्र अंचल में जगत् के प्राणियो को अपूर्व शान्ति मिली
है, आज भी अहिंसक आत्माएँ उस अपूर्व शान्ति का रसास्वादन
कर रही है तथा भविष्य मे जो अहिसा के अंचल मे आत्म-रमण
करेगा, वह शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता रहेगा।

{694}

जीवन की साधना मे तल्लीन रहने वाला,
अन्य विषयो मे आसक्त नही बनता। उसकी स्थिति
लक्ष्य-सिद्धि मे मुख्य रूप से रहेगी, अन्य विषय को प्रसंगोपात ग्रहण कर
पायेगा। कौन मेरा मान कर रहा है, कौन अपमान इस विषय पर वह
समत्व का अवलम्बन लेगा। वह यह नही सोचेगा कि मुझे मान करने
वाले से प्रेम से बोलना है और अपमान करने वाले से कत्तई नही बोलना
है या प्रतिकार करना है, इस का बदला लेना है। वह तो सोचेगा -मेरा
साथी है, मेरी शक्ति को बढाने वाला है। इनकी बातो को सुनकर मुझे
जीवन का परिमार्जन करना चाहिये। यदि कोई त्रुटि हो तो परिर्माजन
करना है। यदि त्रुटि न हो, तो सोचना है कि मेरे
कर्मो की निर्जरा हो रही है।

{695}

प्रत्येक वस्तु का यथोचित आवश्यक ज्ञान
होने पर ही इसकी हेय-उपादेयता विदित हो पायेगी।
उसके पश्चात् ही मोह-जनित आसक्ति- अनासक्ति का प्रश्न आता
है। किसी भी पदार्थ को वस्तु स्वरूप की दृष्टि से यथास्थात देखना
एव वस्तुस्वरूप के पूर्ण लक्ष्य की सिद्धि के लिए योग्य प्रेरणा ग्रहण
करना गलत नही कहा जा सकता-बल्कि गलत वह है कि इसका
सर्वथा निषेध किया जाये, अथवा मोहजनित आसक्तिपूर्वक
देखा जाये। अत. विवेक-दीप की आवश्यकता है।

{696}

{697}

शान्ति की चादर
को प्रतिक्षण कतरने वाली
पहाडी चूहे के समान सम्पूर्ण आपत्तियो का
प्रमुखद्वार वह शत्रु है—प्राणी के अन्दर मे
रहने वाला 'काल्पनिक भय'।

{698}

जो व्यक्ति आत्म–विकास
को अपने जीवन का लक्ष्य
बना लेते है,
वे कई अशो मे
अन्तमुर्खी हो जाते है।

{699}

ध्यान लगावे
कि "मै कौन हूँ,
कहॉ से आया हूँ
और कहॉ जाना
चाहता हूँ।"

{700}

जैसे माता–पिता के
व्यवहार होगे अधिकतर वैसे ही सस्कार
उनकी सतानो पर छायेगे। अब तो
सस्कार ही नही अनुवाशिक रोग भी
आने की बात भौतिक विज्ञान मान रहा है।

{701}

सत्य है नाव मे एक
छिद्र हो जाने पर भी वह पूरी
नाव को डुबो देता है, वैसे ही साधु जीवन मे
एक दोष का प्रवेश भी उसके सारे साधु
जीवन को दूषित कर सकता है।

{702}

दुष्प्रवृत्तियो
का त्याग करिये और
सत्–प्रवृत्तियों को
अपनाइये। यही ज्ञान का
रहस्य है।

{703}

असयमी
दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करके
पूर्ण शुद्ध भावना मे
विश्वास रखना ही
श्रेयस्कर है।

{704}

श्रुत का श्रवण करना
एक बात है, श्रुति का पैदा होना दूसरी बात
है। जब अतर से श्रुति जागृत हो जाये तो
फिर उसका आनन्द अनिर्वचनीय होगा।

साधारण जनता अनेक दृष्टिकोणो के विभिन्न विचारो को समझ नही पाती। उसका ध्यान आर्थिक व सामाजिक नियमों पर ही विशेष रूप से रहता है। उन्ही के अनुसार अपना हिताहित सोचकर वह किसी के पक्ष या विपक्ष मे अपनी दृष्टि बना लेती है। अतएव विभिन्न दृष्टियो से सोचने वाले विचारको को चाहिये कि अपने बौद्धिक दृष्टिकोण की विभिन्नता को बुनियादी व्यवहार मे लाए। बौद्धिक समन्वयात्क अनेकता और बुनियादी एकता ही प्रगतिशीलता की परिचायक है। इससे विपरीत मार्ग प्रतिगामिता का होगा।

{705}

शरीर के आन्तरिक ह्दय मस्तिष्क, आदि अनेको ऐसे अवयव है जो डॉक्टरी दृष्टि से भी भलीभॉति विदित है। प्राय· बहुत से व्यक्ति उनको अच्छी तरह जानते और देखते भी है। पर अन्तर मे संवेदन चक्रो आदि को दृश्य पदार्थो की तरह देखा व जाना नही जा सकता। उनको जानने की प्रक्रिया अनुभूति से सम्बन्धित है। वह भी उस प्रकार के निरन्तर अभ्यास आदि के प्रयास से। अत. पूर्वोक्त योग्यता के प्राप्त होने पर सर्वप्रथम कण्ठ मे स्थित २५ दलीय कमल के माध्यम से उससे सम्बन्धित विज्ञान को अनुभव मे लाना होता है। क्योकि यह व्यजक तत्त्वों का माध्यम होने के साथ-साथ स्वर विज्ञान का अभिव्यंजक है। इसका सही अनुभव होने पर आत्मा के उपाधि तत्त्वो का ज्ञान होने लगता है। तदनन्तर भ्रकुटि मध्य स्थित त्रिदलीय कमल का विषय आता है, जो कि अन्तर प्रवेश के द्वार कहे जा सकते है। इसके माध्यम से विधि-निषेध तथा निर्माणात्मक गतिविधियो के अनुभूत्यात्मक विज्ञान की स्पष्टता होती है जिससे आगे का दिशा निर्देश बनता है।

{706}

द्रव्यमन और शरीर का सम्बन्ध एक दृष्टि से अवयव-अवयवी-भाव वाला कहा जा सकता है। यह शरीरस्थ पॉच इन्द्रियों और आत्मा के बीच का एक माध्यम है। इस माध्यम से विशेष रूप से तथा तीव्र-मन्दादिभाव से कर्मो का सचय और विनिवृत्ति प्राय हुआ करती है, पर भावमन के बिना यह कुछ भी करने मे समर्थ नही रहता।यानि व्यवस्थित एव कलापूर्ण स्थिति नही बन पाती। अतः भावमन, जो कि आत्म की शक्तिरूप है, से सब प्रक्रियाओ का संचालन बनता है।

{707}

{708}

आम का रस बाहर—बाहर
से मात्र छिलका चूसने से नही,
भीतर से प्राप्त होता है, वैसे ही वास्तविक
आनंद की अनुभूति बाहर की शारीरिक
साधना से नही आत्मिक
साधना से प्राप्त होगी।

{709}

मनुष्य
अज्ञानता से भटकता है
अत शरीर को
साधना सीखे।

{710}

शुभ सस्कारों
का कवच हर परिस्थितियो
मे बालक की
सुरक्षा
करता है।

{711}

आज परिवर्तनशील
युग है, पर जितने भी परिवर्तन
है वे सारे बाहरी परिवेश के परिवर्तन है,
किन्तु आत्मिक मौलिक स्वरूप का परिवर्तन
तीन काल से भी नही हो सकता।

{712}

शरीर रूपी कार का मालिक
यदि आत्मा है तो उसका ड्राइवर
मन है, इस ड्राइवर को स्वछन्द मन छोडिये,
अन्यथा कही एक्सीडेट न हो जाए, आत्मा रूप
मालिक भव परम्परा के
अंधकूप मे न जा गिरे।

{713}

आचरण
शून्य जीवन
प्रभाव हीन
होता है।

{714}

महाप्रभु के
प्रति हमारी समर्पणा ,
नि स्वार्थ होती है तो वह
निश्चय ही प्रभावशाली
बनती है।

{715}

टंकी मे यदि जहर है, तो
नल से भी विष मिश्रित पानी ही आएगा, ठीक
ऐसे ही माता—पिताओ का जीवन कषायादि से
विषैला है तो सतान भी वैसी ही होगी।

जीवन-कला केवल शारीरिक
सस्कारमात्र ही नही है और न वह मानसिक
व वाचिक संस्कार तक ही सीमित है। उसकी वास्तविक स्थिति जो
स्व-पर प्रकाशस्वरूप आत्मिक शक्ति के यथास्थान परिमार्जन में
सन्निहित है। अत. जीवन-कला का यथार्थ ज्ञान के साथ विकास
करना तथा उसी के अनुरूप प्रत्येक कार्य में उसके पुट का
लगते रहना नितांत आवश्यक हे।

{716}

मन की वृत्ति जब ईर्ष्यालु वन जाती हे,
तब वह दसूरे को हर हालत मे गिराने की सोचा
करता है। रात-दिन उसके मन मे दुष्ट सकल्प का जमाव बन जाता है।
वे दुष्ट सकल्प उसके अन्दर की ऊर्जा का दुरूपयोग किया करते है,
जिससे निर्माणात्मक शक्ति का हास ओर संहारात्मक शक्ति की उत्पत्ति
बनती रहती है। परिणाम यह होता है कि जीवन स्वल्प समय मे ही
विषाक्त बनकर अनेक रोगों का आलय बन जाता है तथा इन्सानियत
की जिन्दगी की जिन्दगी से हाथ धोकर पशु आदि अवस्था को प्राप्त
करता है। तात्पर्य यह है कि वह स्वयं का ही
सब कुछ नाश करता है। अत. ईर्ष्यालुता को भूल
कर भी स्थान देना अबुद्धिमता है।

{717}

मानव किसी भी अवस्था मे किसी भी पद
पर निरन्तर अभ्यासपूर्वक चलता रहे, तो उस पद
की स्थिरता आ जाती है। उसकी मन स्थिति तृष्टि के साथ आगे
बढ जाती है। उसमे दृढत्ज्ञ, निर्भीकता भी आने लगती है। वह
उसमे मस्त बन जाता है। उसका आन्तरिक रस इतना पैदा हो
जाता है कि उसकी प्रत्येक प्रकृति में उसका रस झरता रहता
है और आस-पास का वायुमण्डल उससे प्रभावित
होता रहता है।

{718}

{719}

आज बच्चे गलत एवं विकारी
प्रवृत्तियो मे लगते हैं, माता–पिता का
अपमान करते है क्यो ? इन सबका मूल
कारण है–माता–पिताओ के दूषित विचार एव
दूषित आचरण।

{720}

आत्मा
रामी वही बन
सकता है जो इन्द्रिय शक्ति
से निरप्रेक्ष बनता हुआ
आत्म चिन्तन करे।

{721}

बीते हुए
समय को अब क्या
परिर्वतन होना है, किन्तु
बीता हुआ जीवन परिवर्तित
हो सकता है।

{722}

सच्ची भूख लगने पर
किया गया भोजन जैसे पाचक
होता है, वैसे ही सच्ची जिज्ञासा के साथ
ग्रहण किया गया सम्यक् ज्ञान आचरण के
साथ आत्मा को तुष्टि
देने वाला होता है।

{723}

आज के लोगो के हाथ
मे झंडा नही है, केवल डडा ही
रह गया है, वह डडे को ही लेकर चल
रहा है। वास्तविक आदर्श को तो भूलते
चले जा रहे है।

{724}

स्वय के
आईने मे स्वयं को
देखिये।

{725}

गुणी के
गुणानुवाद करने से
सद्‌गुणो की वृद्धि
होती है।

{726}

सच्ची आजादी को
लेकर चलने वाला कभी भी
भाई–भाई के साथ सघर्ष नही करता है। वह
देश के समाप्त व्यक्तियो को अपने
समान समझकर चलने
वाला होता है।

सरकारी चोरी करके
व्यापार करने वाले व्यापारी को सरकार
दण्ड देती है, चाहे वह उस धन को परोपकार
मे भी क्यो न लगा दे ? तो परोपकार के लिए यम-नियम
की चोरी करने वाले साधको को वीतराग देव की सरकार भी
केसे छोड सकती है ? उसे भी दण्ड तो
मिलना ही है।

{727}

एक छोटी सी बात कितनी बडी कामयाबी
हासिल कर सकती है- इसकी शुरू मे तो कल्पना भी
सभव नही होती है। वास्तव मे छोटी-छोटी बाते जिनकी ओर
ध्यान साधारण रूप से जाता भी नही है, यदि आपको आकर्षित कर सकें
और उन पर आप अपना पूरा-पूरा ध्यान देने लगें तो ये छोटी-छोटी बते ही
आपकी आदतो मे ढलकर आपके स्वभाव को मृदुल, त्यागमय और
बलिदानपूर्ण बना देगी। छोटी-छोटी बातो को अगर भली रीति से जीवन में
उतारें तो बडे-बडे परिणाम सामने आ सकते है। बोली बदलने की बात यों
छोटी लग सकती है, लेकिन अब तक आप समझ चुके होगे कि यह बात
हकीकत मं कितनी बडी है। सिर्फ वचन तोलकर हित, मित, इष्ट और
मिष्ट बोलने का ही कितना विशाल सुपरिणाम विशालतर क्षेत्र में प्रकट हो
सकता है-उसका अनुमान लगाना भी कठिन है। अतः भाषा विवेक के महत्व
को कभी भी कम करके नही देखा जाना चाहये।

{728}

जो मकान बाहर से स्वच्छ एव
चाक्चक्य दिखने वाला हो पर अन्दर
से भयकर दुर्गन्ध से भरा हो तो ऐसे मकान को कोई भी
सभ्य व्यक्ति नही पसन्द करेगा। इसी प्रकार कवेल बाहरी
कागजी स्वतन्त्रता तो आ
जाये पर भीतरी स्वतन्त्रता न आवे तो वह
वास्तविक स्वतन्त्रता नही होगी,
उसे कौन पसन्द करेगा ?

{729}

{730}

मूल मे मन की प्रारभिक
चचलता को समाहित कर उसे स्वय
की आत्मा को परमात्मा के स्वरूप की दिशा मे
जोड देना अर्थात् परमात्म स्वरूप स्वय मे
परिणत कर लेना ध्यान साधना का उद्देश्य है
और वह मन की वृत्तियो
के समीकरण से बनता है।

{731}

जब तक
माता-पिताओ मे परिपकार
नही आरम्भ तब तक
पारिवारिक जीवन सात्विक
नही बन सकता।

{732}

कर्त्तव्यनिष्ठ
महिलाएँ प्रजापति
के तुल्य है, यदि
वे चाहे तो दुनिया की
दुर्नीत को बदल
सकती है।

{733}

मन आत्म-समीक्षण की
गहराई मे डूब जाये, अन्तर्ज्योति
के साक्षात्कार मे लीन हो जाये या परमात्म
भाव की गहनता मे खो जाये तो वह चचलता
को त्याग कर अविचल-निश्चल हो जायेगा।

{734}

जैसे कल्पवृक्ष, कामधेनु,
चितामणि एव कामकुम्भ मनोवाछित फल
प्रदान करने वाले है। उसी प्रकार समीक्षण
ध्यान साधना की प्रक्रिया
सब कुछ आनन्द प्रदान करने
वाली प्रक्रिया है।

{735}

समीक्षण
ध्यान हस चोचवत्
वस्तु के स्वरूप का यथार्थ
बोध करता हुआ अतर्पथ के
राही को ऊर्ध्वारोहण मे
गति प्रदान करता है।

{736}

कारण सुंदर
होता है तो कार्य
भी सुदर हो सकता हे।
अत कार्य से पहले कारण
का योग्य होना
आवश्यक है।

{737}

आध्यात्मिक क्षेत्र किसी
भी तत्त्व का पता लगाने मे
कभी असफल नही होता, जबकि भौतिक
विज्ञान की कही भी सम्पूर्ण रूप से पैठ नही
होती है। जो उसने पता लगा लिया है, वह
कही भी पूर्ण नही है।

मन चचल घोडा वेकावू है, तो
वह वन्ध करता जायेगा, जिसके कारण
आत्मा कर्मो से वॅधकर जन्म-मरण के चक्र मे
भ्रमित होती रहेगी। किन्तु यदि यही घोडा कावू मे आ जाता है,
तो फिर इसी एकाग्र मन के जरिये मोक्ष तक की महायात्रा
सफलता पूर्वक पूरी की जा सकती है। अन्तर की कडियो को
जोडकर ही मन की चंचलता को मिटाया जा सकता हे।

{738}

संसार के प्रति आकर्षण का मूल आवेग हे
मोह का आवेग, राग भाव की लिप्तता ओर आसक्ति
की गृद्धदशा। यह मोह होता है जड पदार्थो के प्रति, अपने सम्बन्धियो के
प्रति और अपने ही शरीर के प्रति। मोह भाव का प्रस्फुटन राग में होता
है कि अपनी इन्द्रियो ओर मन को जो इष्ट लगे, वे पदार्थ अपने और
अपनो के ही पास रहे, ऐसे पदार्थो को अधिकतम मात्रा मे संचित किया
जाये तथा उन पदार्थो को कोई अपने से छीने तो उसका किसी भी स्तर
पर विरोध किया जाये। यह राग भाव मोहावेग के साथ चिकन होता
रहता है। राग की प्रतिक्रिया के रूप में द्वेष का जन्म होता है और राग
द्वेष की प्रकृतियों व प्रक्रियाओ से ही कर्म बन्ध होता है। इसी कारण राग
और द्वेष को सासारिकता के बीज रूप मे देखा गया है।

{739}

डॉक्टर जब शरीर के किसी अवयव का
आपरेशन करना चाहता है तो उस भाग मे पहले
वह अमृत तत्त्व का इन्जैक्शन लगा देती है जिससे मन ओर
शरीर के बीच के सम्बन्ध को वह शून्य बना देती है। इससे
शरीर की सूचना मन तक नही जाती और डॉक्टर अपनी
इच्छानुसार रोगी को बिना कोई कष्ट महसूस कराये ऑपरेशन
कर देता है। मन को नही जुडने देने पर शरीर के साथ कैसा
भी व्यवहार किया जाता है तो उसकी महसूसगिरी नही होती है।

{740}

{741}

जो व्यक्ति
समाधान नही लेता है,
वह भ्राति मे ही अपने विचारो को दूषित
करता हुआ अपने अमूल्य जीवन को
बरबाद कर देता है।

{742}

अपूर्णता ही
सफल - विकल्पो
की जननी है। इसे समाप्त
कीजिए।

{743}

जिस व्यक्ति
मे विचारो की उज्ज्वलता
है वह किसी को भी
आकर्षित किये बिना नही
रह सकता।

{744}

आधुनिकता के नाम
पर साधुओ को यदि वृतो से
अलग किया जाये, मर्यादाए तुडवाई जाए तो
वह सच्ची क्राति नही, मात्र भ्रान्ति है।
अशान्ति है।

{745}

सच्ची शाति को
जीवन मे प्रवेश कराने
के लिए पहले मन-मस्तिष्क
में भरी बाहरी बातो
को हटाना होगा।

{746}

जो अशाति
की अनुभूतिया
मानव कर हरा है,
उसका निर्माता वह
स्वय है।

{747}

तू स्वयं
ही स्वय के
सुख-दु ख का
कर्ता है।

{748}

सच्चे देश प्रेमी
को राष्ट्र रक्षा हेतु
अपने स्वार्थो को तिलाजलि
देने मे जरा भी हिचक
नही होती है।

मन और शरीर के सम्बन्ध परस्पर इतने
प्रभावोत्पादक होते है कि इन सम्बन्धो का एक
दूसरे को परिणाम भी भुगतना पडता है। शरीर को कोई कष्ट नही
हुआ, लेकिन मित्र के मिलन-भाव से मन को जब प्रफुल्लता हुई तो
शरीर भी आल्हादित हुआ ओर जब वह अपना मित्र नही निकला
तथा मन मुरझा गया तो शरीर की आकृति भी निराश और फीकी
दिखाई लगी। क्योकि मन के अनुभव की छाया
शरीर पर पड जाती हे।

{749}

जब भी कोई सत् सिद्धानत या सुविचार
किसी महान् विभूति के अनुभवजन्य ज्ञान से नि.सृत
होता हे अथवा समाज की श्रेष्ठ धारणाओं एवं परम्पराओं से प्रतिष्ठित
होता है, तब उसका स्वरूप पूर्ण रूप से शुद्ध होता है। यो सत् सिद्धान्त
और विचार तो सदा शुद्ध ही रहता है किन्तु उसके टीकाकार, उपदेशक
या समर्थक कई बार किन्ही व्यक्तिगत या समूहगत स्वार्थो के पीछे उस
शुद्धता को प्रदूषित कर देते है अथवा व्यवहार के काल क्रम मे भी उनके
प्रति शिथिलता की वृत्ति बन जाती है जिससे उसकी शुद्धता के साथ
कार्यान्वय के दोष जुड जाते हैं। यह परिवर्तन प्रदूषण युक्त होता है अत.
फिर समय आने पर प्रबुद्ध व्यक्तित्त्व की प्रभाव- शीलता से उसका संशोध
ान एव परिमार्जन किया जाता है तथा उस सिद्धान्त या विचार को उस
प्रदूषण से मुक्ति मिलती है। यह पुरुषार्थजन्य प्रक्रिया होती है।

{750}

द्रव्य मन की गति भी भाव मन के निर्देशन
के बगैर नही होती है। मनुष्य उच्चारण करता है
कि मै परमात्मा के तुल्य हूँ लेकिन उसका उच्चारण द्रव्य मन के
आधार पर होता है, परन्तु भाव मन के बिना ही। सही स्वरूप
दर्शन तो आन्तरिक अनुभव के साथ जब भीतर की गहराई में
पहुँचते है तभी होता है और तभी वस्तुस्थिति सामने आती है।

{751}

{752}

जब जीवन मे भाई-भाई
के प्रति भी प्रेम-स्नेह की भावना उत्पन्न नही
होगी तो विश्व के सभी प्राणियो के प्रति
आत्मीय भावना की उत्पत्ति की सभावना ही
नही की जा सकेगी।

{753}

जब तक देश
के प्रति देशवासियो
की निष्ठा जागृत नही
होगी, तब तक देश का
समुचित उत्थान नही
हो सकता।

{754}

जो मन को
साध लेता है उसको
इच्छित फल की प्राप्ति
हो जाती है।

{755}

यदि धर्मस्थानक मे
आकर भी अभिमान प्रदर्शन की
भावना रहती है, मे इतना पैसे वाला हूँ,
संघ प्रमुख हूँ, राजकीय अधिकारी हूँ,
तो फिर आत्म शुद्धि कैसे हो सकती है।

{756}

केवल मुह से स्वतन्त्रता
के गीत गा लेने से या झडा
फहरा देने से स्वतन्त्रता का सही
रूप नहीं आ सकता। इसके
लिये वस्तुत. मानवीय प्रेम
जागृत करना होगा।

{757}

आज के
साधक तपस्या करते
जरूर है पर अधिकतर ये
शरीर को साधते है, मन
को नही।

{758}

शाति
चाहते है तो पहले अन्य
प्राणियो को शाति दो।

{759}

विषय-कषाय (काम,क्रोध,मद,
मत्सर, तृष्णा) के स्त्रोत मे बहते
जाना कोई प्रगति नही है प्रगति है
प्रतिस्त्रोतगामी बनने मे जो विषय कषाय के
प्रवाह से विपरीत चलते है वे ही अपने जीवन
मे एक उत्क्रांति करते है सच्ची
प्रगति करते है।

जिसका विवेक जग जाता हे
वह श्रेष्ठ वस्तु ही ग्रहण करना चाहेगा।
आम को छोडकर जा निम्बोली के पीछे भागता हे,
उसको दुनिया अक्लमन्द नही कहती है। जिन आत्माओ ने
अविनाशी सम्पत्ति को प्राप्त करने का संकल्प किया हे,
वे समीक्षण ध्यान की साधना का
पाथेय लेकर ही आगे वढी है।

{760}

भगवान् महावीर तो मानव मूल्यो की ऐसी क्रांति-
कारिता में सबसे आगे रहे है। यह संविभाग अर्थात् सम्
विभाग का प्रयोग उन्ही का हे। उन्होने ही सबसे आगे बढकर अन्नादि सामग्री
का ही नही, सम्पूर्ण अर्जन के सविभाग का निर्देश दिया है। प्रश्न का कारण
सूत्र (अ २ गा ३) मे कहा गया हे-
''असंविभागी, असंगहरुई..... अप्पमाण
भोई से तारिसए नाराइए वयमिणं।''
अर्थात् जो अंसविभागी है, प्राप्त सामग्री आदि का ठीक तरह से वितरण नही
करता, असंग्रह रूचि है-साथियों के लिये समय पर उचित सामग्री का संग्रह
कर रखने मे रूचि नही रखता, अप्रमाण भोजी है-मर्यादा से अधिक भोजन
करने वला पेटू है, वह अस्तेय व्रत की सम्यक् आराधना नही कर सकता।
आगे यहॉ तक कह दिया गया है कि-
''असंविभागी न हु तस्स मोक्खो।''
''अर्थात् जो संविभागी नही है और प्राप्त सामग्री का सम-वितरण
नही करता है, उसको मोक्ष की प्राप्ति नही होती।

{761}

साधना का क्षेत्र एक तरह
से जीवन की तह तक पहुॅचने की पाठशाला
है। इसमें कौन-कौन प्रवेश कर रहे है? महान् संकल्पशील,
समीक्षण ध्यान साधना की गहराई मे पैठने वाली साधक
आत्माऍ ही समीक्षण मे मन तत्पर होता है तभी ऐसा हो
सकता है और मन के समीक्षण से ही मन सधता है।

{762}

{763}

भीतरी चक्षु से संपूर्ण
लोक को देखा जा सकता
है, पर आज का व्यक्ति भीतर से
नही बाहरी दृष्टि से पुरुषार्थ
कर रहा है।

{764}

प्रभु ने पच
महाव्रतधारी सुसाधु
को सार्वभौम और विश्व का
बताया है चाहे वह कही का
भी क्यो ने हो ?

{765}

वीतरागानुयायी
साधक की प्रत्येक क्रिया
सहजिक ध्यान
योग के साथ होती है।

{766}

हम प्रभु महावीर के बहुत
करीब है। करीब ही नही हम
महावीर जैसे है। देह पिण्ड की दृष्टि
से महावीर का देह पिण्ड जुदा था और हमारा
जुदा है। पर गुणमय दिव्य आत्म स्वरूप की
दृष्टि से महावीर और हम
बहुत करीब है। एक समान है।

{767}

हमारा यह मनुष्य जीवन,
भोगविलास के लिए नही है। आमोद- प्रमोद
एव गुलछर्रे उडाने के लिए नही है। अपितु
नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा के साथ आध्यात्मिक
उच्च आदर्शो की ससिद्धि के लिए है।

{768}

आत्मोन्नति
की अनत संभावनाए इसी
मनुष्य जीवन मे
रही हुई है।

{769}

अपनी मन
कल्पित धारणा कहने वाले
व्यक्ति की अपूर्ण वाणी से
कभी भी पूर्ण शाति मिल
नही सकती।

{770}

मानव प्रदर्शन एव
सस्ते यश कीर्ति के भावो
से ऊपर उठक गहरी
आत्मसाधना मे जुड जाय
यही श्रेष्ठ होगा।

अन्तर मे बैठा वह न्यायाधीश इतना
विचक्षण है कि आपके हर कार्य की सम्यक्ता असम्यक्ता का
निर्णय देता है। यह दूसरी बात हे कि आप उसके निर्णय को न
सुन पायें, न समझ पाये। आप अगर निरन्तर अभ्यास के द्वारा
न्यायाधीश को सुनकर किसी भी कार्य में प्रवृत्ति करने लग गए
तो आप को कभी पश्चात्ताप नही करना पडेगा।

{772}

जिसको संस्कारित किया जाये याने कि संस्कार
दिये जॉय, वह ग्राहक उत्सुक होना चाहिये तथा संस्कार
देने वाला स्वयं भी संस्कृत होना चाहिये-तभी तो संस्कारो मे आदान-प्रदान
सुव्यवस्थित हो सकता है। यो क्रिया का क्रम कभी टूटता नही और जैसा भी
क्रिया का रूप होगा वैसा उसका प्रभाव अवश्य फैलेगा अर्थात् तदनुसार
संस्कारों की रचना अवश्य होगी ओर वैसे सस्कार लिये-दिये भी जायेगे।
अत. इस स्तर पर समस्या का बिन्दु यह पेदा होता है कि उन निर्मित
होने और ग्रहण किये जाने वाले सस्कारो का स्वरूप कैसा है ? इसी संदर्भ
में उन संस्कारो के 'सु' या 'कु' के स्वरूप पर विचार करना होगा तथा ऐसे
प्रयास सक्रिय बनाने होगे कि संस्कारो का 'कु' रूप यदि है तो मिटता जाये
और 'सु' रूप अधिक से अधिक प्रखर बनता जाये। यह भी विचारणीय
स्थिति होगी कि संस्कारो का प्रभाव छोडने वाले व्यक्ति की स्वयं की
नैतिकता कार्य-प्रणाली कैसी है ? ये सब बिन्दु मिलकर ही
संस्कारो के गुण-दोषों की परख करा सकेगे।

{773}

जैसे सूर्य की किरणो के आते ही अंधकार
छिन्न-भिन्नता को प्राप्त हो हट जाता है एवं
अंधकार परिपूर्ण गली मे भी सूर्य की किरणो से गंध भी उड जाती
है, वैसे ही समीक्षण दृष्टि की किरणें मन के अंधकार को विछिन्न
करती हुई इन्द्रियो के विषय रूपी गदंगी को भी शुष्क बना देती है
और साधना का प्रारम्भ मन और इन्द्रियों से सम्पन्न होने लगता है
और अन्त मे इस आध्यात्मिक क्षेत्र की दीर्घगामी यात्रा मे
आत्मा ही आत्मा का वाहन होती है।

{774}

{775}

भौतिकता से मनुष्य की
कभी तृप्ति नही होती है। आत्मा
को शान्त आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे विचरण
करने से ही मिलती है इसलिये उस क्षेत्र मे
सम्पादित प्रगति को
ही सच्ची प्रगति कहते है।

{776}

ध्यान साधना
चारित्र का प्राण
है, इसमे जो दत्तचित होता
है उसके भीतर के नयन
खुल जाते है।

{777}

अध्यापक
चाहे कैसा भी उपदेश दे
पर शिष्य उसे सही रूप मे
स्वीकारे तो उस उपदेश
की सार्थकता है।

{778}

मै खुले रूप से कहता हूँ
कि सिद्धान्तो का जो धरातल
नियत का लिया गया उस पर दृढतापूर्वक
चलना चाहिये। दोहरे व्यवहार से दुनिया को
धोखा देने की प्रवृत्ति नही रहनी चाहिये।

{779}

इस जीवन मे यदि
समीक्षण साधना का समुचित रूप
से विकास हो जाये तो वह साधना- शक्ति भी
नदी की ही तरह जीवन के दोनो तटो को हरा
भरा एवं शोभास्पद बनाती हुई वीतरागता के
समुद्र में अन्तर्निहित हो जाएगी।

{780}

सही सशोधन
करने वाला ही
योगी होता है, मात्र गुफा
मे बैठने वाला नही।

विचार की
तरंगे मन की
भूमिका पर उठ रही है, पर
उसे तरगित
करने वाली आत्मा
ही है।

{781}

नीति पर चलते हुए
उसको चारो ओर निराशा ही
निराशा दिखाई देती है। सुख के बजाय
पग-पग पर दुर्भाग्य सामने
खडा दिखाई देता है।

{782}

समीक्षण ध्यान की साधना अन्तर्दर्शन
की साधना हे। किन्तु इसका प्रतिफलन
उमयमुखी होता है। यह जीवन के अन्तर्बाह्य दोनो तटों का
स्पर्श कर आनन्द से भर देती है। नदी अपने दोनो तटो को
हरा भरा करती हुई चलती है। दोनों तटों की शोभा बढाती
हुई ही वह समुद्र की ओर प्रगतिशील बनती है।

{783}

{784}

आज जब ससार मे कुसंस्कारों का अधिक
बोलबाला है तथा विषमता की विष बेल चारों ओर
फैलती ही जा रही है, तब ऐसे समय में सुसस्कारो की महत्ता को समझना
और उसे व्यवहार में कार्यान्वित करने के आदर्श उपस्थित करना और भी
अधिक अनिवार्य है। वर्तमान विषमता मे एक कुसंस्कार इतना बडा बन गया
है, लगता है कि उसी का असर सारे विश्व पर छाया हुआ है। यह कुसंस्कार
है धन और सत्ता को अपने लिये हथियाने का कुसंस्कार। चाहे नीति से हो या
अनीति से, सही उपायो से हो या पापकारी उपायो से अधिकतर व्यक्ति धन
और धन से सत्ता प्राप्त करने की होड़ में लगे हुए हैं। यह होड इतनी फैलती
जा रही है जिससे लगता है कि व्यक्ति ही नही, सामूहिक स्तर पर वर्ग,
समाज या राष्ट्र तक इस होड में अविचारपूर्वक लगे हुए हैं। इस का
कुपरिणाम यह है कि आर्थिक विषमता की खाई तो भयंकर रूप से गहरी और
चौडी हो ही रही है, किन्तु इससे भी अधिक जो बुरा हो रहा
है वह है कुसंस्कारों का फैलाव, विकारों की जकड और
नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन का सर्वनाश।

तब उसके जीवन में रिक्तता
प्रवेश करने लगती है। 'जो पृष्ठ–भूमि मे
आध्यात्मिक अनुभव होता है, उससे उसका जीवन रिक्त बन
जाता है। जीवन की उस रिक्तता मे वह भी पागलों की दौड
में शामिल हो जाता है और अनीति की कालिमा से अपने
जीवन को रँगता हुआ आत्म–विस्मृत बन जाता है।

{785}

{786}

जब मनुष्य सन्तों के
समीप पहुँचता है, प्रभु की
प्रार्थना तथा भगवान की वाणी का
श्रवण करता है- उस वाणी मे उसका रम
जमता है तो वह ज्ञान चर्चा भी करता है तथा
अन्तर्दर्शन की
तरफ भी प्रेरित होता है।

{787}

श्रवण तब
तक उपयोगी नही
होता है, जब तक वह
श्रवण विचार क्षेत्र में
पहुँचकर निर्णायक
स्थिति मे परिणत
न बने।

{788}

समस्त
दु ख की जड
ममत्व भाव
मे है।

{789}

आध्यात्मिक क्षेत्र मे जिनकी
गति है, वे आत्म-सकल्प के आधार
पर चलते है, जिसके साथ आत्म-विश्वास और
आत्म पुरुषार्थ जुडा हुआ होता है। योग का
सहयोग तो उनको मिलता है लेकिन
आध्यात्मिक प्रगति साधने वाले
योग पर ही आधारित नही रहते।

{790}

आत्मा अपने भावो को
प्रमुख बनाकर मन के अश्व पर
नियत्रण कर ले और आरूढ हो जावे
तो प्रगति की व्याख्या का लेखा-जोखा कवेल
आत्मा की उन्नति से ही निकाला जायेगा और
ऐसा लेखा-जोखा ही प्रगति का यथार्थ लेखा-
जोखा होगा, आत्म-समीक्षण होगा।

{791}

जिसका
ममत्व भाव जितना सगीन
होगा उसका दु ख भी
उतना ही
सगीन होगा।

{792}

ममत्व भाव
की जड जब तक
मानव के अतरग जीवन मे
फैली हुई है तब तक
दु ख के अंकुर
प्रस्फुटित होते ही रहेगे।

{793}

किसी को जीवन यात्रा की
प्रगति का लेखा-जोखा है तथा प्रगति
की सही-सही व्याख्या जाननी है तो उसे
समीक्षित मन के साथ अपने अन्त.करण की
निर्मलता पर दृष्टिपात करना होगा।
जितनी अधिक निर्मलता होगी, उतनी
ही अधिक प्रगति कहलायेगी।

आध्यात्मिक क्षेत्र ही जीवन मे
महान् उपलब्धियों का साधन होता है,
इसलिये भौतिकता की असलियत को जान
लेने वालो की निगाहे इस आध्यात्मिक क्षेत्र
की ओर ही मुडती है। लेकिन जिनकी निगाहें भौतिकता की
ओर लगी हुई हों, वे आसानी से आध्यात्मिकता के महत्त्व
को केसे आत्मासात् कर सकते हें ?

{794}

{795}

भगवान् महावीर ने जीवन के अपूर्व रहस्यो एवं
सत्यो का उद्घाटन किया हे। स्वानुभाव से उन्होने आत्म प्रेरणा का मर्म
समझा और संसार के समस्त प्राणियो को आत्म विकास का मार्ग
वताया। उनका कथन है कि-

जे अज्झत्थं जाणई, से बहिया जाणई।
जे बहिया जाणई, से अज्झत्थं जाणई।
एवं तुलमन्नेसि। १-१-४ आचारांग सूत्र

अर्थात जो अपने अन्दर अपने सुख दु.ख की
अनुभूति को जानता है, वह बाहर दूसरों के सुख-दु.ख
की अनुभूति को भी जानता है। जो बाहर को जानता है वह अन्दर को
भी जानता है। इस प्रकार दोनो को -स्व
तथा पर को एक तुला पर रखना चाहिये।

आज के प्रगतिशील तर्क देने वालों को मै
पूछता हूँ कि भगवान् महावीर ने जामालि से यह
क्यो नही कहा कि तुम्हारे और मेरे कहने मे जो फर्क है, मै कुछ
पीछे सरकूं तथा तुम कुछ आगे आओ ताकि अपने समझौता
करले ? ऐसा नही करने पर भगवान् को संकुचित विचारों वाले या
प्रतिगामी कह सकेगे क्या? यह सोचने की बात है कि वास्तव मे
प्रगतिशीलता क्या होती है और प्रतिगामिता क्या होती है?

{796}

{797}

मस्तिष्क के तनाव को मिटाने के लिये आम आदमी विविध प्रकार के उपाय करता है, लेकिन उन से तनावो का मिटना तो दूर रहा, वे और अधिक बढाते जा रहे है, मानसिक तनावो को मिटाने की एक अचूक साधना है-समता साधना।

{798}

जीवन के महत्व को समझ कर आध्यात्मिक जीवन की उत्क्रांति मे प्रत्येक मानव को सन्नद्ध हो जाना चाहिए।

{799}

सद्-विनियम का सूत्र यदि मानव अपने जीवन मे उतार लें तो उसका जीवन भव्य एव महान् बन सकता है।

{800}

विश्व गत सभी समस्याओ का एकमात्र समाधान हे-समता। अगर सारा मानव समाज समता के धरातल पर सोचने, समझने एव व्यवहार करने लग जाये तो किसी भी समस्या का हल कठिन नही है।

{801}

मस्तिष्क की पवित्रता शुद्धि शरीर के आधार पर टिकी हुई है। शरीर के भीतर वात,पित्त, कफ का वैषम्य है तो उससे रोगो का प्रादुर्भाव सम्भव है और यदि समता है तो शरीर स्वस्थ एव मस्तिष्क भी स्वस्थ रहता है। इसलिए हर क्षेत्र मे समता की नितात आवश्यकता है।

{802}

श्रोतेन्द्रिया का उपयोग वीतराग वाणी श्रवण करने की ओर हो।

{803}

चक्षुइन्द्रिय का उपयोग पवित्र आत्माओ के दर्शन की ओर हो।

{804}

स्वार्थ का कीचड मानव ने अपने आत्म-वसन पर लगा रखा है। उस कीचड को साफ करने के लिये उसे समता सरोवर के पास पहुँचना चाहिए। समता सरोवर मे समता का निर्मल जल आत्म-वसन को स्वच्छ, सुन्दर बना डालेगा।

जो व्यक्ति अनीति पर आधारित धूर्तता का जीवन जीते हैं, वे सामान्य रूप से शान्ति-प्रिय समाज में विविध प्रकार से समस्याएँ खडी कर देते हे। धनार्जन और यशोऽर्जन के क्षेत्रो मे ऐसी फर्जी कार्यवाहियो से सामान्य जन के लिये कई तरह की समस्याएँ पैदा हो जाती हैं, वे ही इह लोक की लोकिक समस्याएँ हैं।

{805}

समत्व के महत्व को वही ऑक सकता है। जो स्वयं की आत्मा का अवलोकन करता है, दूसरों के आत्म-भावों की अनुभूति लेता है तथा अपने हितो को दूसरो के हितो से जोड देता है। वस्तुतः जो ऐसा करता है, वह धीरे-धीरे अपने हितों को भी भूल जाता है तथा स्वहित को परहित मे समाविष्ट कर लेता है। अपने आचरण को इस रूप मे वही ढाल सकता है जो सुसंस्कार, सद्व्यवहार एवं सहकार की त्रिवेणी प्रवाहित कर सकता हो ऐसी त्रिवेणी जो उसके विकारो को भी परिमार्जित कर दे तथा जो भी प्राणी उसके शीतल जल का स्पर्श करे, उसके जीवन को भी रूपान्तरित कर दे।

{806}

एक व्यक्ति धर्म करनी का मूल्यांकन करता है, लेकिन उसमे मूल्य की कामना नही करता है। धर्म करनी का मूल्याकंन करने वाला जब वन्दन करने की स्थिति मे आता है तो सोचता है कि मेरी धर्म करनी का फल हो तो मुझे अमुक वैभव मिले, सन्तान मिले या अन्य प्राप्ति हो। ऐसी फल कामना उस धर्म करनी को बेचने के समान होती है। ऐसी फल-कामना बंधनकारी होती है।

{807}

{808}

जिसका मानसिक
बल मजबूत नही है वह
कभी तपस्चरण नही कर सकता।
मानसिक शक्ति के आधार पर
ही तप का आराधक
बन सकता है।

{909}

घ्राणेन्द्रिय का
उपयोग राग-द्वेष
को बढाने वाले न होकर
गंध के प्रति समत्व भाव को
बढाने की
ओर हो।

{810}

जिह्वन्द्रिय का
उपयोग नि.स्वार्थ भाव से
गुणीजनों के गुणो का
वर्णन करने की ओर हो।

{811}

समता के छोटे-छोटे प्रयोग
जब मानव अपने जीवन के धरातल
पर करने लग जाता है, तो एक दिन ऐसा भी
आता है कि वह सम्पूर्ण समता को आत्मसात्
कर लेता है। *"बूद-बूद से सागर भरता है"*
वाली कहावत उसके लिये
चरितार्थ हो जाती है।

{812}

सच्चे शारीरिक चिकित्सक
तो आज के जमाने में महगे एव
कठिनाई से प्राप्त होते है। पर समता चिकित्सा
करने वाले चिकित्सकों को प्राप्त करके जागृत
होकर इस प्रणाली को अपना कर
कर्म-रोग से मुक्त
होने का प्रयास कीजिए।

{813}

स्पर्शेन्द्रिय का
उपयोग संयम मे पराक्रम
करने तथा दु खी, दर्दी,
असहाय
की सेवा करने की
ओर हो।

{814}

अनादि अनन्त
काल से सचित
कर्मो को क्षण भर मे
भस्मसात् करने का एटम
बम्ब है -
"तपश्चरण"।

{815}

जिसके पास कुछ नही है-
वह आवश्यकता के मारे कुछ पाना चाहता है,
लेकिन जिसके पास काफी कुछ है, वह भी और
अधिक पा लेने के लिये और पाते रहने के
लिये पागल बना हुआ है।

जो व्यक्ति अनीति पर आधारित
धूर्तता का जीवन जीते हैं, वे सामान्य रूप से शान्ति-प्रिय समाज
मे विविध प्रकार से समस्याएँ खडी कर देते है। धनार्जन और
यशोऽर्जन के क्षेत्रो में ऐसी फर्जी कार्यवाहियो से सामान्य जन के
लिये कई तरह की समस्याएँ पैदा हो जाती है, वे ही इह
लोक की लौकिक समस्याएँ है।

{805}

समत्व के महत्व को वही ऑक
सकता है। जो स्वयं की आत्मा का अवलोकन
करता है, दूसरो के आत्म-भावो की अनुभूति लेता
है तथा अपने हितो को दूसरो के हितो से जोड देता है। वस्तुतः जो ऐसा
करता है, वह धीरे-धीरे अपने हितो को भी भूल जाता है तथा स्वहित को
परहित मे समाविष्ट कर लेता है। अपने आचरण को इस रूप में वही
ढाल सकता है जो सुसंस्कार, सद्व्यवहार एवं सहकार की त्रिवेणी प्रवाहित
कर सकता हो ऐसी त्रिवेणी जो उसके विकारो को भी परिमार्जित कर दे
तथा जो भी प्राणी उसके शीतल जल का स्पर्श करे, उसके
जीवन को भी रूपान्तरित कर दे।

{806}

एक व्यक्ति धर्म करनी का मूल्यांकन
करता है, लेकिन उसमे मूल्य की कामना
नही करता है। धर्म करनी का मूल्याकंन करने वाला जब वन्दन
करने की स्थिति मे आता है तो सोचता है कि मेरी धर्म करनी का
फल हो तो मुझे अमुक वैभव मिले, सन्तान मिले या अन्य प्राप्ति
हो। ऐसी फल कामना उस धर्म करनी को बेचने के समान होती
है। ऐसी फल-कामना बंधनकारी होती है।

{807}

{808}

जिसका मानसिक
बल मजबूत नही है वह
कभी तपस्चरण नही कर सकता।
मानसिक शक्ति के आधार पर
ही तप का आराधक
बन सकता है।

{909}

घ्राणेन्द्रिय का
उपयोग राग-द्वेष
को बढाने वाले न होकर
गध के प्रति समत्व भाव को
बढाने की
ओर हो।

{810}

जिह्वन्द्रिय का
उपयोग नि·स्वार्थ भाव से
गुणीजनो के गुणो का
वर्णन करने की ओर हो।

{811}

समता के छोटे-छोटे प्रयोग
जब मानव अपने जीवन के धरातल
पर करने लग जाता है, तो एक दिन ऐसा भी
आता है कि वह सम्पूर्ण समता को आत्मसात्
कर लेता है। *"बूंद-बूंद से सागर भरता है"*
वाली कहावत उसके लिये
चरितार्थ हो जाती है।

{812}

सच्चे शारीरिक चिकित्सक
तो आज के जमाने में महगे एवं
कठिनाई से प्राप्त होते है। पर समता चिकित्सा
करने वाले चिकित्सको को प्राप्त करके जागृत
होकर इस प्रणाली को अपना कर
कर्म-रोग से मुक्त
होने का प्रयास कीजिए।

{813}

स्पशेन्द्रिय का
उपयोग सयम में पराक्रम
करने तथा दु खी, दर्दी,
असहाय
की सेवा करने की
ओर हो।

{814}

अनादि अनन्त
काल से संचित
कर्मो को क्षण भर मे
भस्मसात् करने का एटम
बम्ब है -
"तपश्चरण"।

{815}

जिसके पास कुछ नही है-
वह आवश्यकता के मारे कुछ पाना चाहता है,
लेकिन जिसके पास काफी कुछ है, वह भी और
अधिक पा लेने के लिये और पाते रहने के
लिये पागल बना हुआ है।

परमात्मा की प्रार्थना का जो प्रयोजन
बताया गया है वह यही हैं कि इसमे सुख
और सम्पत्ति मिलेगी, लेकिन वह लौकिक नही, अलौकिक होगी ,
जिसकी सहायता से भवसागर मे पुल बन जायेगा यानि कि
परमात्म-स्वरूप की दिशा मे प्रयण हो जायेगा एव शान्ति का
अमृत पीने को मिलेगा। प्रार्थना का प्रयोजन
कभी लौकिक
वांछा नही होना चाहिये।

{816}

चारित्र्य स्व को पर से जोडता है एव
पारस्परिक सम्बन्धो में समरसता लाता है- उसी कारण
जो अपने सदाचार से- अपनी नैतिकता से सामाजिक सुप्रभावो की स्थापना
करता है, उसके चारित्र्य या आचरण की सामाजिक सराहना होती है। ऐसे
व्यक्तित्व को चारित्र्यशील मान कर उसका समादर किया जाता है। दूसरी
ओर अन्य प्रकार से कोई व्यक्ति कितना ही शक्तिशाली हो किन्तु यदि
उसका चारित्र्य बिगडा हुआ है तो उसकी भर्त्सना ही होगी चाहे वह भय या
आतक के कारण भीतर-ही-भीतर हो । चारित्र्यहीनता को इस देश की
सभ्यता मे सम्मान या सदिच्छा का कोई स्थान नही है। तभी तो कहा गया
है कि यदि आपने धन गवा दिया है तो समझिये कि कुछ नही गंवाया,
यदि स्वास्थ्य गंवा दिया है तो कुछ गंवाया है लेकिन यदि चारित्र्य गंवा
दिया है तो समझिये कि सब कुछ गंवा दिया है।

{817}

जो परमात्मा को नमस्कार किया
जाता है- वह व्यर्थ मे जाने वाला नही है।
यह नमस्कार सुख-सम्पत्ति का हेतु है। सुख-सम्पत्ति का हेतु क्यों
है- इसे कुछ गहराई से समझना होगा। जब भी आप परमात्मा
को, गुणी जनो को, सन्त-पुरुषो आदि को नमस्कार करने
की स्थिति मे होगे।

{818}

{819}

साधु एव श्रावक की मजिल एक है, पर चलने के रास्ते भिन्न-भिन्न है। एक महाव्रतो को सडक पर चल रहा है तो दूसरा अणुव्रतो की। एक हवाई जहाज मे जा रहा है, तो दूसरा बैल-गाडी मे। पर पहुचना दोनो को एक जगह है। कौन कब पहुचता है, यह अपने-अपने सद् पुरुषार्थ पर निर्भर है।

{820}

अभ्यास से सब कुछ साध्य हो सकता है।

{821}

अगर अन्तर चेतना का विकास हो जाय तो अन्य सभी तरह का विकास होते कोई देर न लगेगी।

{822}

सावत्सरिक एकता के लिए आवश्यकता है, अपनी-अपनी पकड छोडने की, जब तक अपनी-अपनी पकड रहेगी, एकता आ नही सकती।

{823}

संवत्सरी पर्व का एकमात्र दिव्य संदेश है- उपशम ! स्वय शात बनिये और दूसरो को भी शाति दीजिये। मैत्री भाव को स्थापित करिये।

{824}

दृश्य जगत् मे दिखने वाले सभी पदार्थ भौतिक है। और निर्माणकर्ता अभौतिक आत्मा ही है।

{825}

जो दूसरो को ठगता है, वह स्वय पहले ठगा जाता है।

{826}

जो तत्वज्ञानी नही है, वे अपने आचार और व्यवहार को अन्य स्थल पर समर्पित करके चलते है, जहां समर्पित करना चाहिए वहा नही करते है।

मन की वृत्तियॉ निर्मल होती
है तो बुद्धि में भी सदाशयता का प्रवेश
होता है एवं बुद्धि व मन की सहायता से जीवन
की समस्त प्रवृत्तियॉ स्व तथा पर के कल्याण में नियोजित हो
जाती हैं। इस रूप मे अन्तराय
कर्म का क्षयोपशम होता है तथा
अन्य कर्म भी टूटते जाते हैं।

{827}

अन्धानुकरण आज सामाजिक
दुर्व्यवस्था तथा कलंक का कारण बनता
जा रहा है। पश्चिमी सभ्यता की बुराइयों को तो
अपने जीवन मे-रहन सहन के स्थान दे दिया, किन्तु न
तो पश्चिमी सभ्यता की अच्छाइयो को अपना सके तथा न अपनी सभ्यता
की श्रेष्ठताओ का ही निर्वाह कर पाये। नतीजा यह हुआ है कि आज की
जीवन प्रणाली अधिकांशत गुणहीन और दिशाहीन हो गई है। ऐसी ही
दुर्दशा हुई है व्यक्ति के चारित्र्य की कि जो बिगडा है तो इस कदर कि
मानदण्ड ही बदले जाने लगे है। दुष्चरित्र्य की काली छाया मे
ही एक गंभीर महापाप पूर्ण बुराई जो फैली है, वह
है गर्भपात की बुराई, जो चारित्र्य सम्बन्धी
घातक दोषों की अन्तिम परिणति के
रूप मे समाने आती है।

{828}

हाथ-चक्की चलने से जिस रूप
मे घर की सुन्दर सेवा बन पडती है,
उसी रूप में मन की चक्की में सद्‌विचारो और सद्‌गुणो के
दाने पडते रहे तो अन्तर्दर्शन का अभ्यास पक्का हो जाता है
और जीवन को सद्‌गुणी
बनाने की चेष्टा सफल बनती है।

{829}

{830}

मन की चक्की चलती है।
अगर उसको खाली चलाते हो तो
मन की शक्ति का अपव्यय होता है- इसीलिये
उसमे सन्तो के उपदेश और सद्‌गुणो
के दाने डालते रहना चाहिये ताकि उनका मथन
होता रहे। मन की चक्की मे जब उनका सार
निकल जाता है तो वे जीवन मे रम जाते है।

{831}

ईर्ष्या,
राग-द्वेष
आदि परिणतिया
ही स्वस्थ मानव को
अस्वस्थ बना
देती है।

{832}

बधन से परे
हटने का एक मात्र उपाय
है -त्याग प्रत्याख्यान।

{833}

जितने समय तक यहा
सुने उतने समय तक स्वय के
विचारो को गौण करके जो बाते कही जाती है
उनको पूरे ध्यान से सुने तथा अपने ध्यान से
उन बातो का प्रयोगात्मक निष्कर्ष निकाले।
कठिनाई आवे तो प्रश्न पूछकर हल करे।

{834}

जिस किसी आत्मा ने
सम्यग्-ज्ञान के प्रकाश मे अपने
मूल स्वरूप को पहिचाना है, अपनी शक्तियो
का समीक्षण किया है तथा उन्हे प्रकट करने
का सकल्प बनाया है एव बाहर और भीतर की पूर्ण
एकरूपता के साथ उस दिशा मे
निरन्तर चला है तो वह अवश्य
सफल भी हुआ है।

{835}

वास्तविक विद्वान
वही है जो
आत्मिक गुणो की
ज्योति को जलाते है।

{836}

राग-द्वेष
की वृत्तियो का
शमन कर आत्मायि हो
जाना ही सच्ची
समाधि है।

{837}

लक्ष्य जब सामने रहता है तो
उसके अनुरूप वर्तमान जीवन को ढालने
के प्रति एकाग्रता का निर्माण होता हे। यह जो
एकाग्रता है, वही सम्पूर्ण योगो की एक रूपता
पर बल देती है ओर यह एक रूपता जितनी
घनिष्ठ बनती हे, जीवन की गति लक्ष्य के
प्रति उतनी ही केन्द्रित बन जाती है।

जब सम्पूर्ण एकाग्रता से,
समीक्षण दृष्टि से कोई लक्ष्य की तरफ
देखता है तो उसके मन, वचन, काया के
सम्पूर्ण योग-व्यापार की एकरूपता बन जाती
है। ऐसी बाहर ओर भीतर की सम्पूर्ण
एक रूपता के आधार पर ही सफल
लक्ष्य-वेध हो सकता है।

{838}

सौन्दर्य के संदर्भ मे आत्मा एवं
शरीर के साथ प्राथमिक परिस्थितयॉ प्रायः
समान होती है। जैसे शरीर का सौन्दर्य जो जन्म से
मिलता है वह कर्मानुसार मिलता है, उसी प्रकार पूर्वकृत कर्मानुसार ही
आत्मिक सौन्दर्य अर्थात् आत्मीय सद्गुणों की प्राप्ति होती है। इसी कारण
कई व्यक्ति जन्म से शारीरिक सौन्दर्य से युक्त होते है और कई सामान्य
वर्ण व नाक नक्श के तो कई काले व कुरूप भी होते है। तद्नुसार कई
व्यक्तियो का स्वभाव जन्म से ही मधुर, करूणामय,
क्षमाशील आदि होता है तो कई समान्य व अप्राभाविक
स्वभाव वाले होते है जबकि कइयो का स्वभाव
क्रोधी, क्लेशी एवं दु.खदायक होता है।

{839}

अपने योग को साध लेने
वाले श्रेष्ठ पुरुष विध्नो से संघर्ष करके
भी अपने अभीष्ट स्थान तक पहुँचने का सफल प्रयत्न
करते है। विध्नो की ऑधियो और बाधाओ के तूफानों से वे
कभी भी अपने श्रेय मार्ग का परित्याग नही करते है,
बल्कि दृढता पूर्वक
अपने मार्ग पर चलते हैं।

{840}

{841}

प्रमत्त अवस्था मे अनुशासन आत्मा का नही रहता, बल्कि इन्द्रियॉ आत्मा को अपने शासन मे ले लेती है। शरीर का प्रत्येक भाग या उसकी प्रत्येक इन्द्रिय आत्म-प्रदेशो से सयुक्त होती है, लेकिन आत्म-शक्ति के ऊपर ये इन्द्रियॉ तथा इनकी लोलुपता हावी हो जाती है।

{842}

अनुभूति का ज्ञान अनुभूति से मिलता है आलस्य एव प्रमाद को छोड अवधानता से काम करना चाहिए।

{843}

शरीर का ममत्व छोडना कोई सहज नही।

{844}

जो व्यक्ति अपनी बुद्धि का भी कुशल प्रयोग करते है तथा अनुभव के क्षेत्र मे उतरते हैं, वे आत्म-शक्ति की वास्तविक अनुभूति प्राप्त करते है। उन्हे तथ्य रूप अनुभूति के समीक्षण से सत्य का साक्षात्कार होता है।

{845}

एकान्तवादिता हठ के आधार पर चलती है तथा हठ से मिथ्या मान्यताओ का ही पोषण होता है। इसलिये किसी भी, और खास तौर से वैचारिक अथवा दार्शनिक, समस्या का समाधान एकान्तवाद से नही, समन्वय से प्राप्त होता है।

{846}

साधना होती है, आत्म समाधि के लिए, लब्धियो की प्राप्ति के लिए नही।

{847}

जहा विद्वता सिर्फ कलात्मक हो, वह वास्तविक विद्वता नही है।

{848}

जिस पुरुष का कहना है कि भीतर ही सब कुछ है और बाहर से कुछ भी ग्रहण नही किया जा सकता हे, वह पुरुष बाहर से अपने व्यवहार में कोई परिवर्तन नही लाला है। वह अपने बाहर के व्यवहार को यथावत् रखता है।

भिन्न-भिन्न दृश्टिकोणो के बीच में रहे
हुए सत्याशो को परखना-पहिचानना तथा उनको
समन्वय के सूत्र मे पिरोकर जीवन के विचार व
व्यवहार मे उतारना- यह सद्विवेकी पुरुष ही कर सकता है। इसमे
समन्वय का स्वरूप समझोतावादी नही होना चाहिये, क्योकि
समझौते का अर्थ पीछे पग धरना भी होता है। यह समन्वय पूर्णतः
सैद्धान्तिक तथा सत्यानुगामी होना चाहिये। ऐसा समन्वय ही
सच्ची अनुभूति का वाहक होता हे।

{849}

{850}

भारतीय सस्कृति मे जीवन के चार
लक्ष्य निर्धारित किये गये है- धर्म, अर्थ, काम
और मोक्ष। सांसारिकता की दृष्टि से अर्थ और काम
भी लक्ष्य कहे गये है, क्योकि संसार के संचालन से अर्थ (धन) का भी
उपयोग है तो काम (मिथुन) का भी उपयोग हे। किन्तु संस्कारित
जीवन धनियों ने इन दोनो के पहिले धर्म को रखा हे। अर्थ धर्म से
उपार्जित किया जाय ओर धर्म से ही उसका उपभोग हो। इसी प्रकार
काम का उद्देश्य वश या संसार को चलाने मात्र हो, वह भोगो की
आसक्ति मे न बदल जाय। काम भी
धर्म की छायामे चले। इसी के अनुरूप मोक्ष
के लक्ष्य की पूर्ति सहज मानी गई है।

अनुभव यह बताता है कि
आत्मा सम्पूर्ण शरीर मे समस्त अवयवो मे
यथास्थान व्याप्त होती है। अँगुली के ऊपरी हिस्से
मे भी आत्म-प्रदेश रहे हुए है, इसीलिये अँगुली अगर आग से छू
जायेगी तो उसकी वेदना मात्र अँगुली को नही, सारे शरीर को
होगी। यह नही होता कि वेदना अँगुली पर हो रही हो और
मस्तिष्क मे शान्ति बनी रहें।

{851}

{852}

आकाश का जैसे
कही ओर छोर नही वैसे
ही वीतराग देव के ज्ञान का भी
ओर छोर नही, वह सीमित
नही, सीमातीत है।

{853}

आनन्नद रस
प्रवाहिनी वीतराग वाणी
का महत्व यदि जानना है
तो श्रुति को अनुभूति का
रूप दे।

{854}

यदि मृत्यु
से बचना है तो सबसे
पहले अन्य को
मारना छोडो।

{855}

जो अठारह पापो से
अपने दिल को साफ कर लेता
है, उसी का जीवन ऊंचा उठता है,
और वही वीतराग देव का
सच्चा अनुयायी है।

{856}

जड की परिवर्तनशील
वृति के साथ जीवन के सस्कार
भी परिवर्तित होते रहे,
तो स्वभाव की अभिव्यक्ति
कभी नही हो सकती।

{857}

मोह, ममत्व
अहं के किले को
तोडने का उपाय है-तप।
उसके माध्यम से भीतर मे
प्रवेश कीजिए।

{858}

हिसक कार्यो
से जितनी अधिक निवृति
होगी, उतनी ही अधिक
जीवन मे शाति आएगी।

{859}

आप भले मुझे मारवाडी
साधु समझे, राजस्थानी समझे
या अमुक सम्प्रदाय विशेष से आबद्ध समझे पर
मै तो आप सबको अपनी आत्मा के तुल्य
समझता हूँ।

प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव
यह है' कि शरीर के जितने अवयव
व अंगोपांग है, उन सबमे आत्म-प्रदेशो का निवास
होता है। यह बात और है कि आत्मा अपना संचालन
एक केन्द्र से करती है या अलग-अलग स्थानो
से करती है। लेकिन संचालन की सूचना
सारे शरीर को मिलती है।

{860}

सौन्दर्य और सुरूप किसे कहे- इस प्रश्न का
उत्तर इस सत्य मे खोजे कि सौन्दर्य नाशवान नही,
शाश्वत होता है। जो नष्ट हो जाये, वह भला सौन्दर्य ही क्या? और यह आप
भली-भॉति जानते हैं कि शरीर की सुन्दरता एक न एक दिन बिगडती है और
नष्ट हो जाती है, फिर मात्र शरीर की सुन्दरता को 'सौन्दर्य' के नाम से
अलंकृत ही कैसे करे? वही सौन्दर्य शाश्वत होता है जो आत्मा का होता
है-आत्मा के उत्कृष्ट भावो का होता है। वैसा सौन्दर्य तो क्या, वैसे सौन्दर्य का
प्रभाव भी अमिट होता है। आपके जीवन मे ऐसी एकाध धटना अवश्य घटी
होगी जिसमे आपका ऐसे किसी विशाल हृदय पुरुष से मधुर सम्पर्क हुआ हो
और उसके आत्मिक सौन्दर्य की याद से आज भी आपका हृदय अभिभूत हो
जाता है। किसी न किसी रूप मे सभी के जीवन मे शाश्वत सौन्दर्य की
अनुभूति के क्षण आते है किन्तु यह दूसरी बात है कि कौन उन क्षणो को सॅजो
कर स्वयं भी आत्मिक सौन्दर्य को प्राप्त करने की साधना मे जुट जाता है
और कोई उनके महत्व को भुला कर फिर बाहरी
सुन्दरता के भ्रमजाल मे फॅस जाता है।

{861}

अनुभूति और तर्क मे फर्क होता है ।
तर्क सही भी हो सकता है और गलत भी।
तर्क से पीछे भी हटा जा सकता है और आगे भी बढा जा
सकता है। लेकिन अनुभूति सच्चे अनुभव के साथ भीतर की
शक्ति को लिये हुए होती
है, इसलिये गलत नही होती।

{862}

{863}

विचारो मे शुद्धता होगी तो
व्यवहार कभी भी अपवित्र नही होगा
यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। इसका
कारण है कि अन्दर का प्रवाह ही बाहर प्रकट
होता है। अन्दर कुछ और हो और बाहर कुछ
और दिखाई दे-
ऐसी वस्तुस्थिति नही होती है।

{864}

विश्व की
समस्त आत्माओ
मे अनंत शक्ति छुपी हुई
है, आवश्यकता
है उसे अनावृत
करने की।

{865}

जहां आत्मा
जागृत है, वहा
अन्य बल चल
नही सकता।

{866}

शरीर को चलाने मात्र के
लिए या परिवार के लिये जितना
चाहिए उतना ही अर्जित करे और बाहर को
भीतर से जोड कर रखे तो भीतर के श्रेष्ठ
लक्ष्य की तरफ उस आत्मा
की गति हो सकती हे।

{867}

पडित वही है जो एक-एक
क्षण को जानता है याने कि एक
क्षण को भी महत्वपूर्ण मानता है और उसको
आत्म-कल्याण के पवित्र कार्य मे नियोजित
करता है। जीवन और आत्म
समीक्षण मे लगाता है।
वह वीतराग देव की उद्घोषणा है।

{868}

अन्तर की
सफाई किये
बिना बाहरी सफाई
निरर्थक होगी।

{870}

वर्तमान
समय मानव जीवन
के लिए स्वर्णिम अवसर
है।

{871}

आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रगति
करने के लिये तो इस बुद्धि का
प्रयोग आन्तरिकता से ओतप्रोत होना चाहिये।
जहॉ सिर्फ मस्तिष्क की कसरत होती हे, वहॉ
जीवन की आन्तरिक अनुभूति का अभाव ही
रहता है।

नल छोटा होता है, लेकिन वह टैक से जुड़ा हुआ होता है औश्र उससे टैक का ही पानी मिलता है। नल में आने पर भी वह पानी शुद्ध ही रहेगा, क्योंकि टैक और नल के पानी में भिन्नता नही रहती है। जैसा टैंक और नल का सम्बन्ध है, वैसा ही आत्मा एवं शरीर का सम्बन्ध है। इस शरीर के सभी अवयवो में आत्मा व्याप्त है। यह नही है कि वह किसी एक अवयव मे ही रही हुई हो। {872}

सदाचरण एवं सच्चारित्र्य की शील रक्षा भी करता है तो उनकी उत्कृष्टता को प्रेरित भी करता है। शील चारित्र्यशील व्यक्तिव्य का प्राण होता है। वस्तुत शील न तो कोई विशिष्ट साहै और न कोई विशिष्ट उपलब्धि। जीवन की सभी वृत्ति–प्रवृत्तियो तथा गतिविधियों में जो शुभता की रक्षक वृत्ति है, वही शील वृत्ति है। शील की साधना अहर्निश की साधना है–मन, वचन एवं काया के प्रत्येक योग व्यापार की साधना है। शील की साधना प्रतिफल चलती है और प्रतिफल के आचार विचार में उसकी झलक देखने को मिल सकती है। शील की उपलब्धि भी कोई पृथक उपलब्धि नही होती है। वह जब स्वभाव में ढल जाता है तो मन, वाणी एवं कर्म के प्रत्येक अंश में वह समा जाता है। इस दृष्टि से शल की साधना दैनदिन की या कि सम्पूर्ण जीवन व्यवहार की साधना है जो श्रेष्ठतम मर्यादाओं में प्रतिफलित होती है। {873}

भीतर और बाहर का सम्बन्ध ऐसा होता है कि वह अँधेरी रात मे भी शरीर की सावधानी रख कर चलता है और किसी तरह की दुर्घटना नही घटती है। यह विवेक की जो शक्ति होती है, वह समीक्षण की शक्ति होती है और भीतर जो कुछ होता है, वही बाहर के व्यवहार में प्रकट होता है। यह आत्मा यदि भीतर पवित्र है तो वही पवित्रता बाहर प्रकट होगी, जैसे कि टैक का ही पानी नल के जरि से बाहर आता है {874}

{875}

जन्म के समय मे जो
स्वाभाविक भाव थे, वे जन्मजात
भाव थे। उनमे निश्छलता थी। लेकिन बच्चा
ज्यो-ज्यो समझ पकडता जाता है तो अपने चारो
ओर के वातावरण से, शिक्षण से और आचरण से
नये-नये भावों को ग्रहण करता रहता है।
ये अर्जित भाव कहलाते है।

{876}

आत्मा मे
जब समर्पणा होती है तो
परमात्मा का शुद्ध स्वरूप
स्वयं मे दिखाई
देने लगता है।

{877}

ध्यान, योगा
साधना यह आत्मा
के नवनीत को पाने
की साधना है। फूलो के
मकरन्द की
साधना है।

{878}

कषाये घटेगी तभी क्रियाएँ
आध्यात्मिक स्वरूप ग्रहण कर
सकेगी और उन आध्यात्मिक क्रियाओ
के द्वारा ही आत्मानुभूति का सहज
अवसर उपस्थिति हो सकेगा।

{879}

बाहरी दण्ड की
यवस्था भी इसी कारण होती है
कि व्यक्ति स्वय के दण्ड को सही
विधि से स्वय नही ले पाता है। इसलिये
व्यवस्था की दृष्टि से उसको
दण्ड दिया जाता है।

{880}

परमात्म रूप
की अभिव्यक्ति ही
इस मनुष्य जीवन की
अंतिम साधना है।

{881}

जहा मौलिक
मर्यादा का अनुपालन
नही होता है,
वहां सयमी जीवन टिक
नही सकता।

{882}

आप सोचेग कि दड तो
सरकार के नियन्त्रण मे है,
न्यायाधीश निर्णय सुनाता है, अपराधी को दण्ड
भुगताया जाता है। यह दण्ड स्थूल दृष्टि का
दण्ड होता है-बाह्य व्यवस्था का दण्ड है।

जिन भावो की पुनः पुन· आवृत्ति मन
मे होती है, उनकी भी वह ठीक से समीक्षण
नही करता है। वह यही नही देखता या देखना नही जानता कि
कौन् से भाव असली और निजत्व की जानकारी कराने वाले हैं
तथा कौन से भाव नकली होकर स्वय को भी छलने वाले हैं?
यह देखना और जानना तथा आत्म-भावो का समीक्षण कर
उन्हें अपनाना-भी क्षण को साधना है।

{883}

शास्त्रों का यह अमृत वाक्य है-
''विणयं धमस्स मूल''-अर्थात् विनय
धर्म का मूल है। मूल से ही वृक्ष की उत्पत्ति हेती
है तथा स्थिति रहती है। यदि मूल ही कमजोर हो तो
वह वृक्ष भलीभांति पल्लवित, पुष्पित और फलित नही होता
है। जब निवय को धर्म का मूल माना गया है तो निश्चय ही विनय का गुण
सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। विनय का
मूल जमेगा तभी धर्म का वृक्ष हराभरा हो सकेगा और
हराभरा रह सकेगा। विनय नही तो धर्म कहॉ से आएगा?
धर्म के क्षेत्र में प्रवेश पाने के लिए विनय का द्वारा खुलना अनिवार्य है। धर्म
की वास्तविकता विनय के अभाव में प्रकट
ही नही हो सकती है-उनका विकसित होना और निखरना तो दूर की बात
है। विनय की बयार बहेगी, तभी धर्म की
कली खिलेगी और धर्मी का मन महकेगा।

{884}

जब राग भाव किन्ही पदार्थो या व्यक्तियों
के प्रति गहरा बनता है तो उसको अपने ही
लिये सुरक्षित रखने की भावना बलवती बनती जाती
हे। जो भी उस सुरक्षा को तोडने की कोशिश करता है, या उनमे
बाधक बनता है, उसके विरूद्ध द्वेष भाव की उत्पत्ति होती है। राग
की प्रतिक्रिया के रूप में द्वेष पैदा होता है। इस राग-द्वेष की
परिणति में अन्य कषाय भाव पैदा होते हैं, और स्थायी रूप से
आत्मा के साथ रमते जाते है।

{885}

{886}

जो सम्यक्, रीति से अपनी
आत्मा को विकास के पथ पर आगे बढ़ाते है
तथा अपने स्वभाव को सौम्य, सद्गुण युक्त
एव सहनशील बनाते है, उनकी आत्मा का
सौन्दर्य अतिशय
रूप से समृद्ध होता जाता है।

{887}

जन्म लेना
छोडना है तो सबसे
पहले जन्म देना
छोडना होगा।

{888}

जीवन दीप
की ज्योति प्रज्ज्वलित
करने के लिये
सस्कार -स्नेह तेल
का काम करता है।

{889}

जो सुन्दरता शाश्वत होती
है-अनश्वर होती है, वही आत्मा
की,अन्तः करण की या स्वभाव की सुन्दरता
होती है। और यही असली सुन्दरता है। यह
असली सुन्दरता सबको सुलभ है, बशर्ते कि कोई
असली सुन्दरता को समझे तथा उसे अपने
भीतर से बाहर प्रकट करे।

{890}

लगता है, भारत के मानवो
का हृदय जो पुष्प की पंखुडीवत् था
वह आज कुम्हला ही नही गया अपितु पत्थर के
समान कठोर हो गया है, तभी तो आज देश मे
नये-नये कत्लखाने खुलते जा रहे है, निरपराध
प्राणियो की नृशंस हत्याए हो रही हे।

{891}

जब दृष्टि मे
समीक्षणता आती
है, तभी अन्तरश्चेतना
यथार्थ वस्तु विज्ञान
मे सक्षम बन
सकती है।

{892}

बृद्धि की
निर्मलता तथा
समीक्षण अवस्था को पाने
के लिए साधक को सबसे
पहले अहमत्व और मत्व
को विसर्जित करना
आवश्यक है।

{893}

डा की स्थिति से समझे
कि एक इंजेक्शन भी बिना, उबले
पानी से धोये एक दूसरे को नही लगाया जा
सकता है तो फिर दूसरे पशु-पक्षियों का मांस
पेट मे कैसे डाला जा सकता है ?

अहकार की वृत्ति हटती हे,तभी
अहं याने आत्मा की सच्ची अनुभूति
होती है। आत्मानुभूति होने पर ही आध्यात्मिकता जागती है
और उच्चतम त्याग वृत्ति कर्मठता में उतरती हे। भगवान्
महावीर की भाषा मे वह ऐसा पंडित होता हे जो एक-एक क्षण
का समीक्षण कर लेता है।

{894}

नमना सीमित नही होता - सदा
व्यापक होता है। वह क्षेत्र, समय या व्यक्ति
की सीमा में भी नही वॅधता हे। इसका प्रमाण है
नमस्कार महामंत्र। इसमें किसी क्षेत्र, समय या व्यक्ति
विशेष की महानता को ही नमस्कार नही किया गया है, बल्कि तदनुसार
गुणधारक सभी अनाम महान् आत्माओं को नमस्कार किया गया है। यहाँ
तक कि पॉचवे पद में किसी खास मत या समुदाय के साधु को नहीं
बल्कि साधुत्व की गुण सम्पन्नता वाले सम्पूर्ण लोक के सभी साधुओ को
नमस्कार किया गया है। अतः यही नमस्कार की गुणवत्ता है और
गुणानुसार व्यापकता है। नमस्कार में न गुण
भेद किया जाता हे ओर न सकोच।

{895}

गर्भपात व्यक्तिगत समस्या तो है ही,क्योंकि
गर्भपात का मॉ के शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य
पर बहुत ही बुरा प्रभाव पडता है। एक बार के गर्भपात के
बाद भी कहा जाता है कि रक्त प्रवाह आदि के कारण मॉ की शरीर
शक्ति बहुत दुर्बल हो जाती है जो लम्बे अर्से तक वापिस सम्हल
नही पाती है। फिर यदि किसी के साथ बार-बार गर्भपात का मौका
पड जाय तो उस की शारीरिक शक्ति तो टूट ही जायगी।

{896}

{897}

तीर्थकर देवो का
संसार की आत्माओ पर
अनत उपकार है। समग्र आत्माओ
के सरक्षण का करूणाभाव था जिसमे सूक्ष्म से
सूक्ष्म जीवाणु भी सम्मिलित है।

{898}

दूसरो को
लाभ देने के पहले
स्वय के जीवन को
सुरक्षित रखना
आवश्यक है।

{899}

हिसा और
परिग्रह विचित्र ढग
का पाप है,जो मानसिक रोग
एव कैसर आदि सारी
बीमारियो की
जड है।

{900}

जिनकी दृष्टि मात्र शरीर
तक सीमित रह जाती है। वे न तो अपनी
आत्मा की आवाज को सुनते या मानते है
और न ही अन्य प्राणियो की आत्माओ
के साथ अपनी आत्मा की समानता
को महसूस करते है।

{901}

भारतीय सस्कृति मे व्यक्ति
के चारित्र्य को सर्वाधिक महत्व
दिया गया है। इस देश मे विभिन्न रीति रिवाजो
का निर्धारण भी इसी दृष्टि
से हुआ है कि सत्चारित्र्य की रक्षा
हो-उसकी महत्ता सबके मन
मस्तिष्क मे बनी रहे।

{902}

जो अनुशासन
पालन करता है,
वही अनुशासन दे
सकता है।

{903}

अनुशासन
जीवन की
विशिष्ट शक्ति
होती है।

{904}

अधिकतर देशवासियो ने अपनी
सभ्यता का श्रेष्ठ परम्पराऍ त्याग दीं और
भोगप्रधान संस्कृति की विकृत परम्पराऍ ओढ
ली। त्यागप्रधान देश मे भोगप्रधान सभ्यता का
प्रवेश एक विडम्बना के रूप मे ही हुआ।

कोई साधक एक ही वात अपना ले
कि ममत्त्व भाव को दूर करना हे चाहे वह
किसी के भी प्रति हो तो इस एक ही प्रयोग द्वारा
कोई आत्मा मोक्ष प्राप्ति तक के अपने चरम लक्ष्य को भी प्राप्त कर
सकती है। मन का यही ममत्त्व भाव जिसे मोह, तृष्णा, मूर्छा,
आसक्ति, लालसा आदि किसी भी नाम से सम्वोधित कर लें-आत्मा
को विकारों के गहरे कीचड मे घसीटता हे ओर उसके स्वरूप को
कुटिल एव कलुषित वनाता है।

{905}

आत्मा की सुन्दरता को पाने के लिये
आगे बढते हे तो आपको ही आनन्द नही मिलता
बल्कि आपके सम्पर्क मे आने वाले सभी लोगों को आनन्द मिलता है
तथा समूचे वातावरण मे भी आनन्द का संचार हो जाता है। दूसरी ओर
मात्र शरीर की सुन्दरता मे जब कोई आसक्त बनता है तो वह स्वयं ही
अनेक प्रकार के दु.खों से ग्रस्त नही हो जाता वल्कि जिसके प्रति
आसक्ति होती है उसे भी दु ख की आग में झोक देता है। इतना ही
नही अपने कदाचार के मैले के छींटो से वह सारे समाज के धरातल
तथा वातावरण की शुद्धता को भी कलंकित कर देता है।

{906}

भारतीय सस्कृति मे इस 'सुन्दरम्' की
परिकल्पना बडी भावपूर्ण है। 'सुन्दरम्' अन्तिम परिणति
मानी गई है 'सत्यम्' और 'शिवम्' की। जीवन में जब सत्य का
पूर्ण प्रकाश प्रसारित हो जाता है तब कल्याण की ओर चरण बढते
हैं। सत्य और कल्याण की परिपक्वता से आत्मा की अलौकिक
सुन्दरता का उद्भव होता है जो अन्तिम लक्ष्य के रूप मे प्राप्त
होती है। इस क्रम मे ही रचित हुआ है- ''सत्यं, शिवं, सुन्दम्'' का
मन्त्र। यह मन्त्र आत्मा के अत्युच्च सौन्दर्य का परिचायक है।

{907}

{908}

आपके खून मे क्रान्ति
करने का जोश है तो मै कहता
हूं, क्रान्ति करिये, किन्तु वह क्रान्ति मर्यादा
की सुरक्षा के लिये हो न
कि उसे तोडने के लिये।

{909}

समता, शान्ति
को पाने की यदि सच्ची
जिज्ञासा, सच्ची भूख हो तो
उस सत् चित आनन्दधन
को नमन करे।

{910}

जब तक
अन्तरग दृष्टि से
राग-द्वेष का मनोमालिन्य नही
हटता, विचारो मे समत्त्व नही
आता,तब तक धर्म की यथार्थ
विवेचना नही हो सकती।

{911}

बाहर का कितना ही
विज्ञान प्राप्त कर ले, बाहरी
डिग्रियॉ कितनी भी क्यो न प्राप्त कर ले पर
वह स्व-पर के जीवन का
सही रूपान्तरण नही
कर सकती ।

{912}

जब तक भोतिकता
का रग जमा हुआ रहेगा, तब
तक बुद्धि निर्मल नही बन सकती और जब
तक बुद्धि निर्मल नही बनेगी तब तक दृष्टि
मे भी समीक्षण अवस्था
नही आ सकती।

{913}

समीक्षण ध्यान
साधना से जीवन में
आश्चर्यजनक शक्तियो का
प्रकटीकरण
होने लगता है।

{914}

समीक्षण
वृति को विकसित
करने के लिए सबसे पहले
अपने आप का सशोधन एव
समीक्षण करना होगा।

{915}

पंच परमेष्ठी को
नमस्कार करना तो बहुत है,
यदि केवल एक ही पद को सम्यक्
विधि से नमस्कार हो जाय तो सत्‌चित
आनन्दधन का स्वरूप प्राप्त
किया जा सकता है।

आत्माओ की समानता के सिद्धांत को जो हृदयगम कर लेते ह, वे तो प्रत्येक प्राणी के प्रति सहृदय हो जाते ह। वे प्रत्येक प्राणी मे रही हुई आत्मा को अपनी ही आत्मा के समान समझते ह तथा अपना वेसा ही आचरण एवं व्यवहार वनाते हे जेसा कि उनकी आत्मा को प्रिय एव सुखकारी महसूस होता हे। जो व्यवहार उन्हे अप्रिय अथवा कष्टदायक लगता वेसा व्यवहार वे कभी भी अन्य प्राणियो के साथ नही करते ह।

{916}

आप में से वहुत सारे ऐसी घटनाओं से परिचित होगे कि अमुक स्थान पर वलात्कार या हत्याएँ हुई या कि अमुक की कुंवारी लडकी, वल्कि वच्चो वाली महिला तक किसी दूसरे के साथ भाग गई। ऐसी घटनाओ से एक बार आप चौकते भी होगे किन्तु फिर वेभान हो जाते है ओर सोचने का कष्ट नहीं करते कि इस प्रकार की घटनाएँ क्यों घटित होती हैं ? ये 'दूसरे' लोग जो ऐसी फैशनपरस्ती को देखते हे तो अनायास ही आकर्षित हो जाते है। उस अवैध आकर्षण का ही किसी मे प्रबल वेग चलता होगा कि वह ऐसी घटनाओ को घटित करने का दुस्साहस कर लेता होगा।

{917}

शरीर तक सीमित दृष्टि का ही आज यह दुष्परिणाम सामने है कि अनेक बहिनें और भाई अपनी सहृदयता एवं संवेदना खोकर अपने शरीर को सुन्दर बनाने के अज्ञानपूर्ण प्रयत्न मे ऐसे-ऐसे सौन्दर्य एवं श्रृंगार प्रसाधनो का उपयोग करते है जिनके निर्माण में अनेक अबोले प्राणियो की हिसा की जाती है एवं उनका निर्दोष खून बहाया जाता है।

{918}

{919}
इत्र की शीशी का मुह
बद हो, और आप उसे जेब मे
छुपाकर बैठ भी जाये तथापि उसकी
खुशबू छूप नही सकती, वैसे ही जीवन
मे अगर सद्गुणो की सौरभ भरी है तो व्यक्ति
कही भी रहे, जन-मानस के पास उसकी
सौरभ पहुचे बिना रह नही सकती।
{920}
साहस और
धैर्य के साथ की
जाने वाली प्रगति
एक दिन परिपूर्णता को
प्राप्त करने वाली
होती है।
{921}
सासारिक
दृष्टि से आध्यात्मिक
जीवन ठीक तरह से
अवलोकित नही हो
सकता।
{922}
कर्म-बध आत्मा
के लिए एक प्रकार का कर्ज है।
जब तक इस कर्ज को आत्मा नही
चुकाती, तब तक कर्मो के भार
से हल्की नही होती।
{923}
रोग को दूर करने के
लिए रोगोत्पति के मूलभूत कारणो
को नही हटाया जाएगा, तब तक रोग समूलत
नष्ट नही हो सकता। कर्म का विदारण भी
समूलत जब तक नही होगा,
तब तक कर्मबंधन की
प्रक्रिया भी चलती रहेगी।
{924}
परम शान्ति
की उपलब्धि के लिए
जीवन मे परिपूर्ण रूप से
समीक्षण की स्थिति लानी
होगी।
मुमुक्षु
आत्माओ को
कर्म कर्ज से मुक्त होने के
लिये वीतराग प्रणीत
सत्पुरुषार्थ को जीवन मे
स्थान देना आवश्यक है।
{925}
मृत्यु के भय से आतकित
व्यक्ति को कितना ही आहार
दान, औषध दान, ज्ञान दान दिया जाय,
तथापि उसे शाति नही मिल सकती।
अत मृत्यु के भय से आतकित व्यक्ति
को निर्भय बनाने वाला अभय दान
ही सर्वश्रेष्ठ दान है।
{926}

आपसे एक सीधा सादा सवाल करू कि
आप अपने शरीर का श्रृगार क्यो करना चाहते ह?
श्रृगार से शरीर का खून नही वढ़ता या कि उसे किसी तरह
की पुष्टि नही मिलती। आपका शरीर सज्जा विहीन हो या साज सज्जा
युक्त-इससे आपके सुख मे कोई अन्तर नही आता। फिर सारी सज्जा
सामग्री एव कोशिशो पर अपार धन, समय एव शक्ति का अपव्यय
क्यो? इतना ही नही अनेक प्राणियो की घात
का महापाप अपने सिर पर लेकर निकाचित कर्म
वध के साथ ऐसा आत्म-पतन क्यो।

{927}

धन लूटने वाला वेसा वेरी नही हे,
जैसा वैरी कुसंस्कारो को डालने वाला होता हे।
क्योकि कुसस्कारो की काली छाया मे व्यक्ति ही नही, नई पीढी औश्र
समाज व राष्ट्र तक इतने अधे हो जाते हें कि वे हिताहित का भान
खोकर बाह्य सत्ता ओर सम्पत्ति को हथियाने की दोड मे निकल पडते
हैं। कुसस्कारो का बुरा असर इस तरह वढता ही रहता है जिस बोझ
को ढोते हुए कई पीढियॉ अपने स्वस्थ विकास से वंचित हो जाती है।
इसलिये सुसस्कारो का धन अधिक से अधिक उपार्जित कीजिये, नई
पीढी में उसको बीज की तरह बोइये एवं राष्ट्रो तथा सस्कृतियों के
नवनिर्माण मे अपना पवित्र योगदान अवश्य दीजिए।

{928}

सस्कारो के संशोधन एवं परिमार्जन की ऐसी
प्रक्रिया भी निरन्तर व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्तारों
परचलती रहनी चाहिए। यह प्रक्रिया साधु-सन्त और प्रबुद्ध
व्यक्ति चलायेगे किन्तु इस प्रक्रिया का आधार वीतराग देवो द्वारा
उपदेशित धर्म को ही बनाना होगा। इस धर्म के सर्वजन हितकारी
सिद्धान्तो मे ही वह बल है जो मानवीय मूल्यों की सर्वत्र
प्रतिष्ठा करते है तथा व्यक्ति को विश्व के समस्त
प्राणियो के साथ मैत्री की सीख देते है।

{929}

{930}

जो अधिक प्रबुद्ध
होते है, उनका विशेष दायित्व
बनता है कि वे समाज मे प्रचलित पारस्परिक
सस्कारो के विकारो को दूर करने के
लिए विशेष अभियान चलावे
तथा सामाजिक वातावरण पर
से कुसस्कारो का प्रभाव मिटावे।

{931}

कर्मो का
विदारण सिर्फ बाह्य
उपायो से नही हो सकता,
उसके लिए तो आवटिक
दृढ सकल्प अनिवार्य है।

{932}

समीक्षण
ही जीवन के
काषायिक
उबड-खाबड पथ
कोसपाट बनाने वाला है।

{933}

जब जीव ससार की
समस्त आत्माओ के साथ अपना
आत्मीय व्यवहार रखता है, प्रत्येक प्राणी के प्रति
करूणावत बना रहता है, तब उसकी यह
आत्मीय भावना स्वय के परमात्म स्वरूप को
उजागर करने मे सहायक होती है।

{934}

जिस प्रकार प्रकाशमान हीरा
रजकण द्वारा मलीन हो जाता है,
चमकता गोल्ड (सोना) मिट्टी के कारण
मलीमष बन जाता है,उसी प्रकार
अनन्त -अनन्त गुण सम्पन्न
आत्मा भी कर्मो के मल से
मलीमष बन जाती है।

{935}

जीवन के
प्रत्येक कार्य मे,
हर गतिविधि मे
समीक्षण दृष्टि होना
आवश्यक है।

{936}

समीक्षण की
परिपूर्णता ही आत्मा
से परमात्म रूप की
अभिव्यक्ति है।

{937}

चेतनना अपनी समीक्षण अन्त
प्रज्ञा को जगा कर जडत्व से विलग
हो सकती है। पुद्गलो मे दृश्यमान, मनोज्ञता,
कमनीयता,रमणीयता, आकर्षणता, पुद्गलो के
ही परिवर्तन से अमनोज्ञ, अकमनीय, अरमणीय,
अनाकर्षण मे परिवर्तित हो जाती है।

अधकार मे भटकते हुए मनुष्य
ने जहॉ भी किसी शक्ति का रूप देखा, बस
उसे देवता मान लिया। इस प्रकार पानी, अग्नि, रोशनी,
धन, ज्ञान आदि अनेकानेक पदार्थ और वृत्तियॉ उसके लिए देवी-देवता
बन गये। अधकार मे नही देख सका तो वह अपना ही शक्ति भंडार
नही देख सका जो उसके पद को मान्य सभी देवी-देवताओ से ऊँचा
उठाते है और यदि वह अपनी शक्तियो का उद्घाटन कर ले तो उसे
ईश्वर के समकक्ष बना देते है।

{938}

प्रभु के भजन से प्रभु का स्वरूप पा
लेना कोई हॅसी खेल नही है। अपने स्वरूप
को इतनी गहराई से परखना होता है और उसे
इतनी आत्मलीनता से विगलित करदेना होता है कि अपनेपन का
ध्यान ही विस्तृत सा हो जाता है। जो पानी की सतह पर ही तैरता है,
उसे अपनेपन का खयाल रहता है, लेकिन जो प्रभु के स्वरूप की
गहराई मे पूर्ण रूप से डूब जाता है तो वह खुद रहता ही कहॉ है?
वह तो उसी रग मे रंग जाता है-प्रभुमय हो जाता
है। उस स्तर पर जाकर अन्तर की सारी
रेखाएँ मिट जाती हैं और पहिचान की
एकात्मकता निखर उठती है।

{939}

भाषा ही वह माध्यम है जिससे मनुष्य
की सभ्यता और सस्कृति का ज्ञान होता हैं,
उसके चारित्र का परिचय मिलता है तथा उसके मानवीय मूल्यो
की पहिचान स्पष्ट होती है। मन एक अधा कुँआ होता है तो जिह्वा
उसकी खिडकी बनती है, जिससे मन की गति की झलक
मिलती है। मनुष्य की महत्ता और हीनता, शिष्टता और अशिष्टता
वाणी मे तत्काल झलक जाती है, अतएव संस्कारी पुरुषो को
बोलते समय भाषा-विवेक रखना चाहिये।

{940}

{941}

बचपन का सुन्दर रूप
यौवनत्व मे और यौवनत्व वृद्धत्व
मे जरा-जीर्ण होता हुआ नष्ट हो जाता है।
परिवर्तन के इस ध्रुव सिद्धान्त को परिवर्तित
करने का सामर्थ्य ससार
के किसी भी व्यक्ति मे नही है।

{942}

"अभयदान"
ग्राहक को तो अभयी
बनाता ही है किन्तु
प्रदाता के कर्म निर्जरा एवं
पुण्यार्जन मे
हेतु बनता है।

{943}

मानव जब
ईर्ष्यालु बन जाता है तब
अपने विवेक चक्षु खो बैठता
है।

{944}

साधक को स्वात्व बोध के
साथ समीक्षण पूर्वक पुद्‌गलो के परिवर्तन को
समझते हुए अमरत्व रूप, अनन्त सुख को
प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

{945}

आत्मानंद वह आनन्द
है जो सदा सर्वदा के लिए
परम आनन्द प्रदान करने वाला है,
जिसकी अभिव्यक्ति के बाद
कभी भी दु ख की सप्राप्ति
नही हो सकती।

{946}

ईर्ष्या-दग्ध
मानस कभी भी
अपनी उन्नति नही कर
सकता, आत्म-विकास
का तो कोई प्रश्न ही नही
उठता।

{947}

नि स्वार्थ
करूणाभाव की चरम
परिणति ही परमात्म भाव
को उजागर करती है।

{948}

आत्मभिमुख आत्मा
पौद्‌गलिक सुखों में कभी
भी आनदित नही होती , वह
तो पौद्‌गलिक आवर्त मे रह
कर भी उससे निरपेक्ष रहती है।

भारतीय सस्कृति का यह आदर्श वाक्य है कि 'सत्यब्रूयात् प्रिय ब्रूयात्' अर्थात् सत्य वोलो, प्रियकारी बोलो। सत्य बोलो-यह आधारगत सिद्धान्त है। सत्य क्या है? जो आप देखते, सुनते और महसूस करते हो उसे उसी रूप में व्यक्त करो, उसमे दुराव व छिपाव की कोई जगह नही होनी चाहिए। यथावत् का व्यक्तिकरण सत्य का पीठवल होता है। सत्य ही ऐसी शक्ति है जो ज़ीवन के विचार और आचार को सदा एक रूप बनाये रखती है। पतन के जितने भी कारण होते है वे विचार और आचार के विभेद से ही पेदा होते है। {949}

{950} भाषा सदा सत्य से मडित हो, यह विवेक सदा जागृत रहना चाहिये। सत्य बोलो का यही सार है। किन्तु सत्य बडा पैना होता है और उसकी मार सभी सहन नही कर सकते है- इस कारण नीतिकारो ने आगे जोडा कि सत्य भी प्रियकारी बोलो। दूसरो के चित्त पर आघात लगावे ऐसा सत्य भी मत बोलो याने कि उस सत्य को इस तरह मिठास मे घोलकर बोलो कि उसका बाह्यरूप प्रियकारी यन जाय। नगा सत्य सामान्य रूप से असत्य होता है। सत्य प्रियकारी हो-यह सामान्य नियम है किन्तु कभी-कभी ऐसे अवसर आते है जब किसी की हितकामनना से उसका ठोस सत्य से आमना-सामना करना ही होता है ठीक उसी तरह जैसे एक सर्जन डॉक्टर फोडे की चीर-फाड इसलिये करता है कि शरीर का वह भाग तन्दुरूस्त हो जाय। इस दृष्टि से उपरोक्त वाक्य मे परिवर्धन किया जा सकता है कि सत्य बोलो, प्रियकारी या हितकारी बालो। सत्य प्रिय हो और हितसाधक भी हो, लेकिन प्रियकारिता और हितकारिता मे टकराव पैदा हो जाय तो वहॉ पर हितकारिता को प्रमुखता देना समीचीन रहेगा।

जिह्वा वही होती है, लेकिन बोली-बोली का भारी अन्तर पड जाता है। इसी जिह्वा मे जहर भी होता है तो शहद भी होता है। यह भाषा के कर्त्ता पर निर्भर करता है कि वह जिह्वा के किस तत्त्व का प्रयोग करे। भाषा का जहर किसी के भी दिल को घातक चोट पहुँचाता है, उसके प्रतिशोध को उभारता है तथा समग्र वातावरण को विषाक्त बनाता है। वहीं शहद मिली भाषा शत्रु तक के दिल को मुधरता का स्पर्श करा देती है, प्रेम की नई लहर पैदा करती है और हृदय परिवर्तन तक का आदर्श उदाहरण भी उपस्थित करवा सकती है। {951}

{952}

निराबाध रूप से व्यतीत
हो रहे, आयुष्य के क्षणो मे जो
आत्मा स्व की क्रियावती शक्ति को शाश्वत
शाति की उपलब्धि कराने वाले लक्ष्य की ओर
गतिशील करती
है, वे धन्य बनती है।

{953}

पुद्गलो मे
आसक्त होकर आनद
मनाने वाला व्यक्ति कभी भी
शाश्वत सुख की
अनुभूति नही
कर सकता।

{954}

जो साधक
पुद्गलासक्ति से
निरपेक्ष हो जाता है, वह
प्रगतिशील हो जाता
है-आत्मन् की
दिशा मे।

{955}

आत्मा का परम उत्कर्ष एव
मुक्ति की अवाप्ति मात्र मनुष्य गति
से ही हो सकती है। मानव साधना के क्षेत्र मे
बढकर एक के बाद एक सोपानो को पार
करता हुआ चरम लक्ष्य का
वरण कर सकता है।

{956}

एक माता के उदर
से युगपद् उत्पन्न दो बच्चो
मे भी अधकार-प्रकाश जैसा
अतर पाया जाता हे, वह क्यो ?
इन सबका
अदृष्ट कारण है-कर्म।

{957}

सुख रूप दिखने
वाले पुद्गल वास्तव
मे सुख रूप नही होकर
सुखाभास रूप है, अत
पुद्गला नदी नही,आत्मा
-नदी बनिये।

{958}

उठिये,
जागे प्रमाद करने
का अवसर नही
है।

{959}

मानव तन मे रही हुई
आत्मा श्रेय मार्ग को यदि
नही अपनाती है तो कोई ऐसी
जिंदगी नही ऐसा कोई उपस्थान नही,
कि जिससे वह व्यष्टि से समष्टि
की ओर जा सके।

वास्तव मे वे ही वचन बाण के समान तीखे
और गहरे घाव करने वाले होते है जो कषाय के
तरकस से निकल कर सामने वाले के दिल को वेध डालते है। इन
वचन बाणों के घाव हमेशा हरे रहते हैं और प्रतिक्रियाओं के तूफान
उठते रहते हैं। ऐसी प्रतिक्रियाए कितनी विनाशकारी सीमाओ तक
पहुँची हैं–ऐसी उदाहरणो से इतिहास के पन्ने भरे पडे हैं। महाभारत
स्वयं किसका परिणाम था?वचन–बाण
के घाव से ही तो यह विनाश रिसा था।

{960}

{961}

मान का अहंकार से बढकर इस
आत्मा का कोई अन्य शत्रु नही हैं क्योंकि इस
दुर्भाव का सीधा आक्रमण आत्म भाव पर होता है। यह अहंकार सभी प्रकार
की उपलब्धियो का हो सकता है। अपनी धन शक्ति, सत्ता शक्ति, शरीर
शक्ति अथवा इन्द्रिय शक्ति पर मनुष्य अभिमान करता है किन्तु कभी कभी
साधक को भी अपनी साधना शक्ति वा तप शक्ति पर भी अभिमान हो
जाता है। यो सभी प्रकार का अभिमान सर्वत्र वर्ज्य माना गया है। अभिमान
या अहंकार ऐसा घातक विकार होता है जो आत्म स्वरूप को स्वयं विकृत
नही बनाता, बल्कि अपने साथ नाना प्रकार के विकारों को भी भीतर मे
प्रविष्ट करा देता है। इस कारण आत्म स्वरूप की अत्यधिक
मलिनता उभर कर ऊपर आ जाती है।

वचन–बाण तलवार से भी अधिक तीखे
होते है और तलवार से भी ज्यादा गहरा घाव
करते हैं। अत सोचकर ही बोलना चाहिये। यह सोचना भी उस
परिमाण में गहरा होना चाहिये जिस परिणाम में कषायों की
कलुषता का आधिक्य हो। भाषा विवेक
का सामान्य नियम भी यह है कि एक–एक
शब्द पहिले तोलो फिर बोलो।

{962}

{963}

जो साधक एन्द्रियक
विषयो के लोलुपी है, भौतिक
सुखो मे आसक्त है, वे आत्मरामी
न होकर इन्द्रियरामी है। वे प्रेय
मार्ग के पथिक है न कि
श्रेय मार्ग है।

{964}

ससार रूप
''चकडोलर'' की चार
पालखिया है-नरक,तिर्यच,
मनुष्य, देवता- जिसमे
ससारी जीव निरन्तर
घूम रहे है।

{965}

ससार की
समस्त आत्माओ के
पास क्रियावती शक्ति है
आवश्यकता है,उसे सही
दिशा मे नियोजित
करने की।

{966}

जो साधक एन्द्रियक
सुखो मे निरासक्त है, अदीन
भाव से आत्म साधना मे रत है,
वे ही सच्चे अर्थो मे श्रेय मार्ग
के पथिक है।

{967}

जिस इन्द्रिय को जिस
पदार्थ से सुख की अनुभूति
होती है, उस इन्द्रिय को उसी पदार्थ से
बार-बार सम्बन्धित किया जाय तो वह विषय
सुख देने के स्थान पर दु खप्रद बन
जायेगा।

{968}

अब भी समय
है जगने का,जागिये
और इस अमूल्य जीवन मे
मुक्ति रूपी परम सुख
को पाने के लिये
आगे बढिये।

{969}

आत्मानन्द
से विपरीत होने वाली सभी
क्रियाए-प्रतिक्रियाए प्रेम
मार्ग की कोटि
मे आती है।

{970}

परमानद का स्त्रोत
तो स्वयं के भीतर ही
विद्यमान हे, आवश्यकता है ज्ञान, क्रिया की
सम्मिलित साधना से उस स्त्रोत पर आए
कर्म कलिमल
को हटाने की।

सावधानी का यह भी अर्थ होगा कि आप
मितभाषी बने, कम से कम वोले। कम से कम
बोलेंगे, तभी अपनी वोली के स्वरूप का पूरा ध्यान रख सकेगे।
अधिकतम बोलने वाला अपने शव्दो के स्वरूप पर कहॉ तक ध्यान
दे पायेगा ? कम से कम जितना आवश्यक हो उतना ही वोलना
होगा। तो एक-एक शब्द पर पूरा ध्यान दिया जा सकेगा। जिससे
वह किसी को कष्टकर न लगे। वाण जेसा तीखा वचन
तो कभी नही निकलेगा।

{971}

सामायिक के अभ्यास से साधी गई समता
सासारिकता से जीवन को दूर हटाती हे ओर उसे
आत्मा से जोडती है। इस संयोग में आत्मा के अवगुणो का शमन होता
जाता है और उसके दृष्टिकोण मे समता याने सहनशीलता पनपती
जाती है। भावो मे समता व्याप्त होती हे तो वह वचन में प्रकट होती है
तथा व्यवहार एवं कार्यकलापो मे समाहित वनती है और इस प्रकार
विचार, वचन तथा व्यवहार सहनशील भी वनते हे तो समानता के प्रेरक
भी। आन्तरिक समानता बाह्य परिस्थितियो मे भी समानता लाने को
प्रोत्साहित करती है। इस रूप में
भीतर बाहर समता की सहजता स्थापित होती है तथा
इसी सहजता से सभी आत्मीय सद्‌गुण इस
जीवन को विभूषित बनाते रहते है।

{972}

वचन आपके सम्पूर्ण जीवन का आईना
होता है। यह आईना जितना मैला, ऊबडखाबड,
बेतुका और धूलसा होगा, उतनी ही आपकी आकृति क्रूर, कुटिल,
कुरूप और कलुषित दिखाई देगी। लोग आपकी जैसी आकृति
देखेगे, वेसा ही प्रतिष्ठा देगे। इस पर आपके वचनबाण और तीखे
हुए तो उसका घाव खाये हुए दिल कभी भी आपकी हितकामना
नही करेगे, क्योकि वैसे घाव भरते नही है और दीर्घकाल
तक पीडा पहुँचाते रहते है।

{973}

नमस्कार स्वय एक उत्कृष्ट अनुष्ठान है क्योकि यह अतिशय विनम्रता एव अपूर्व श्रद्धा का सगम होता है और फिर ऐसा नमस्कार जब साधुत्व के सतत् विकास शील चरणो मे किया जाता है तो उससे बढकर महत्व और किस सुकृत्य का हो सकता है?

{975}

वचन-बाण तलवार से अधिक तीखे होते है। वे तलवार से भी ज्यादा गहरा घाव करते है। अत. सोच करके ही बोलना चाहिए।

{976}

भावानत्मक रूप से मन-मस्तिष्क का निर्माण इस रूप मे हो अथवा किया जाय कि कर्त्तव्य-निष्ठा स्वत स्फूर्त बने तथा बनी रहे।

{977}

मनुष्य किसी की रचना नही है अथवा किसी भी अन्य शक्ति पर आश्रित नही है। वह अपने भाग्य का स्वय नियन्ता है और अपने पुरुषार्थ से सर्वोच्च पद को प्राप्त कर सकता है। अपनी कर्मण्यता का विश्वास ही सबसे बडा सम्बल होता है।

{978}

प्रभु के भजन मे ज्यो-ज्यो गहराई से डूबते जाएँगे, अपनी आत्मा के स्वरूप मे तथा परमात्मा के स्वरूप मे एक प्रकार से एकरूपता दृष्टिगत होने लगेगी।

{979}

कथनी और करनी अर्थात् वाणी और कर्म मे जब एकरूपता की बात कीजाती है तो उसका गूढार्थ सत्या चरण मे ही निहित होता है।

{980}

कथनी और करनी एकरूपता से सत्य सम्यक्त्व और सद् का विकास होगा तथा असत्य, मिथ्यात्व और असद् से नाता टूटेगा।

{981}

आत्मा की सुख सुविधाओ का स्वरूप देह की सुख सुविधाओ के स्वरूप से कतई भिन्न है तथा आत्मशिक्त का नियोजन मात्र आत्मा की सुख-सुविधाओ को प्राप्त करने मे ही किया जाना चाहिये।

गाली देने वाले को गले लगा लो ओर
फिर देखो कि व्यक्ति ओर समाज के जीवन में प्रगतिशील
परिवर्तन कितनी तेजी से लाये जा सकते
है। गाली देने वाले को गले लगाने मे आपकी मानवता की जीत
होगी, आपके मानवीय मूल्य ओर आपकी मानवीय सवेदनाएँ
निखरती जायेगी तथा एक वाती से हजारो वातियॉ जलाते जाने के
समान पीडित एवं दलित मानवता के उद्धार का एक भगीरथ
कार्य प्रारम्भ किया जा सकेगा। {982}

सांसारिक कार्यो मे रीतियों का
निर्धारण तथा उनका प्रचलन सामान्य रूप
से शुद्ध भाव के साथ शुद्ध भावो को जगाने तथा
जगाकर बनाये रखने के उद्देश्य से ही होता हे। अपने प्रचलन के प्रारम्भ मे
रीतियों का स्वरूप भी शुद्ध होता है
तथा लोग भी उत्साह के साथ उनकी उपादेयता को समझकर ही उन्हे
अपनाते है। यह प्रचलन तव तक शुभ और सुखदायक रहता हे जब तक
रीतियो के पालन का क्रम शुद्ध बना रहता हे। पालन करने वालों में ही दोष
पैदा होते हैं कि इन रीतियो का 'सु' धीरे धीरे 'कु' मेबदलता जाता है। अत
इन रीतियो के विकृतीकरण तथा पुनर्शुद्धीकरण की
प्रक्रिया को भी समझ लेना चाहिये। {983}

इस ससार मे दो शक्तियो का सघर्ष निरन्तर
चलता रहता है। यह सघर्ष है अच्छाइयो का और
बुराइयो का-सद् ओर असद् का। यह सघर्ष अपने आप
नही चलता। इसे मुख्यत मानव जीवन ही चलता है। किसी भी जीवन
मे इन दोनो शक्तियो का आमना-सामना होता रहता है और पग-पग पर
इस चेतना की जरूरत होती है कि वह किस शक्ति का योग ले और
किस शक्ति का विरोध करे। इस दृष्टि से कि जीवन का साध्य किसी
भी समय ऑखो से ओझल न हो। यही कर्त्तव्य का मूल है। {984}

{985}

आध्यात्मिक ऊँचाइयो को
पाने मे मात्र आत्म-पुरुषार्थ की आवश्यकता
होती है जो सफल बन जाय तो पलो मे चरम
लक्ष्य मिल जाय और जो अधूरा बना रहे तो
उसमे कई जन्म जन्मान्तर लग जाएँ।

{986}

पाप करने
वाला कोई भी हो, किन्तु
उससे सम्बन्धित सभी
व्यक्ति उस
पाप के सहभागी
होते है।

{987}

प्रेय मार्ग मे
प्रवृत्ति जहा मानव
को अवनति की ओर ले
जाती है वहा श्रेय मार्ग की
प्रवृति मानव को उन्नति
की आरे ले
जाती है।

{988}

अपूर्व शान्ति और
असाधारण सुख की अनुभूति
आत्म-साधना पर ही प्रतिफलित होती है और
साधना प्रतिफलित होती है भावना की उत्कृष्ट
श्रेणियो मे पहुँच जाने पर।

{989}

मनुष्य की महत्ता
और हीनता, शिष्टता और अशिष्टता वाणी
मे तत्काल झलक जाती है। अतएव
सस्कारी पुरुषो को बोलते समय भाषा
विवेक रखना चाहिए।

{990}

बिना सत्पुरुषार्थ
के उपार्जित किया
गया धन जल्दी से
पच नही सकता।

{991}

न्याया और
नीति से उपार्जित
थोडा सा धन भी
बहुत लाभदायक
होता है।

{992}

जो अपनी जीवन नौका
की डोर को सत्य के हाथो में
थमा देता है, उसकी नोका इस संसार रूपी
समुद्र के किसी भी अधड या तूफान मे न
टकराती है और न टूटती-फूटती हे, वह कही
भी क्षतिग्रसत नही होती।

जीवन के विशाल पथ पर भी एक-एक पग
आगे वढाते हुए पथ की अवस्था एवं चारों ओर
की वातावरण परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ही कर्त्तव्य का
निर्धारण करना होता हे कि क्या करने
से चाल स्वस्थ वनी रह सकेगी ओर गति रूकेगी नही। चाहे
सांसारिक कार्यो के क्षेत्र हो या आध्यात्मिकता का क्षेत्र वस्तुतः
कर्त्तव्य-निर्धारण की प्रक्रिया को स्वयं
के ज्ञान ओर अनुभव पर ही चलानी होती हे।

{993}

प्रत्याख्यान ओर त्याग की जो समुन्नत
परम्पराएँ एवं स्थापित मर्यादाएँ हें, उन्हें प्राणहीन
होने से वचाना चाहिये। यह कार्य वढत हुई भोगवादी प्रवृत्तियों का
सार्थक विरोध करने से ही पूरा हो सकेगा। देश के महानगरों एवं नगरो
मे जिस प्रकार की भोगवादी विलासमय जीवन प्रणाली पनप रही है,
वास्तव में वही त्याग परम्परा के लिये खतरा वन रही हे। इस खतरे
को कम किया जाना चाहिए तथा देनंदिन जीवन में प्रत्याख्यान की
परम्परा पुष्ट बनाई जानी चाहिये कि प्रतिदिन कुछ न कुछ त्याग लेने
की आदत अवश्य बने। छोटे-छोटे
त्याग से बडे और सर्वस्व त्याग तक की अपूर्व
वृत्ति का विकास किया जा सकेगा।

{994}

आत्म धर्म यह है कि आत्म स्वरूप की
शुद्धता को विषय कषायों के नाना प्रकार के विकार
नष्ट करते हे और इसके मददगार बनते हैं अनियत्रित मन तथा
लोलुप इन्द्रियों के विश्रृंखल कार्य। इस कारण मन को
आत्मानुशासन मे स्थिर बनाकर इन्द्रियो की वासनाओ को जीतें एवं
विकारो को नष्ट करते जावें यह निजात्मा के प्रति कर्त्तव्य है जो
सभी के प्रति सभी प्रकार के कर्त्तव्यों का मूल होता है।

{995}

{996}

भाषा विवेक के
परिपक्व विकास से कोई
साधक अपनी वचनशक्ति को पूर्णतया हित,
मित, इष्ट और मिष्ट बना लेता है, तब वह
एक प्रकार से सिद्धवचन हो जाता है।

{997}

अनीति से
उपार्जित करोडो
का धन भी शान्ति
देने वाला नही
बनता।

{998}

सुख
पौद्‌गलिक
पदार्थो मे नही है,
स्वय आत्मा
मे है।

{999}

जहॉ-जहॉ कटुता दीखे,
कलुष नजर आवे और क्रूरता ताडव मचाती
हो, वहॉ प्रेम और सहयोग की वचन गगा को
बहाते चलो। प्रेम की रसधारा मे डूब कर कौन
अधम से अधम भी अपना हृदय-परिवर्तन
नही कर लेगा ?

{1000}

विवेक का तकाजा यही
होता है कि उपलब्ध प्राप्ति के
पूर्ण महत्व का अकन किया जाय तथा सभी
पहलुओ से सोचा जाय कि उसका
अधिकतम सदुपयोग किस प्रकार
किया जा सकता है?

{1001}

आत्मा
ही अपने अच्छे
या बुरे जीवन का सर्जन
करने
वाली है।

{1002}

मानव अपनी
विवेकशील प्रज्ञा
द्वारा सत्पुरुषार्थ के बल
पर अपने जीवन का नव
निर्माण कर सकता है।

{1003}

आज का मनुष्य
भी यदि ऑखे खोल कर
देखे तो प्रकाश की कमी नही हे।
अधेरा भी बहुत है लेकिन प्रकाश की किरणें
उससे अधिक व्यापक ओर तेजस्वी हे।

अध्यात्म की आतरिक दृष्टि के
अनुसार मन का सविशेष महत्त्व होता हे किंतु सांसारिक दृष्टि से
अप्रत्यक्ष रूप मे उसकी थाह ही
ली जा सकती हे। अतः संसार में वाणी ओर कर्म को ही प्रमुख
माना हे क्योकि मन का समावेश वाह्य रूप से इन दोनो में हो
जाता है। अतः कथनी ओर करनी की एकरूपता को ही संसार
में प्रामाणिकता का मानदण्ड माना जाता हे।

{1004}

जेसे अग्नि थोडे ही समय से
रूई के ढेर को भस्म कर देती हे, उसी
प्रकार कषाय आत्मा के समस्त गुणो को भस्म कर
देते है। कषाय शब्द कष से बना है जिसका अर्थ होता है कषाय
याने कि नष्ट करना। इस प्रकार जो वृत्तियॉ इस आत्मा को कषती
है याने कि उसके गुणो को नष्ट करके उसके लिये कर्म बंध की
आय करती है, उन वृत्तियो को कषाय कहते हे। इस रूप मे कषायो
की काषायिकता अर्थात् विनाश शक्ति को घातक
की सज्ञा ही दी जा सकती है जो आत्म
चेतना का घात करती है।

{1005}

माता-पिताओ को अपनी सन्तान के प्रति
तथा सन्तानों को अपने माता-पिताओ के प्रति
अपने कर्त्तव्यों का पालन पूरी निष्ठा के साथ करना चाहिये
क्योंकि कर्त्तव्यनिष्ठा की ऐसी परम्परा जब क्रमिक रूप में आगे से
आगे चलती रहती है तो उस समाज व राष्ट्र का व्यवस्था क्रम
सुव्यवस्थित रूप से ही नही चलता, अपितु वहॉ
उन्नति की उत्कृष्ट ऊँचाइयॉ भी परिलक्षित होती है।

{1006}

{1007}

कर्त्तव्य-पालन ऐसा कार्य है
कि थोडी सी भी चूक कर जॉय या
आलस्य आ जाय तो कभी-कभी कर्त्तव्य -पालन
की पूरी प्रक्रिया व्यर्थ हो जाती है अथवा जो
कुछ उससे प्राप्य होता
है,वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

{1008}

अन्तर की
अनुभूति रखने
वाला व्यक्ति कभी भी
एन्द्रियक सुखो मे आसक्त
नही
होता।

{1009}

जिस साधक
का मन आत्मीय व्यवहार
मे तन्मय है उस साधक के
विचारो का प्रभाव निश्चित
रूप से अन्य प्राणियो पर
भी पडता है।

{1010}

माता-पिता की मुख्य
जिम्मेदारी होती है सस्कार-दान
की जिम्मेदारी-जिन सस्कारो को
उनकी सन्तान उनसे गर्भ से लेकर जन्म के
बाद कम से कम शिशुकाल मे एकल उत्सुकता
से ग्रहण करती है।

{1011}

भौतिक पदार्थो की
उपलब्धि के लिए भी जब उन
तत्त्वो के बोध की आवश्यकता होती है
तो आध्यात्मिक पथ पर बढने के लिए तो
तद्विषयक सम्यक् बोध की
अनिवार्य आवश्यकता है।

{1012}

योगो की
अशुभ प्रवृति से
आत्मा का अध पतन होता
हे तो शुभ प्रवृति से
उर्ध्वगमन।

{1013}

आध्यात्मिक
क्रिया वही है
जिससे निज स्वरूप
की अभिव्यक्ति
होती हे।

{1014}

जब भव्य साधक
अपनी मानसिक, वाचिक कायिक
क्रिया का समीक्षण करने लगे और समीक्षण के
साथ उन्हे अशुभ से हटाकर शुभ मे
नियोजित करेगा तो लक्ष्य
तक पहुंच जाएगा।

तीर्थकर देवो की तरणतारिणी वाणी
का एक अमृत वाक्य है—*"पढम नार्ण तओ दया"*
—अर्थात् पहले ज्ञान ओर बाद मे क्रिया। यो कहा गया हे कि ज्ञान
और क्रिया दोनो से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव होती हे। किन्तु इस
वाक्य मे दोनो का क्रमाल्लेख है। प्रश्न उठता है पहले ज्ञान क्यों ?
सीधा सा उत्तर है—पहले जानेगे तभी तो तदनुसार क्रिया कर
सकेंगे। हर क्रिया सप्रयोजन होती हे ओर प्रयोजन के पूर्व निर्णय
किये बिना क्रिया कैसे की जा सकेगी ?

{1015}

मुख्य रूप से अपूर्ण शक्ति एक दिशा
से अधिक विकसित होती है। भौतिकता मे मुख्य
ध्यान रहता है तो आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास होता है। विभिन्न भौतिक
शक्तिया विकसित होती है। भौतिक शक्ति के चकाचौंध मे आध्यात्मिक
शक्तिया विस्मरण के गर्त की ओर प्रवाहित होती हुई अव्यक्त दशा को
प्राप्त होती है। यही कारण है कि आत्मा कुछ हद तक विकसित होकर
पुनः कुण्ठित हो जाती है। यह एक तरह का चक्र—सा बन जाता है।
प्राणी किंकर्तव्यविमूढता का अनुभव करता हुआ दुःख परम्परा का
निर्माण करता रहता है।

{1016}

ज्ञान और क्रिया की अन्योन्याश्रितता होती
है। ज्ञान का प्रकाश पहले होगा, तभी क्रिया का
चरण आगे बढ सकेगा। ज्ञानहीन क्रिया को त्याज्य बताया गया
तो, क्रियाहीन ज्ञान को भी विशेष महत्त्व नही दिया गया है। ज्ञान
के अभाव मे क्रिया अन्धी होती है तो क्रिया के अभाव मे ज्ञान
लंगडा, किन्तु यदि अधे और लगडे मिल जॉय तो दोनो मिलकर
अपनी मजिल तक आसानी से पहुँच सकते है।

{1018}

{1019}

जिस साधक के मन मे
जरा सी भी यह भावना रही है
कि मेरी साधना से लोगो पर अच्छा
प्रभाव पडे, मेरी यश कीर्ति का प्रसार हो ऐसे
साधक की साधना बाह्य रूप से कितनी ही
कठोर एव अध्यात्म प्रसाधिका हो, कितु यथार्थ
मे वह भौतिकी होती है।

{1020}

मनुष्य जीवन
के उन्नयन का यदि कोई
मार्ग है तो वह
श्रेय मार्ग है।

{1021}

श्रेय मार्ग
परमात्मा तक
जाने का व्यवस्थित
और श्रृखलाबद्ध
मार्ग है।

{1022}

बच्चा रग-बिरगे खिलौनो
से कुछ समय खेलकर जल्दी ही
दुसरी तरफ आ जाता है,पर मानव वह
तो अपने हाथो से निर्मित बगले, फर्नीचर, आभूषण,
सिनेमाघर रूपी खिलौनो से पूरी जिदगी ही खेलता
रहता है, क्या कभी इन खिलौनो से
विराम लेने की मन मे आती है?

{1023}

चन्द्र से अधिक शीतल और
सूर्य से अधिक प्रकाश मनुष्य
जीवन मे ही पाया जाता हे, उसे पाने के लिये
चोबीस घटो मे से कुछ समय तो निकालिये
और समीक्षण साधना मे रत हो जाइये और
देखिये तो सही
कि केसा आनद मिलता है।

{1024}

मानव देह से
जहां सम्यक् दृष्टि
आत्मा आत्मदीप जगा
सकती है, तो उसी मानव
देह से आत्मा पतन
की ओर भी जा
सकती है।

{1025}

जब तक
लक्ष्यानुरूप गति नही होती,
तब तक आत्मा अभीष्ट
अर्थ सिद्ध नही
कर सकती।

{1026}

लाइट फिट है, कितु फिट
होने मात्र से अधकार दूर नही
होता। वैसे ही शास्त्रो को रट-रट कर मस्तिष्क
मे जमा लेने मात्र से अज्ञान
अधकार नही हटता। वे शब्द तो पोद्गलिक है,
मेटर है, जब इन शव्दो का रस हम पी
लेगे,अर्थ को हृदयंगम करेगे
तभी ज्ञानालोक प्राप्त होगा।

तीर्थकर देवो की तरणतारिणी वाणी
का एक अमृत वाक्य है–*"पढम नाण तओ दया"*
–अर्थात् पहले ज्ञान ओर बाद मे क्रिया। यो कहा गया है कि ज्ञान
और क्रिया दोनो से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव होती हे। किन्तु इस
वाक्य मे दोनो का क्रमाल्लेख हे। प्रश्न उठता हे पहले ज्ञान क्यो ?
सीधा सा उत्तर है–पहले जानेगे तभी तो तदनुसार क्रिया कर
सकेगे। हर क्रिया सप्रयोजन होती हे ओर प्रयोजन के पूर्व निर्णय
किये बिना क्रिया केसे की जा सकेगी ?

{1015}

मुख्य रूप से अपूर्ण शक्ति एक दिशा
से अधिक विकसित होती है। भौतिकता मे मुख्य
ध्यान रहता है तो आध्यात्मिक शक्ति का हास होता है। विभिन्न भौतिक
शक्तिया विकसित होती है। भौतिक शक्ति के चकार्चोंध मे आध्यात्मिक
शक्तिया विस्मरण के गर्त की ओर प्रवाहित होती हुई अव्यक्त दशा को
प्राप्त होती है। यही कारण है कि आत्मा कुछ हद तक विकसित होकर
पुन· कुण्ठित हो जाती है। यह एक तरह का चक्र–सा बन जाता है।
प्राणी किंकर्तव्यविमूढता का अनुभव करता हुआ दु ख परम्परा का
निर्माण करता रहता है।

{1016}

ज्ञान और क्रिया की अन्योन्याश्रितता होती
है। ज्ञान का प्रकाश पहले होगा, तभी क्रिया का
चरण आगे बढ सकेगा। ज्ञानहीन क्रिया को त्याज्य बताया गया
तो, क्रियाहीन ज्ञान को भी विशेष महत्त्व नही दिया गया है। ज्ञान
के अभाव मे क्रिया अन्धी होती है तो क्रिया के अभाव मे ज्ञान
लगडा, किन्तु यदि अंधे और लगडे मिल जॉय तो दोनो मिलकर
अपनी मजिल तक आसानी से पहुँच सकते हैं।

{1018}

{1019}

जिस साधक के मन मे
जरा सी भी यह भावना रही है
कि मेरी साधना से लोगो पर अच्छा
प्रभाव पडे, मेरी यश कीर्ति का प्रसार हो ऐसे
साधक की साधना बाह्य रूप से कितनी ही
कठोर एव अध्यात्म प्रसाधिका हो, कितु यथार्थ
मे वह भौतिकी होती है।

{1020}

मनुष्य जीवन
के उन्नयन का यदि कोई
मार्ग है तो वह
श्रेय मार्ग है।

{1021}

श्रेय मार्ग
परमात्मा तक
जाने का व्यवस्थित
और श्रृखलाबद्ध
मार्ग है।

{1022}

बच्चा रग-बिरगे खिलौनो
से कुछ समय खेलकर जल्दी ही
दुसरी तरफ आ जाता है,पर मानव वह
तो अपने हाथो से निर्मित बगले, फर्नीचर, आभूषण,
सिनेमाघर रूपी खिलौनो से पूरी जिदगी ही खेलता
रहता है, क्या कभी इन खिलौनो से
विराम लेने की मन मे आती है?

{1023}

चन्द्र से अधिक शीतल और
सूर्य से अधिक प्रकाश मनुष्य
जीवन मे ही पाया जाता है, उसे पाने के लिये
चौबीस घंटो मे से कुछ समय तो निकालिये
और समीक्षण साधना मे रत हो जाइये और
देखिये तो सही
कि केसा आनद मिलता है।

{1024}

मानव देह से
जहा सम्यक् दृष्टि
आत्मा आत्मदीप जगा
सकती है, तो उसी मानव
देह से आत्मा पतन
की ओर भी जा
सकती है।

{1025}

जब तक
लक्ष्यानुरूप गति नही होती,
तब तक आत्मा अभीष्ट
अर्थ सिद्ध नही
कर सकती।

{1026}

लाइट फिट है, कितु फिट
होने मात्र से अधकार दूर नही
होता। वैसे ही शास्त्रो को रट-रट कर मस्तिष्क
मे जमा लेने मात्र से अज्ञान
अधकार नही हटता। वे शब्द तो पोद्गलिक है,
मेटर है, जब इन शब्दो का रस हम पी
लेगे,अर्थ को हृदयंगम करेगे
तभी ज्ञानालोक प्राप्त होगा।

तीर्थकर देवो की तरणतारिणी वाणी
का एक अमृत वाक्य है–*"पढम नाणं तओ दया"*
–अर्थात् पहले ज्ञान और बाद मे क्रिया। यो कहा गया है कि ज्ञान
और क्रिया दोनो से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव होती है। किन्तु इस
वाक्य मे दोनो का क्रमाल्लेख है। प्रश्न उठता है पहले ज्ञान क्यों ?
सीधा सा उत्तर है–पहले जानेगे तभी तो तदनुसार क्रिया कर
सकेगे। हर क्रिया सप्रयोजन होती है और प्रयोजन के पूर्व निर्णय
किये बिना क्रिया कैसे की जा सकेगी ?

{1015}

मुख्य रूप से अपूर्ण शक्ति एक दिशा
से अधिक विकसित होती है। भौतिकता मे मुख्य
ध्यान रहता है तो आध्यात्मिक शक्ति का हास होता है। विभिन्न भौतिक
शक्तिया विकसित होती है। भौतिक शक्ति के चकाचौंध मे आध्यात्मिक
शक्तियां विस्मरण के गर्त की ओर प्रवाहित होती हुई अव्यक्त दशा को
प्राप्त होती है। यही कारण है कि आत्मा कुछ हद तक विकसित होकर
पुन कुण्ठित हो जाती है। यह एक तरह का चक्र–सा बन जाता है।
प्राणी किकर्तव्यविमूढता का अनुभव करता हुआ दु ख परम्परा का
निर्माण करता रहता है।

{1016}

ज्ञान और क्रिया की अन्योन्याश्रितता होती
है। ज्ञान का प्रकाश पहले होगा, तभी क्रिया का
चरण आगे बढ सकेगा। ज्ञानहीन क्रिया को त्याज्य बताया गया
तो, क्रियाहीन ज्ञान को भी विशेष महत्त्व नही दिया गया है। ज्ञान
के अभाव मे क्रिया अन्धी होती है तो क्रिया के अभाव मे ज्ञान
लगडा, किन्तु यदि अंधे और लंगडे मिल जॉय तो दोनो मिलकर
अपनी मजिल तक आसानी से पहुँच सकते है।

{1018}

{1019}

जिस साधक के मन मे
जरा सी भी यह भावना रही है
कि मेरी साधना से लोगो पर अच्छा
प्रभाव पडे, मेरी यश कीर्ति का प्रसार हो ऐसे
साधक की साधना बाह्य रूप से कितनी ही
कठोर एव अध्यात्म प्रसाधिका हो, किंतु यथार्थ
मे वह भौतिकी होती है।

{1020}

मनुष्य जीवन
के उन्नयन का यदि कोई
मार्ग है तो वह
श्रेय मार्ग है।

{1021}

श्रेय मार्ग
परमात्मा तक
जाने का व्यवस्थित
और श्रृखलाबद्ध
मार्ग हे।

{1022}

बच्चा रग-विरगे खिलौनो
से कुछ समय खेलकर जल्दी ही
दुसरी तरफ आ जाता है,पर मानव वह
तो अपने हाथो से निर्मित बगले, फर्नीचर, आभूषण,
सिनेमाघर रूपी खिलौनो से पूरी जिदगी ही खेलता
रहता है, क्या कभी इन खिलौनो से
विराम लेने की मन मे आती है?

{1023}

चन्द्र से अधिक शीतल ओर
सूर्य से अधिक प्रकाश मनुष्य
जीवन मे ही पाया जाता है, उसे पाने के लिये
चौबीस घटो मे से कुछ समय तो निकालिये
और समीक्षण साधना मे रत हो जाइये और
देखिये तो सही
कि कैसा आनद मिलता है।

{1024}

मानव देह से
जहा सम्यक् दृष्टि
आत्मा आत्मदीप जगा
सकती है, तो उसी मानव
देह से आत्मा पतन
की ओर भी जा
सकती है।

{1025}

जब तक
लक्ष्यानुरूप गति नही होती,
तब तक आत्मा अभीष्ट
अर्थ सिद्ध नही
कर सकती।

{1026}

लाइट फिट है, किंतु फिट
होने मात्र से अंधकार दूर नही
होता। वैसे ही शास्त्रो को रट-रट कर मस्तिष्क
मे जमा लेने मात्र से अज्ञान
अंधकार नही हटता। वे शव्द तो पोद्‌गलिक हे,
मेटर हे, जब इन शव्दो का रस हम पी
लेगे,अर्थ को हृदयंगम करेगे
तभी ज्ञानालोक प्राप्त होगा।

अशुद्धि अशुद्धि होती है और विशुद्धि विशुद्धि। अशुद्धि सम्पूर्ण बाहर भीतर को अशुद्ध और कलकित बनाती रहती है, जबकि विशुद्धि के बिना सम्पूर्ण वायु मण्डल को न तो प्रेरक बनाया जा सकता है और न ही कार्य क्षम। चाहे अशुद्धि भीतर हो या बाहर की वह दोनो ओर फैलने से रूकती नही है। बाह्य पर्यावरण की प्रदूषितता बाह्य पर्यावरण को निशचित रूप से प्रदूषित बनाती है। यह ससार वैसे ही दु खो से भरा हुआ है लेकिन सम्पूर्ण वायुमण्डल के प्रदूषित बन जाने से व्यक्तियो के दु खो का पार नही रहता है। अत प्रदूषण मुक्ति के कार्य को सर्वाच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

{1027}

अभिमान की मनोवृत्ति जीवन-विकास मे घोरतम शत्रु है। मन मे जब अभिमान का अश रहता है, तब वह किसी छोटे व्यक्ति से बात भी करना पसन्द नही करता। चाहे उस छोटे व्यक्ति से कितना भी महत्वपूर्ण कार्य क्यो न हो, उससे बातचीत करने पर अपना बहुत भला हो सकता हो, फिर भी अभिमान उसे बात नही करने देता। कभी-कभी यहा तक स्थिति आ जाती हैकि मृत्यु के क्षणो तक भी अभिमान उसे झुकने नही देता। झुकना तो दूर, बात तक नही करने देता। इस प्रकार अनेक तरह की हानियॉ तो वर्तमान जीवन मे प्रकट दिखने वाली होती है। इसके अतिरिक्त मन की कोमल वृत्ति से विकसित होने वाली अनेक शुभ वृत्तियॉ कुण्ठित हो जाती है। उनके कुण्ठित हो जाने से इस जीवन की आन्तरिक श्साक्तियॉ तो प्रय नष्ट होती ही है, जो लाख प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नही हो सकती। इसके साथ-साथ अगली स्थिति बिगड जाती है, क्योकि अभिमान की दशा मे दूसरे के प्रति सदा हीन भावना बनी रहती है। उसकी हीन भावना के समय अगले जन्म का आयुष्य-बन्ध भी नीच गति का होता है। उस गति के प्राप्त होने पर प्राय उसी के अनुरूप ही आगे के विचार बनते रहते है। इस क्रम से अनेक जिन्दगियॉ बरबाद हो जाती है। अत विचारवानृ इन्सान को चाहिए कि अपने मन के किसी भी कोने मे अभिमान न रहने दे।

{1028}

अहिसा को पूर्ण स्वरूप प्रदान करना है तो उसक दोनो पक्षो का पर्याप्त ज्ञान तथा समन्वित आचरण होना चाहिये। किसी को दु ख न दे-यह कर्त्तव्य है किन्तु किसी का दु ख देख कर हृदय द्रवित हो जाय और उसके दु ख को दूर करने के लिये अर्थात् उसे सुख पहुॅचाने के लिये प्रयास किया जाय-
वह करूणा, रक्षा, मेत्री, बधुता, प्रेम आदि सभी अहिसा के विधि मूलक पक्ष के अग हे।

{1029}

{1030}

भौतिक आनन्द क्षणिक (टेम्परेरी) आनन्द है। इससे ऊपर उठकर देखिये तो सही, असीम आत्मीय आनन्द सागर लहरा रहा है भीतर मे।

{1031}

'सम्यकत्व' अवस्था निज स्वरूप का विज्ञान कराने का प्राथमिक प्रयास है।

{1032}

प्राणापहरण (आत्महत्या) वस्तुत. दु ख मुक्ति नही, अपितु दु ख की दीर्घ परम्परा को बढाने वाला *महाद्वार* है।

{1033}

जो प्रवाह रूप मे बह जाता है, उसका कोई विशेष मूल्याकन नही होता। महत्व उसी का है जिसने अपने जीवन को कुछ विशेष मार्ग पर आरूढ किया हो।

{1034}

अध्यात्म के चरम विकास हेतु भौतिकता के साथ यथायोग्य सामजस्य होना अनिवार्य है। शरीर भौतिक है, जो अभौतिक आत्मा से सम्बन्धित है।

{1035}

तप संयम की आराधना हो केवल मुक्त स्वरूप की उपासना के लिये। भौतिक उपलब्धि के लिये नही।

{1036}

मनुष्य जहा प्राणियो की हिसा करता है, वहा स्वयं की भी हिसा करता है।

{1037}

घडीसाज घडी से भिन्न है,कार चलाने वाला, कार का निर्माता इजीनियर कार से अलग तत्व है इसी प्रकार वह विज्ञान स्वरूप अलग तत्व हे-आत्मा।

शुद्ध पर्यावरण के माध्यम से एक ओर तो पृथ्वी, वनस्पति, जल, वायु आदि के सूक्ष्म जीव स्वत सुरक्षित रहते हैं तो दूसरी ओर मनुष्य तथा उसके साथ रहने वाले अथवा वन प्रान्तर मे मुक्त विचरण करने वाले पशु पक्षी व अन्य प्राणी शुद्ध पर्यावरण की विद्यमानता से स्वस्थ रहते हैं। इस प्रकार उनके प्राणो की भी रक्षा होती है। इस दृष्टि से पर्यावरण की शुद्धता को बनाये रखने की जो वृत्ति होनी चाहिये, वह दयापूर्ण कोमल हृदय से ही फूट सकती है और सर्वहित को सर्वोपरि रख सकती है। {1037}

{1038} जीवन मे भूल कर भी उद्दण्डता को अवकाश नही देना चाहिये। यह वृत्ति जीवन की उष्णता बढा देती है। जो माधुर्य रस आने की अवस्था जीवन मे रहती है, उस रस मे यह वृत्ति अत्यधिक बाधक बन जाती है। इससे आनन्द की अनुभूति के बदले भावना की अनुभूति होने लगती है। एकाकीपन की दशा का अनुभव होने लगता है। कारण कि उस वृत्ति से प्राय सब के साथ विरोध की दशा बन जाती है। प्राय लोग सोचने लगते है कि ऐसे व्यक्ति से जितना दूर रहा जा सके उतना अच्छा। यह विचार प्राय हर व्यक्ति के मन मे चलता है। ऊपर से वे उसे प्रेम भी दिखा सकते है, पर अन्दर मे जो अलगाव के विचार रहते है, वे उस उद्दण्ड व्यक्ति को स्वयं परास्त करके स्वयं के मन मे शल्य की तरह चुभते हुए एकाकीपन का अनुभव कराते रहते हैं, जिससे सब साधन–सामग्री रहने पर भी वास्तविक सुख–शान्ति का अनुभव नही हो पाता। अत इस वृत्ति से प्रत्येक व्यक्ति को सावधान रहने की आवश्यकता है।

स्वाध्याय की प्रणाली ही ज्ञान–साधना की पुष्ट पृष्ठभूमि होती है। स्वय अध्ययन कर के जो ज्ञान ग्रहण और सम्पादन कियाजाता है, वह सुबोध भी होता है तो स्मृतिगम्य भी। इतना ही नही, स्वाध्याय की नियमितता से मौलिकता की खोज होती है और चिन्तन की नई दिशाएँ मिलती है। नियमित चिन्तन ही श्रेष्ठ जीवन की सुरक्षा का सम्बल होता है क्योकि इसी धरातल से आत्मावलोकन तथा आत्मालोचन की पद्धति का विकास होता है। {1039}

{1040}

भौतिक और आध्यात्मिक
दोनो पडौसी है। यदि पडौसी-पडौसी लडने
लग जाये तो जीवन शाति से आगे
नही बढ सकता है, इन दोनो मे
उचित सामजस्य रखिये ।

{1041}

आध्यात्मिकता
एव भौतिकता के
सही ज्ञान के अभाव मे यथा
योग्य हेय-उपादेय की
स्थिति भी नही
बन सकती।

{1042}

जो आध्यात्म
को सही रूप से
जान लेता है,
वह भौतिक स्वरूप को भी
यथार्थता के परिप्रेक्ष्य मे
जान लेता है।

{1043}

आज विश्व शाति खतरे
मे पडी है, बडे-बडे राष्ट्र एक दूसरे के सामने
कमर कसकर खडे हो गए है, परन्तु उनमे
यदि आध्यात्मिक प्रवेश कर जाए तो सघर्ष
का नामोनिशान ही न रहे।

{1044}

मानव जीवन ऐसे ही जा
रहा है-कपूर की टिकिया की
तरह। यदि सुगध लेना है तो ले लो और
उड गया तो हाथ मे कुछ
भी नही आने वाला है।

{1045}

भौतिक
पदार्थो की जो
जीवन मे चाह है, लोभ हे,
वही संसार का
भंवर है।

{1046}

आगम (शास्त्र),
जीवन का आलोक
है। जिसके प्रकाश
मे निज-पर स्वरूप
को देखा जा
सकता हे।

{1047}

कपूर की टिकिया को
तिजोरी मे बद करके रख लो, तो
क्या वह टिक सकेगी ? नही। वैसे ही हमारी
आयुष्य उडती जा रही है, इसे कितना ही
सुरक्षित रखने का प्रयास करो, वह रह नही
सकती।

वस्तुत· सस्कार मनुष्य के कृतित्व का
ही प्रभाव रूप होता है जो परम्परा मे ढलकर
सस्कृति का स्वरूप ग्रहण करता है। ये सस्कृतियॉं ही विभिन्न
काल खडो, देशो अथवा जातियो के गुणावगुणो की परिचायक
होती है। सस्कार जब कृति की क्रमिक श्रृंखला से जुड जाते है,
तभी वे संस्कृति बनते है। संस्कृति और कुछ नही, प्रतिष्ठित मूल्यो
तथा निर्मित सस्कारो की थाती ही तो होती है।

{1048}

इन्द्रिय और द्रव्यमन के साथ भावमन के
अन्तर्गत उपयोग-मन की आसक्ति जिस भोतिक
पदार्थ के प्रति बनती है, उस पदार्थ के अनुरूप अत्यधिक
सूक्ष्म परमाणु का स्कंदभाव मन के साथ ओत-प्रोत होते हुए भी बीजरूप से
आत्मा के साथ संयुक्त हो जाता है जो कि कर्मसंज्ञा के रूप मे कहलाने
लगता है। उस स्कन्ध की अवधि भी भावमन के अन्तर्गत ही अध्यवसायसंज्ञक
परिणाम के अनुसार बनती है। जब अवधि की समाप्ति का समय आता है,
तब वह स्कन्ध फल देने की स्थिति मे अंकुरित होकर मानो झाड का रूप
धारण करता है। उस समय द्रव्यमन और इन्द्रियो पर यथासम्भव असर
होता है एव उपयोग की स्थिति के साथ अच्छे बुरे का अनुभव होता है और
उस अवस्था को सही रूप मे नही पहचानने के कारण आसक्ति और पुनः
उसके अनुपात से सूक्ष्म स्कन्ध की बीजरूप में सयुक्त होने की प्रक्रियाएँ
बनती-बिगडती रहती है। इन सबका यथास्थान
सूक्ष्मज्ञान करना अत्यावश्यक है।

{1049}

व्यक्ति से समाज का कोई पृथक् अस्तित्व
नही होता है और वस्तुत. व्यक्ति-व्यक्ति मिल
कर ही तो विभिन्न प्रकार के समूहो का निर्माण करते है तथा
समूहो का समूह ही समाज कहलाता है। फिर भी मनुष्य की व्याख्या
करते समय उसे प्रधान रूप से सामाजिक प्राणी कहा जाता है,
क्योकि समाज की रचना की क्षमता समस्त प्राणियों मे केवल
मनुष्य की ही होती हे जो उसका व्यवस्थित रूप से सगठन
करता है तथा प्रबन्ध चलाता है।

{1050}

{1051}

स्वत्व की रक्षा
के लिये वैभाविक वृत्तियो
का विलगीकरण आवश्यक है।
वैभाविक परिणतिया कभी भी
आत्मा को त्राण या शरण देने
मे समर्थ नही हो सकती।

{1052}

बार-बार
मोहासक्ति मे रहने
वाला, साधक न संसार के
इस पर रह पाता है, न उस
पार, उसके साथ उभय जन्म
बिगड जाते है।

{1053}

शास्त्र, भवसागर
मे डुबते हुए प्राणी के
लिए एक नौका रूप है,
अवलम्बन स्वरूप है।

{1054}

साधक को अपने अन्तरंग
का विचक्षण प्रज्ञा से समीक्षण करना
होगा, सम्यक् प्रकार से वीक्षण करने के बाद ही
सशोधन किया जा सकता है। जैसे ककर युक्त
धान्य से सशोधन द्वारा ककरो से धान्य अलग
किया जा सकता है वैसे
ही आत्मा और कर्म की एकाकारता का समीक्षण
कर सत्पुरुषार्थ के द्वारा
उनका सशोधन करना चाहिए।

{1055}

जो साधक अध्यात्म
साधना मे तन्मय बनकर
समीक्षण ध्यान से स्वात्मा का
सशोधन करता है, वह
एक दिन परमात्म भाव
को पा लेता है।

{1056}

रक्षाबंधन पर्व पर
धागा बाधना महत्वपूर्ण कार्य
है, परन्तु धागा बाहर का नही
हो (धागे को गुण भी कहा
जाता है) गुण का धागा आत्मा
के बाध दिया जाय।

{1057}

बाहरी बधन
तोडना तो फिर भी
आसान है, पर मोह के
बधन तोडना मुश्किल है।

{1058}

आज मनुष्यो का गोरव,
समाज का गोरव, धर्म का गौरव
ये सब आपको रक्षा सूत्र बाधने को तत्पर हे,
क्या कोई भाई रक्षा बधाने को तैयार हे? जब
उनके ऊपर आपत्ति आती हे,धर्म समाज, राष्ट्र
और विश्व का गौरव नष्ट होता हो तो भारतीय
अपना कर्तव्य अदा करने को
तेयार हे या नही?

{1059}

भाषा का जितना अधिक महत्त्व होता है, विचारणीय है कि उसका विवेक भी उतना ही अधिक प्रखर होना चाहिये। एक-एक बात और बोल का ध्यान होना चाहिये कि उसके बोलने से उसके जीवन की कैसी झलक दूसरे को मिल रही है।

{1060}

सस्कार वह शक्ति है जो मनुष्य को समाज से जोडती है तो उसे समाज की निरन्तरता का भी बोध कराती है।

{1061}

कर्त्तव्य-पालन एक ऐसी सबल और सुन्दर प्रक्रिया है जो यदि निर्बाध रूप से चलती रहे तो जीवन की सस्कृति एव प्रगति का सब कुछ उसमे समाहित हो जाता है।

{1062}

धर्म ही आत्मा का प्राण है क्योकि धर्म के बिना आत्मा का अस्तित्व शून्य जैसा होता है अत· धर्म की उपेक्षा करने का साफ साफ मतलब यही निकलेगा कि अपनी ही आत्मा की उपेक्षा की जा रही है।

{1063}

ब्रह्मचर्य जीवन है। उससे शक्ति का विकास होता है। जहॉ शक्ति हे वहॉ रोगो का आक्रमण नही होता है। अशक्त एव दुर्बल व्यक्ति ही रोगो द्वारा सताये जाते हे। निरोग बनने के लिये ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करे।

{1064}

यदि बहुमुखी तेजस्विता से कोई अपने जीवन को विभूषित बनाना चाहता है तो उसे अधिकतम निष्ठा एव कठोरता के साथ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। एक ब्रह्मचारी व्रत की आन्तरिकता मे अलौकिक शक्तियो का अपार भण्डार होता है।

{1065}

कोई भी कुशल राजनेता बोलता बहुत मीठा है, भले-भले आश्वासन भी देता है, किन्तु उसकी वह कथनी जब करनी मे नही उतरती हे तो निन्दा का पात्र बनता हे उसका भाषा-विवेक ही तो। अत संस्कारो के निर्माण मे भाषा-विवेक को पूरा-पूरा महत्व देना चाहिये।

{1066}

सस्कारहीनता कहेगे कि जो सबसे पहिले निज के स्वार्थो पर ही अपने ध्यान एव पुरुषार्थ को केन्द्रित बना दे।

{1067}

हरे वृक्षो मे जान है।
उनको कटवाना,उनके फल,
फूल पत्तियो को उखाडना हिसा है।
हिसा कभी धर्म नही होती। अपने
प्राणो की जब हम रक्षा करना
चाहते हे तो क्या उन प्राणियो
का रक्षण करना हमारा
दायित्व नही है?

{1068}

जैसे अग्नि थोडे
समय मे रूई के ढेर को भस्म
कर देती है उसी प्रकार
कषाय आत्मा के समस्त
गुणो को भस्म कर देते है।

{1069}

मन जब
वीरता धारण
कर लेता है, तो वह सब
कुछ कर
सकता है।

{1070}

स्वाध्याय का पहला फल
चिन्तन शक्ति के उद्‌भव एव विकास
के रूप मे मिलता है। यह चिन्तन शक्ति जितनी
सबल होती है,समझिये कि जीवन शैली उतनी
ही शुद्ध और विकार रहित बनती हे।
चिन्तन,ज्ञान का दूरबीन होता हे जो तत्वो व
सिद्धातो की सूक्ष्मता
को हृदयगम कराता है।

{1071}

वन्दना शरीर से
बढकर आत्मा का मोड
बनती है। यह कायिक क्रिया
समुन्नत होती हुई सूक्ष्म आत्मिक
क्रिया बन जाती है तथा सम्पूर्ण
वातावरण को विनय सम्पन्न
बना देती हे।

{1072}

लोभ का कही अन्त
ही नही होता। ज्यो-ज्यो
धन बढता हे त्यो-त्यो लोभ भी
बढता जाला हे,ओर ज्यो- ज्यो
लोभ बढता हे
त्यो-त्यो पाप बढता हे।

{1073}

अगर अपनी
आत्मा की रक्षा
करना है, उसे निर्भय
बनाना हे तो अप्रमत्त भाव
जागृत करना होगा।

{1074}

स्वाध्याय से प्राप्त ऊर्जा की
शक्ति के फलस्वरूप आध्यात्मिक क्षेत्र मे कई
सिद्धियॉ प्राप्त की जा सकती हे किन्तु
सामान्यतया भी ऐसे सद्‌गुणो का विकास किया
जा सकता हे जिनकी सहायता से व्यक्ति एव
समाज के जीवन को सवारा जा सके।

{1075}

'स्व' का शुभ कल्याण आत्मा को सन्मुख रखने से ही सम्भव बनता है। जो आत्मा की अधि-सन्मुख बनावे, वह अध्यात्म है और इससे संबंधित ज्ञान को आध्यात्मिक ज्ञान कहा जाता है। यह आध्यात्मिक ज्ञान ही आत्म स्वरूप की पहिचान कराता है तथा उसके कर्मावरणो को दूर हटाकर उसे परम विशुद्ध बनाने के पुरुषार्थ का आह्वान करता है।

{1076}

वन्दना सदा और सर्वत्र विजयी होती है-वह कही भी, कभी भी, किसी से भी पराजित या अपमानित नही होती है।

{1077}

अन्न वै प्राणा जल वै प्राणा - अन्न ही प्राण है, जल ही प्राण है, इसलिए अन्न और जल का सदुपयोग करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। उनको बर्बाद करना अथवा उनका दुरूपयोग करना धार्मिक एव नैतिक अपराध है। इन अपराधो से बचना और बचाना प्रत्येक इन्सान का प्राथमिक धर्म है।

{1078}

पर्यावरण के प्रदूषणो का निवारण तथा ऐसी स्थायी व्यवस्था जिससे कि प्रदूषण निवारण का काम दु साध्य या असाध्य न हो-आज की प्रमुख आवश्यकता हो गई है क्योकि इससे ही सर्व जीवो की हिंसा दूर करने तथा उनकी रक्षा करने का उपाय किया जा सकता है।

{1079}

पर्यावरण की शुद्धता अथवा अशुद्धता ससार को प्रभावित किये बिना नही रह सकती हे। पृथ्वी,वायु,जल, वनस्पति आदि की स्थिति रूप आवरण एक प्रकार से सारी धरती और आकाश को घेरे रहती है और इसके घेरे मे मनुष्य आदि सभी प्राणी आ जाते है, जो पर्यावरण से आवृति रहते है।

{1080}

पर्यावरण रक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी होता हे कि वनस्पति, जल, वायु, पृथ्वी तथा उनके उत्पादनो की गुणवत्ता का श्रेष्ठ स्तर बनाये रखा जाय, जिसके कारण सूक्ष्म एव स्थूल सभी प्राणियो के प्राणो का पोषण यथावत रीति से होता रहे।

{1081}

मनुष्य अपने आत्म स्वभाव मे स्थित रहने का पुरुषार्थ करें। यह जिस दिन सम्पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेता है, उस दिन आत्मा इस ससार से मुक्त होकर सिद्ध रूप मे ज्योलि मे ज्योति स्वरूप रूप बनकर सदा काल के लिये विराजमान हो जाती हे, अत स्व भाव मे स्थिति से ही धर्म की प्राप्ति होती है।

{1082}

विलासमय जीवन व्यतीत करके विलास की गोद मे मरने वाला उस कीट के समान हे जो अशुचि मे ही उत्पन्न होकर अशुचि मे ही मरता हे।

{1083}

मन जो बाहर के
नश्वर सुखो की तरफ
भागता है और इन्द्रियो की गति
को भी उनके लिये भ्रष्ट बनाता
है,यदि आत्म नियत्रण मे आ जाय
तो वही आत्म- विकास की एक
प्रबल सहायक शक्ति
बन जाता है।

{1084}

त्यागमय जीवन की
धारा के प्रवाह को बनाये
रखने के लिये तीनो काल
मे चलने वाले आचरण का अंकन
किया गया है। इसका परिचय
प्रतिक्रमण की क्रिया
से मिलता है।

{1085}

दूसरो के हित
मे अपना हित तो
स्वय ही समा जाता
हे-स्वहित तथा परहित एक
तुला पर आरूढ
हो जाते है।

{1086}

आत्मा जब स्वस्थ चेतना और
ज्ञान मे रमण करती है याने कि
धर्म साधना मे मगन होती है, तब वह स्वभाव मे
विचरण करती है तब अपूर्व सुख की अनुभूति
करती है और जब वह रूप,रस,गंध,वर्ण और
स्पर्श के विषयो मे रमण करती है तब वह
तदनुरूप जड पदार्थो मे विचरण करती है।

{1087}

श्रेष्ठ जीवन का
रहस्य कोई रहस्य नही
है, वह तो प्रत्याख्यान और त्याग
की खुली पुस्तक है जिसे हर कोई
पढ सकता है तथा व्रताचरण से
जीवन की श्रेष्ठता को प्राप्त
कर सकता है।

{1088}

आत्म पुरुषार्थ
की सक्रियता त्याग तप
के आचरण को कठोरतम बनाती
जाती है ओर इस
आत्मा का स्वरूप
समुन्नत होता जाता हे।

{1089}

किसी को
भी किसी के प्राण
लेने का अधिकार नही हे
चाहे वे उन प्राणो के
रचयिता ही क्यो
न हो।

{1090}

हम जिधर चाहे उधर जा
सकते है। एक ससार का मार्ग
है, दूसरा मुक्ति का मार्ग है। एक
बन्धन का मार्ग हे, दूसरा स्वाधीनता का मार्ग
है। स्वाध्याय हमे दिशा देता हे कि हम संसार
ओर बन्धन के मार्ग पर नही, मुक्ति
ओर स्वाधीनता के मार्ग पर चले।

{1091}

प्रदूषण चाहे बाहर के पर्यावरण मे आवे या मन के पर्यावरण मे-सहन नही किया जाना चाहिये तथा उसके शुद्धिकरण के यथासाध्य शीघ्र प्रयत्न करने चाहिये ताकि समग्र रूप से वायुमण्डल की प्रदूषण मुक्ति अन्ततोगत्वा आत्म-विकास को प्रेरित कर सके। बाह्य और आन्तरिक पर्यावरण पृथक नही होते-वे एक दूसरे को अपनी शुद्धता अथवा अशुद्धता से तदनुसार अवश्यमेव प्रभावित करते है तथा जीवन निर्माण को ढालते हैं।

{1092}

सत्य और अहिसा को मानव जीवन के साध्य ओर साधन मान ले तव भी सर्वोच्च विकास साधा जा सकता है क्योकि झूठ और हिसा के त्याग मे सभी दुर्गुणो का त्याग समा जाता है।

{1093}

सभी प्रकार के प्रदूषणो से मुक्ति पाने के लिए यह आवश्यक है भीतर के प्रदूषणो से मुक्ति पाई जाय तथा आन्तरिक पर्यावरण का सुधार किया जाय। मूलत. अन्त करण की विशुद्धि ही सभी प्रकार की अशुद्धियो के निवारण की कारण-भूत बनती हे।

{1094}

क्रोध से पराजित व्यक्ति कभी भी सुख का अनुभव नही करते है। क्रोध एक पागलपन लाता हे-व्यक्ति के मन मानस मे ऐसा विष फैला देता है कि वह शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक रूप से क्षत-विक्षत हो जाता है।

{1096}

मनुष्य के मन मे धन, सम्पत्ति, पद, अधिकार, सत्ता या भोग्य सामग्री के प्रति जो ऐसी मूर्छा होती हे वह उसकी तृष्णा का दुष्परिणाम होता हे। इच्छाओ का कभी अन्त नही होता ओर उन इच्छाओ की लालसा मे भडकी हुई तृष्णा भी अन्तहीन होती हे।

{1097}

काम, क्रोध आदि विषय कषाय रूप विकारो का इस जीवन से निष्कासन समझिये कि एक दु साध्य कार्य होता हे जिसे सम्पन्न करने के लिये अखूट आत्म विश्वास, सतत पुरुषार्थ प्रयोग एव समत्त्व योग की सक्षमता का सद्भाव पूर्वक विकास किया जाना चाहिए।

{1098}

मन की शक्ति अपार और अद्भूत होती है। यह मन ही मनुष्यो के बन्धन का कारण होता हे तथा इसी मन की सहायता से सभी प्रकार के बन्धनो से मुक्ति भी प्राप्त की जा सकती है।तो इसके अपने ही प्रदूषण से मुक्ति प्राप्त करना भी निश्चय रूप से इसी मन के हाथ मे हे। कारण अपने भीतर दोष-प्रदोष का प्रवेश भी तो यह मन अपनी असावधानी तथा अपने अविवेक से ही होने देता हे।

{1099}

जीवन के विकासशील उद्देश्य के निर्धारण तथा कार्यान्वयन पर प्रत्याख्यान, त्याग ओर व्रताचरण का बहुत ही कार्य -कारी प्रभाव होता हे तथा प्रगति सरल ओर सुसाध्य बन जाती हे।

{1100}

दान देने के लिये
धन का अपने पास
सद्भाव आवश्यक है, किन्तु धन
का सद्भाव हो-इतना मात्र ही
पर्याप्त नही है। धन हो और
हृदय की उदारता भी हो, तब
दान दिया जा सकता है।

{1101}

दान वास्तव मे हृदय
की करूणामय या श्रद्धामय
भावना से उद्भूत आचरण या कि
सहयोग होता है, जिसके पीछे न
कोई स्वार्थ होना चाहिये और न ही
किसी के प्रतिदान का विचार।

{1102}

जैसे पृथ्वी
के आधार बिना
कोई वस्तु टिक नही सकती
वैसे ही सामायिक का आश्रय
पाये बिना दूसरे गुण टिक
नही सकते।

{1103}

मन का शुद्धिकरण आत्म-
पुरुषार्थ को कर्म क्षय की दिशा मे
अग्रगामी बनाता है ओर उसे कर्म मुक्ति के
समीप ले जाता हे। तब मन सयम की सीमाओं
मे स्थिर बनकर शुद्ध स्वरूप की ओर अग्रसर
होता हुआ आत्मा के अनुशासन मे चलने लगता
है जिसके फलस्वरूप उसके फिर से
प्रदूषणग्रस्त बनने की सम्भावना
कम रह जाती है।

{1104}

दान मूलत
भावनात्मक होने से धार्मिक
सुकृत्य तो है ही, किन्तु दान की
यदि व्यवस्थित रूप रेखा हो तथा
सविभाग का समुचित व्यवहार तो
दान का सुपरिणाम अर्थ के
विकेन्द्रीकरण मे प्रतिफलित
किया जा सकता है।

{1105}

दान का अन्तर्भाव
होता है देने की उत्सुकता,
जो भी अपने पास हो और जो भी
लेने वाले के लिए अनुकूल हो।
दान सभी प्रकार से आत्मोन्नायक
यह आपेक्षिक कथन है।

{1106}

"अहिसा परमोधर्म"
धर्म का मूल भाव अहिसा
हे। सब पुरुषो का परम
कर्त्तव्य बन जाता है कि धर्म
की रक्षा करे। जो धर्म की
रक्षा करता हे, धर्म उसकी
रक्षा करता हे।

{1107}

पास मे पडे गन्ने के टुकडे को
देखने मात्र से रस का आस्वादन नही
हो सकता। रसास्वादन तभी होगा जव उसे
चूसेगे, रस को लेगे, नीरस को फेकेगे, वेसे ही
शास्त्रीय वाणी का रस सिर्फ याद करने मात्र से
नही, अपितु उसके साथ चिंतन मनन,
आत्म-समीक्षण व आत्म- सशोधन
करने से ही आ सकेगा।

{1108}

पंच परमेष्ठी को नित प्रति वन्दना करने से भव्य आत्माओ को प्रतिबोध मिलता है, अपनी स्वरूप शुद्धि की ओर उनकी रूचि जागती है तथा आदर्श के समक्ष रहने से धर्म मे कठिन पुरुषार्थ करने की प्रवृत्ति पनपती हैं। यह वंदना संकट चूर्ण करने और आशा पूर्ण करने वाली होती है तथा इससे परमानन्द की प्राप्ति होती है।

{1109}

समभाव के बिना ससार नरक के समान है। उसके अभाव में जीवन अस्थिर, अशान्त, क्लेशमय और संताप–युक्त बनता है।जीवन मे जितनी मात्रा में समभाव की वृद्धि होगी उतनी ही मात्रा में सुख मे वृद्धि होगी।

{1110}

जो लोग भोजन,वस्त्र मकान आदि के उपयोग मे ही अपने जीवन की सार्थकता समझते है, वे घोर अन्धकार में हैं।जीवन की सार्थकता आत्मा के उस विकास में निहित है जो न केवल क्षुद्र वर्तमान में ही उपयोगी एवं कल्याणमय है वरन् जिससे अनन्त मंगल की प्राप्ति होती है।

{1111}

दान देने मे अपने हृदय की उदारता परमावश्यक है। हृदय की यह उदारता धार्मिक संस्कारो से बनती और पनपती है तथा मानवीय संवेदना से परिपूरित हृदय हो तब भी उदारता निखरती है। दान आचरण भी होता है तो भाव भी और दान कर्त्तव्य भी होता है तो करुणा का परिणाम भी।

{1112}

सम्पूर्ण मानव जाति की दयनीय स्थिति मिटाने के लिए एक ही मार्ग है। और वह है – समता का आदर्श। इस आदर्श को उपस्थित करने के लिए व्यर्थ के भार स्वरूप रीति रिवाजो को छोडना परिवार, समाज, राष्ट्र के समुचित विकास के लिए आवश्यक है।

{1113}

केवल विनाश कर देना ही क्रान्ति नही होती है रीति रिवाजो का जो भार और दोष है उसे निकाल दीजिये लेकिन यही पर रूकिये नही। सही काम आगे होता है कि रीतियो को नया स्वरूप प्रदान किया जाय।

{1114}

वन्दनीयो को श्रेष्ठ भावो के साथ की जाने वाली वन्दना सदा अपराजेय रहती है। वह किसी के भी हाथों अपमानित अथवा पराजित नही होती है। झुकने वाले माथे को तो सभी हाथो हाथ उठाते हैं, बल्कि उत्कृष्ठ गुणवत्ता के विकास के साथ तो उस माथे को अपना माथा झुकाते है। अतिशय नम्रता सबका मान भंग कर देती है और सामने वाले को भी नम्रता से ओतप्रोत बना देती है।

{1115}

यह आत्मा ही सामायिक याने समत्वभाव रूप है और यही आत्मा सामायिक के अर्थ विशुद्धि के रूप में सुप्रकाशित होती है अर्थात् आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ।

{1116}

जहा परिवार, समाज
एव राष्ट्र की निदा होती हो
वहा मनुष्य गर्दन नीची करके
चलता बने, जहा बाहर के कर्त्तव्य
का, बाहर के गौरव की रक्षा का
भी ख्याल नही तो वह
आध्यात्मिकता की रक्षा
क्या कर सकेगा ?

{1117}

जितने कदम
बढेगे, उतना ही शहर
को नजदीक लेगे, जितना मोह
का त्याग करेगे
उतने ही मोक्ष के
नजदीक आयेगे।

{1118}

छोटी सी चूक
से कई बार बडे
बडे दगे भडक उठते
है और सैकडो निर्दोष
प्राणियो का होम
हो जाता है।

{1119}

एक माँ को ममता का भडार
माना जाता है और ममता ही मातृत्व
का सर्वोच्च लक्षण है। इस गर्भपात के रूप मे
जब माँ ही अपने मातृत्व के साथ ऐसा क्रूर
खिलवाड करती है तो क्या वह माँ के माथे पर
कलक का काला टीका नही होगा? अपनी रचना
के साथ माँ का ही इस रूप मे क्रूर उपहास
अकल्पनीय ही कहलायेगा।

{1120}

हर आत्मा अपनी
शक्ति का परिपूर्ण जागरण कर
सकती है, आवश्यकता है
-आत्मिक टार्च से इन्द्रियो द्वारा
आने वाले प्रकाश को सही दिशा
मे नियोजित करने की।

{1121}

धन, परिवार,
वैभव से अगर कोई व्यक्ति
यह कल्पना करता हो कि मेरा
कल्याण हो जाय तो यह
त्रिकाल मे भी सभव नही।

{1122}

शरीर तो
एक दिन जाने वाला है,
इसमे से जितना माल
निकालना चाहो,
निकाल लो।

{1123}

वन्दना और विनय एक ही सिक्के के
दो पहलू होते है। विनय से जब किसी का
हृदय ओतप्रोत होता है तभी सहज भाव से वन्दना
की क्रिया सम्भव होती है। वन्दना कायिक क्रिया
होती है किन्तु इस क्रिया से शरीर के सारे अग
प्रत्यगों मे ही एक सरलता का झुकाव नही आता वल्कि
भीतर का मन भी विनयावनत हो जाता है।
सम्पूर्ण जीवन मे विनम्रता,मृदुलता और
सरलता की त्रिवेणी वहने लगती है।

{1124}

संस्कार शब्द भी कार्य की
समानता अथवा समता का बोधक है।
इससे सम्यक् स्वरूप का बोध भी लिया जा सकता
है।जो करें वह समत्व से जुडा हुआ हो तो सस्कार
कहेगे। यह व्याख्या कुछ अटपटी लग सकती है
क्योकि सामान्य धारणा यह है कि सस्कार वह है जो
दिया-लिया जाता है। यह धारणा भी गलत नहीं है।
संस्कार तो किया जाता है किन्तु उसका
प्रभाव अवश्य लिया दिया जाता है।

{1125}

भौतिकता में
उलझा आज का
वैज्ञानिक चर्म चक्षुओ से दृष्ट
पदार्थों को ही अन्वेषणा कर
सकता है, अन्तरंग के सूक्ष्म
तत्त्वो की नहीं।

{1126}

जैसे पानी मिले दुग्ध
मे हस, चोच के जाने से
दुग्ध व पानी अलग —अलग हो जाता
है, वैसे ही सर्वज्ञ के नाम पर कही गई
छद्‌मस्थ की वाणी का विभागीकरण,
सत्य का स्पष्टीकरण, शास्त्र विज्ञाता
व्यक्ति कर लेते हैं।

{1127}

विश्व का वैभव एक
तरफ, विश्व की सारी संपत्ति
एक पलडे में रख दी जाय और
इधर मानव जीवन का मूल्य, मानव
जीवन की गरिमा दूसरे पलडे में रख
दी जाये, तो भी इसकी तुलना
नही की जा सकती।

{1128}

युवकों मे होश एवं जोश
दोनों ही होने चाहिए। केवल
होश रखें, जोश नहीं रखे या केवल
जोश रखें परन्तु होश नहीं रखे तो काम
नहीं चलेगा। जब दोनो आ जाते हैं तो
कोई कारण नहीं कि गति
और प्रगति में रूकावट हो।

{1129}

पानी गतिशील होता
है, वह कही भी गिरे, रास्ता
बना लेता है, यदि मानव की गति
पानी की तरह बन जाए,वह शीतल
बन जाय क्षमाशील होकर चल पडे तो
उसकी गति कैसे रूक सकती ?

{1130}

रोग निरोध के उपाय उसकी
चिकित्सा से अधिक फलदायी होते हैं।
गर्मपात जैसी बुराइयो और महापाप के कुकृत्यो को
सीधे तौर पर भी रोकिये किन्तु इनके कारणो को ही
बुनियादी तौर पर निष्प्रभावी बना सकें तो सफलता
अधिक मात्रा मे और अधिक तेजी से मिल सकेगी।
मूल में दिलो और दिमागो को स्वस्थ एव सदाचारी
दिशा मे मोडने का प्रयत्न किया जाय-वह निश्चय ही
अधिक प्रभावकारी होगा।

{1131}

मानव तन
की बात तो जाने
दीजिये- विशिष्ट शक्ति
संपन्न देव तन भी स्थायी
रूप से नही
रह सकता।

{1132}

भंग की विकृति
मस्तिष्क के ज्ञान
तंतुओं को इतना अधिक विकृत
बना देती है कि इससे मानव की
क्षीर-नीर विवेकिनी बुद्धि विलुप्त
सी हो जाती है।

{1133}

आज तक कोई
भी आत्मा भोतिक
आसक्ति से सबद्ध हो अपने
आपकी रक्षा
नही कर पाई।

{1134}

आत्म
सशोधन तभी होगा,
जब आत्मा, आत्मा का
ही समीक्षण करने
लगेगी।

{1135}

पंच परम इष्ट होते है, नमस्कार
महामत्र के पाच पद-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य,
उपाध्याय और लोक मे रहे हुए सर्व साधु। इन्हे
की जाने वाली वदना सर्वोत्कृष्ट वदना होती है
क्योकि ये पंच परमेष्ठी संसार की समस्त
आत्माओ के लिए परम उपकारी होते है।
उनके चरम कल्याण के मार्गदर्शक होते है।

{1136}

भव्य पुरुष को
चाहिये कि जब तक मन-वचन
काया की ऊर्जा क्षीण नही होती,
उससे पूर्व ही सत्पुरुषार्थ द्वारा
आत्मिक जागृति लाने का
प्रयास करे।

{1137}

बाह्य पदार्थो के
सचालन, नियमन, सरक्षण,
संवर्द्धन मे आत्मा मुख्य रूप
से कार्यकारी
होती है।

{1138}

आध्यात्मिक
बल जहां होता
है, वहां भोतिक
बल टिक नही सकता।

{1139}

गुरु का पद अतुलनीय होता है,
क्योंकि उनके द्वारा ही अरिहंत एवं
सिद्ध भगवान् का परिचय मिलता है तो उन्ही के
श्रीमुख से धर्म की अमृतवाणी कंठ मे उतरती
है। वे ही संसार रूपी समुद्र से पार उतारने वाले
जहाज है। तभी तो कवि ने कहा है कि-''गुरु
गोविन्द दोनो खडे, काके लागूँ पांय। बलिहारी
गुरुदेव की गोविन्द दियो वताय।''

{1140}

त्यागवादी जीवन शैली को अपनाने के बाद ही सयम के प्रति आस्था विकसित होगी तथा व्यक्त भी होगी। त्याग और सयम परस्पर सम्बन्धित ही नही, अन्योन्याश्रित भी होते हैं। त्याग की भावना होगी तभी संयम का विचार फलीभूत होगा। सयम का विचार होगा तभी त्याग भावना पन–पेगी। इस कारण संयम के प्रति आस्था के सुदृढ बनने से शील संस्कार समुन्नत होते हैं जो जीवन को विकारो की दिशा में पतित बनने से रोकते हैं।

{1141}

सर्वत्यागी साधु को स्वत्व की आराधना के साथ अन्यो को भी आध्यात्मिक साधना का ही उपदेश देना चाहिये।

{1142}

जीवन रूपी रथ के दो पहिये है। एक तरफ अपना कर्म (भाग्य) है तो दूसरी ओर पुरुषार्थ। इन दोनो के संयोग से ही जीवन रथ निश्चित दिशा की ओर गतिमान हो सकता है।

{1143}

अध्यात्म जीवन मे अध्यात्म के वैज्ञानिकों ने कैसे अनुसंधान किया, उस ओर न जाकर उन्होंने जो आविष्कार किया है, उसे अपनाना ही अभीष्ट है।

{1144}

अण्डा मांसाहार है, शाकाहार नही। अण्डाहार आत्मिक जीवन को क्षत–विक्षत करने के साथ ही शारीरिक एव मानसिक जीवन को नष्ट करने वाला है।

{1145}

मानव अपने जीवन को निखार सकता है, अपनी लाइट जगा सकता है, परन्तु जगेगी कब ? जबकि खुद की तैयारी होगी।

{1146}

विनय के भाव को अभिवृद्ध बनाने वाली बाह्य क्रिया होती है वन्दना, जो बाहर और भीतर को आन्दोलित कर देती है तथा प्रत्येक वृत्ति व प्रवृत्ति मे से मान को समाप्त करती है। वन्दना विनयावनत बना देती है समूचे अन्त करण से उठने वाले प्रत्येक भाव को। विनय की आर्जवता, मार्दवता और मृदुलता मे डूबकर तब प्रत्येक भाव स्व–पर कल्याण मे तल्लीन बन जाता है।

{1147}

आगम मे आगत आध्यात्मिक साधना के मध्य भूगोल खगोल का वर्णन प्रासगिक है, लक्ष्य नही।

{1148}

अगर आप सभी
प्रभु महावीर के सही माने मे
अनुयायी है तो आप
भी जन्मना जाति वर्ग से हटकर
कर्मणा सिद्धान्त
को अपनाइये।

{1149}

युवक सोचे कि
ये बुजुर्ग है, अनुभवी
है और इनमे होश है तो हम
युवक जोश के साथ
इनकी छत्रछाया मे
क्रान्ति करे।

{1150}

जब व्यक्ति
के अहकार को
चोट लगती है तो
वह तिलमिला
उठता है।

{1151}

वीतरागता ही आत्मा का मोक्ष
हे क्योकि उसकी सभी प्रकार के जड
सबधो से और तदनुसार ससार के भव
भ्रमण से सर्वथा मुक्ति हो जाती हे। आत्म ज्योति
का सम्पूर्ण विकास इस मुक्ति से ही परिलक्षित
होता हे तथा तदन्तर वह आत्म ज्योति
सदा काल के लिये निरन्तर
सुप्रकाशित होती रहती है

{1152}

आज प्राणी को
श्रेष्ठतम वस्तु मानव
तन प्राप्त हो गया है।
आवश्यकता है, इस सयोग की
सही दिशा मे उपयोग करने की।

{1153}

प्रगतिशील युवक,
आपत्तियो मे हतोत्साहित नही
होता, वह अबाध
गति से अपने रास्ते पर चलता
रहता हे।

{1154}

भूगोल-खगोल
की व्यवस्थाओ का
व्यवस्थापक आत्मा ही है।
अत आत्मा को
समझो।

{1155}

तृषित को पानी और डूबते
को तख्ते का सहारा मिलने से जेसी शान्ति
मिलती हे, उससे भी कई गुनी अधिक शान्ति
व्यक्ति को, प्रभु-प्रार्थना के साथ
एकावधानता लेकर परमात्म स्वरूप
के चितन से मिलती हे।

{1156}

कहा गया है वह शोर्य जहा राजा मेघरथ (शिवि) ने एक कबूतर की रक्षा के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। भगवान् नेमीनाथ ने पशुओ की रक्षा के लिये शादी से मुख मोड लिया। आज उनके अनुयायी पचेन्द्रिय जीव हिंसा से निष्पन्न फैशनेबल चीजो को अपनाते हुए नही हिचक रहे है। फैशन के पर्दे के पीछे हो रही क्रूर हिंसाकितनी भयानक ? क्या कभी सोचा है आपने? आज धार्मिक जनता को हो क्या गया है ? वे किस प्रवाह मे बह रही है? कहा चली गई उनकी अहिंसक भावनाए?

{1157}

जिस मानव तन मे पशुत्व वृत्ति, दानवीय वृत्ति रही हुई है, वह मानव तन मे रहकर भी पशु या दानव है।

{1158}

निज-आत्मिक स्वरूप को साधने वाली प्रत्येक क्रिया आध्यात्मिक क्रिया है और जिस क्रिया से संसार के चतुर्गति भ्रमण का काम होता हो, वह क्रिया कभी भी आध्यात्मिक नही है।

{1159}

जो धारा के सम्मुख मुडा था,वह उस धारा के प्रवाह को सहन नही कर पाया तो तरकीब से विषयों की ओर लुढकने लगा और धारा से सम्मुख तैरने वालों को पुराणपथी कहने लगा एवं अपने को प्रगतिशील।

{1160}

यही जीवन काल होता है जब भूत और भविष्यत् की दोनो कल्पनाओ को सामने रखकर वर्तमान को भव्य बनाने का सुन्दरतम साध्य साधा जा सकता है एव जीवन को समग्र रूप से पहिचाना जा सकता है।

{1161}

जिस आत्मा से संयुक्त शरीर रूपी जीवन को यह दुनिया देख रही है, उस जीवन का बाहरी हिस्सा और भीतरी हिस्सा आपस में बिल्कुल कटे हुए नही है। ये दोनो हिस्से एक दूसरे से जुडे हुए होते है, बल्कि दोनो एक दूसरे के अभिन्न अंग होते है।

{1162}

यदि दृढ संकल्प और उत्साह के साथ चिन्तन करके तदनुरूप व्यवस्था बिठाकर यात्री अपनी यात्रा पर प्रस्थान करता है,तो वह आशा रखी जा सकती है कि उसकी यात्रा सफल होगी। क्योकि मार्ग मे यदि विघ्न भी आये तो वह सफलता पूर्वक उनका मुकाबला कर सकेगा।

{1163}

महापुरुषो ने क्या किया, उसे हमें नही दोहराना है, किन्तु महापुरुषों ने क्या कहा है, उस ओर ध्यान देना है।

{1164}

यदि अहिसा, सत्य
आदि को राष्ट्रीय नियमो से
निकाल दिया जाय तो कोई भी
राष्ट्र एक क्षण के लिये भी
व्यवस्थित नही चल सकता।

{1165}

स्वार्थ-लिप्सा मे
व्यक्ति कृत्य, अकृत्य,
हिसा, अहिसा आदि को
भूल कर अकरणीय को करने मे
भी नही हिचकता।

{1166}

हे साधक !
भूगोल-खगोल का नही,
अपना समीक्षण करो।

{1167}

मानव सोचता-मै गरीब
हूँ? पर हे मानव ! तू गरीब
कहा? तेरे पास अमीरी का प्रतीक
यह अनमोल मानव तन है, जिसके एक- एक
अवयव की कीमत अरबो, खरबो रूपयो से भी
नही आंकी जा सकती। इस मनुष्य जीवन का
अवमूल्यन मत कीजिए।

{1168}

पारिवारिक जीवन
सुखमय बनाने के लिये
जनक-जननी, पुत्र-पुत्रियो को
अपना-अपना कर्त्तव्य बोध करना
अत्यन्त आवश्यक है।

{1169}

मांस व
अण्डाहार मानव की
प्रकृति के प्रतिकूल एव
अनेक व्याधियो का
उत्पादक हे।

{1170}

जिसमे लोभ
नही है, उसके सभी गुणो
का संरक्षण हो
सकता हे।

{1171}

तलवार का दृष्टान्त ही ले ले।
उसका एक हिस्सा तीखा होता हे ओर दूसरा
हिस्सा (धार) मोटा होता है, लेकिन तीखा हिस्सा
भी तभी काम कर सकेगा। जबकि दूसरे हिस्से
का पीठ बल उसको मिले। यदि तलवार का
तीक्ष्ण भाग ही कार्य करे ओर उसको दूसरे भाग
का व वाहरी वल नही मिले तो क्या वह
तलवार काम मे आ सकेगी?

{1172}

व्यवसाय यह बाहर की प्रवृत्ति होती है, लेकिन यह प्रवृत्ति भी समीक्षण द्वारा भीतर की सद्‌वृत्ति से जुडी होनी चाहिये। कोई- कोई कह देते है कि धन्धे मे धर्म नही देखा जाता है याने कि धन्धे मे उचित-अनुचित सब कुछ करना उचित है। यह गलत दृष्टिकोण है और अन्त करण को अनैतिकता से रँगने वाला है। अधिक ब्याज खोरी के धन्धे का आज का रूप महा-आरम्भ वाला हो गया है।

{1173}

हर प्राणी के साथ आत्मीय भावना रखिये, और चिन्तन करिये कि ये मेरे भाई हैं, मे इनका भाई हूं।

{1174}

बाह्य पदार्थो के ममत्व का वायु मण्डल आत्मिक अनुभूति को शिथिल एवं सज्ञा- शून्य बनाकर विकृति से दूषित कर देता है।स्वय विकृत व्यक्ति अपने आपको विकृत नही मानता यही आत्मा की विभावगत अवस्था है।

{1175}

बाहरी वैभव पर मदाध बनना यह अपने आत्मिक स्वरूप को भुलाना हे। इसे एक तरह से सभ्य बेहोशी कह सकते है। यह मदिरा की तरह बाहरी बेहोशी नही होती है।दुनिया को मालूम होता है कि व्यक्ति होश हवास मे चल रहा है। किन्तु इसमे आत्मा की बेहोशी होती है।

{1176}

पूर्व की पुण्यवानी का उदय होता है तब तक सारी खुशहाली दिखाई देती है, लेकिन जिस वक्त यह पुण्यवानी समाप्त हो जायेगी, तब मन, वचन और काया दण्ड रूप बनकर इस आत्मा को दु खित बना देगे।

{1177}

दुनिया की नजर मे कोई व्यक्ति बडा होशियार और योग्य हो सकता है। किन्तु उसका अगर भीतरी जीवन मे प्रवेश नही है तो आत्मा की दृष्टि से वह पागल ही कहलायेगा। यह ज्ञानीजनो की दृष्टि है। शास्त्रकारो ने ऐसे व्यक्ति को बाल कहा है।

{1178}

प्रभु के समवशरण मे मानसिक अन्याय वृत्तियॉ तो क्या जन्मजात की विरोधी क्रूरतम वृत्तियॉ भी समाहित हो जाती है। ऐसा जन्मजात विरोध रखने वाले प्राणी स्वयं श्रद्धा मे इतने ओतप्रोत हो जाते हैं कि जिससे अहंकार आदि की वृत्तियॉ तो दर किनार रही, हिंसक वृत्तियॉ भी अपना मुख विस्फारित नही कर सकती।

{1179}

यदि आप दृढ विश्वास के साथ आध्यात्मिक साधना में लगते है तो अवश्य ही परम आनद की अनुभूति को पा सकते है।

{1180}

आत्मा जब इस मन की अधीनता मे आ जाती है तो वह बेभान हो जाती है। उद्दण्ड मन के हाथो मे पडकर आत्मा अपने स्वरूप को विकृत बनाती है तथा इस लोक और परलोक को बिगाडती है।

{1181}

जो वस्तु जैसी है उसे वैसी न समझकर उसमे जो विपरीत श्रद्धान करता हे, उसे अज्ञानी कहा जाता है।

{1182}

भीतरी शत्रुओं के प्रबल बनने पर ही बाहरी शत्रु प्रबल बनते है।

{1183}

मन के कार्यकलापों अथवा इसकी चक्रव्यूह मय क्रियाओ का मापक यन्त्र केवल समीक्षण ध्यान ही है। समीक्षण ध्यान की सवेधानिक प्रक्रियाओं के द्वारा एक ओर हम मन की सूक्ष्म गतिविधियो को पकडते है तो दूसरी ओर जगत के सूक्ष्म रहस्यो के ज्ञाता, बन क्षणभगुर स्थूल पदार्थो से अलग हट जाते है।

{1184}

महावीर प्रभु की वाणी के आधार पर वर्तमान जीवन को सुखी बनाना है। परम आनन्द का अनुभव करना है तो वह वीतराग वाणी का प्रयोग इसी जीवन मे करके देखें।

{1185}

अवसर आपके हाथो मे है, आप अपने अशुद्ध आचरण से निम्न गति में भी जा सकते है, तो शुद्ध आचरण से उन्नत गति मे भी ।

{1186}

यदि कषाय सर्वथा क्षीण हो जाय, तो उसका कोई शत्रु नही रहता।

{1187}

शास्त्रो मे जो दण्ड वताया गया हे, वह आत्मा की स्वयं की दुष्प्रवृत्ति को रोकने के रूप मे होता हे। दण्ड मिलता अवश्य हे चाहे वह आत्मा के स्वयं के विवेक से मिले अथवा प्रकृति से। इतना अवश्य हे कि स्वयं अपने अपराध की आलोचना करके योग्य गुरु से उसका अन्त करण से दण्ड ग्रहण करता हे तो आत्मस्वरूप का परिष्कार होता हे।

{1188}

जीवन के रहस्यो का अनुसधान करने की जिज्ञासा रखने वाले भव्यो का जीवन निश्चित ही तथ्य एव अर्थपूर्ण होता है। वे इस सूक्ष्म जगत् मे प्रवेश करते है तथा अनुसधान करते हुए आगे से आगे बढते जाते है। ज्यो-ज्यो उनका अनुसधान गहन बनता जाता है, वे दृश्य से अदृश्य की ओर- स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर गति करने लगते है। तव उनका अन्वेषण मार्मिक बन जाता है और शाश्वत सत्य के समीप जाने लगता है।

{1189}

प्रायश्चित दोष के आधार पर नही, अपितु आलोचना एव आन्तरिक अनुसंधान पर दिया जाता है।

{1190}

आप वर्तमान जीवन को ही सब कुछ मान लेना चाहते है तथा भविष्य को भूल जाते है तो यह सशोधन देता हूँ कि वर्तमान जीवन सब कुछ नही है। इससे आगे भी जीवन है। लेकिन उसकी नींव वर्तमान जीवन मे है।

{1191}

मनुष्य जहाँ भी पहुँचता है वहाँ उसकी देखने की लालसा रहती है, उसमे देखने की स्वाभाविक भूख है। वह नित नूतन तत्त्व के लिए तडपता है। किन्तु वह देखने मे कभी तृप्ति का अनुभव नही करता।

{1192}

मति और श्रुत ज्ञान पॉच इन्द्रियो और मन के माध्यम से होते है। इन इन्द्रियो और मन के विषय को सम्यक् रूप से देखने की कोशिश करे। ज्ञान आपके भीतर से होता है। परन्तु याद रखे कि ज्ञाता का ज्ञान किए बिना आत्म-समीक्षण नही होगा।

{1193}

आप स्वाधीन है तो अपने आप को देखे कि आप स्वाधीन किस रूप मे है? आप किसी के स्वामी है या गुलाम हे, इसके लिए मे प्रश्न वाचक चिन्ह उपस्थित कर रहा हूँ। आप अपने आप के मालिक है,गुलामी छोडे- अपनी शक्ति पर विश्वास करे ओर गुलामी नियत्रण करे।

{1194}

स्वय दण्ड लेते हुए भी उस तथ्य को वह मानता नही, और समझता हे कि उसे दण्ड दिया जा रहा है। यदि इस तथ्य को भी वह समझने और न्यायाधीश के समक्ष अपने अन्त.करण से उस दण्ड का लेने की तत्परता बता दे तो शायद दण्ड माफ भी कर दिया जाय, जिसे हम आगमिक भाषा मे आलोचना या पश्चाताप करना कहते है और वह पश्चाताप हे मनोवृत्तियो का समीक्षण।

{1195}

धर्म के मौलिक स्वरूप को आत्मा मे उजागर करने के लिये काषायिक भावो को हटाना होगा।

{1196}

मनुष्य की सस्ती पदवियाँ अच्छी लगती है। अहंकार की पूर्ति जिस पदवी से होती है, वह पदवी अभीष्ट होती है, चाहे उसके पीछे कितना ही कष्ट उठाना पडे।

{1197}

आत्म स्वरुप को पहिचानने के लिये धर्मस्थान की पावन भूमि मे प्रवेश कीजिए।

{1198}

मनुष्य जन्म पाने मे उतनी कठिनाई नही, जितनी कठिनाई है-मनुष्यत्व प्राप्त करने मे।

{1199}

बिजली के करेन्ट के तुल्य है मन के परिणामो की चंचलता ओर उसका बटन है आत्म-निग्रह। इसके लिए साहसिक योग कारगर बन सकता है। आत्म-निग्रह के आदेश जब परिणामो की विजली का करेन्ट जब नियन्त्रित गति से चलेगा, तो मन का पखा भी आवश्यक रीति से ही घूमेगा।

{1200}

आपने पाप कार्य रूप में परिणत नही किया, लेकिन पाप की क्रिया करने का सकल्प ही किया है, उसका इतना असर होगा कि पाप- क्रियापूर्ण नही होने से पहले ही उस क्रिया का फल मिल जायेगा।

{1201}

सुख का अतुल खजाना पाने हेतु, नैराश्यपूर्ण विचारो से हटकर, सबल पुरुषार्थ के साथ आगे बढिये।

{1202}

रत्न तो मूल्यवान ही है, परन्तु मानव तन मूल्यवान ही नही, अमूल्य हे।

{1203}

इस चेतना के लिये स्वय को पाने की दृष्टि से वर्तमान जीवन का समीक्षण आवश्यक हे। वर्तमान जीवन के विभिन्न स्तरो का,विविध आवरणो तथा पर्दो का समीक्षण करेगे तो एक दिन उस चेतना तक भी पहुँच सकेगे। इस चेतना को ही 'ललना' के नाम से सम्वोधित किया है, इसी चेतना को जानने ओर समझने की आवश्यकता हे।

{1204}

मन एक घोडे के समान हे।
जैसे किसी घोडे की लगाम ढीली
है तो वह रास्ते से भटक जाता है और सवार को
ऊबड- खाबड में गिरा देता
है। किन्तु उसकी लगाम सवार के हाथ
मे हो तो वह बराबर रास्ते पर चलता रहेगा। तेज
चाल से चलता रहेगा और गन्तव्य स्थान पर
समय व सुविधा से पहुँचा देगा।

{1205}

मन की उलझने मिटेगी
तो नया पाप कम होगा
तथा पुराने पापो को धोने
का प्रसंग आयेगा।

{1206}

किसी भी वस्तु का
जायका, रस लेना है तो वह जिह्वा से
लिया जाता है। उसकी शरीर मे
परिणति जठराग्नि से होती हे। वैसे ही
सुनने का काम कान का हे। इसे अच्छे
या बुरे रूप मे परिणत करना
मन का काम है।

{1207}

जिसके मन मे पवित्रता
होती है, वह मन के सस्कारो
को ठीक करता रहता है। उसे कुछ
अच्छा निमित्त मिलता है, उसे मारने का
प्रयास करता है तव भी नही मार सकता
और मारने वाला मारने की भावना का
दण्ड पहले ही पा लेता है।

{1208}

समीक्षण ध्यान का साधक
यदि आत्मा की सूक्ष्म वृत्तियों
के अवलोकन मे अपने आपको अक्षम
अनुभव करे तो इसकी पूर्व स्थिति मे
मन को साधने के लिये जीवन
की,अतीत दिवस की वृत्तियो का
अवलोकन करे।

{1209}

विष से भरे हुए केप्सूल को
किसी नीरोग, स्वस्थ व्यक्ति को
खिलाने के लिये उसके हाथो मे कोई
पकडाता है, तो वह स्वस्थ व्यक्ति उस
कैप्सूल के ऊपरी चमकते कवर को
देखकर भी यह जानता है कि इसके
भीतर जहर भरा हुआ है, अत उसे
खायेगा नही।

{1210}

किसी भी प्रतिज्ञा का पालन
तभी हो सकता है जब उसके योग्य
मन की तैयारी बन जाती है। सरकार कानून
बनाकर नशाबन्दी कर सकती है। लेकिन कानून
से मन की तैयारी तो नही करा सकती है। इसके
लिये तो लोगो के मन को ही सुधारना और तैयार
करना पडेगा और तभी वचन दण्ड और काय
दण्ड से बचा जा सकता हे।

{1211}

जैसे अनेक बार
पानी के प्रवाह मे भँवर
बनता हे। उस भँवर के बीच
कोई वस्तु गिर जाती है तो
उसका बाहर आना अति कठिन
हो जाता है। चैतन्य पर विषमता
का उससे भी अधिक जटिल
भँवर बना हुआ है।

{1212}
व्यक्ति सवेदनशील
है तो यन्त्र की आवश्यकता नही
रहती। टैलीपैथी की प्रक्रिया से
एक दूसरे के भाव इतनी द्रुतगति
से जाते है कि उन भावो को
रोक नही सकते।
{1213}
जैनत्व की
दृष्टि से तो जैन-दर्शन विश्व
व्यापक है। हा जैनानुयायी
अल्प परिलक्षित हो सकते हे।
{1214}
वीतराग वाणी
किसी व्यक्ति विशेष या
संप्रदाय विशेष से आबद्ध
नही है, वरन् सभी के
लिये है।
{1215}
कोई यह सोचे कि महाराज मन
के अनुकूल बोले वह सही और प्रतिकूल बोले वह
गलत, तो ऐसे मन के गुलाम को तो भगवान् भी
नही समझा सकते है।अगर आप अपने जीवन
को समुन्नत बनाना चाहते हे तो मन के गुलाम
नही, मन के स्वामी बनिये और उसका अपनी
आत्मा की अधीनता मे चलाइये।
{1216}
सम्पूर्ण ज्ञानियो के
सिद्धान्तो मे जो भी जीवन
विकास एव योग सम्बन्धी प्रावधान
रहा हुआ है, उसे ही आधार
मानकर की जाने वाली साधना
समीक्षण साधना है, और वही
साधना आत्म शान्ति का
अग बन सकती है।
{1217}
स्वर्गीय आत्मा
शारीरिक-सोन्दर्य मे
असाधारण हे, पर जो क्षमता
मानव तन मे हे, वह उनमे
नही।
{1218}
उत्तम व्यक्ति
वही हे, जिसके
आचार-विचार और
उच्चार शुद्ध हो।
{1219}
देखने की प्यास सच्ची है
लेकिन जिसको देखना चाहिये उसको
वह देख नही पा रहा हे। जो दिखाई दे
रहा है वह देखने की प्यास को शान्त
करने वाला नही हे। जो दृश्य देख रहा हे वह या
तो दखने की शक्ति को देख नही पा रहा हे, या
फिर उसके पास अन्दर देखने
की विधि नही हे।

{1220}

मन रूपी घोडे को कहाँ बाँधेगे। इस मन रूपी घोडे पर जब तक आपका नियंत्रण नही होगा तब तक आप इस संसार मे स्वतन्त्र नही होगे, विजयी नही होगे। आपने अब तक किस पर विजय प्राप्त की? क्या परतंत्र व्यक्ति विजयी माना जा सकता है ?

{1221}

जब इस मानव तन का उपयोग निज स्वरूप की साधना मे करने की दृढ़ सकल्पपूर्वक तीव्राभिलाषा जागृत होती है, तव वह चैतन्य देव वीतराग देव के सिद्धान्तो का सम्बल लेकर चलने का प्रयत्न करता है।

{1222}

विषमता दु ख एव द्वन्द्व की जननी बन कर चैतन्य देव को परतन्त्र बना रही है। चैतन्य ने इसके अधीन विकारग्रस्त होकर अपनी स्वतन्त्रा -वस्था को विलुप्त कर दिया है और अहर्निश इसी दु ख द्वन्द्व एवं तनाव की अवस्था मे रहता हुआ वह सही दिशा निर्देशन भी नही ले पाता है।

{1223}

स्वय की अवस्था को विकृत वनाता हुआ विश्व के समग्र प्राणियो की अवस्था को भी विकृत बनाने मे निमित्त भूत होता है। यह सब विषमता रूप शासक का अभेद्य सा विस्तृत जाल है। इस जाल को समझना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

{1224}

जब चैतन्य देवसाधक का रूप स्वीकार कर अन्तर्यात्रा का पथिक बनता है तब वह स्थूल शरीर से सम्बन्धित आवारक कर्मो के समग्र हेतुओ को अनुभूतिपूर्वक जान कर भविष्य के लिये उन हेतुओ की पुनरावृत्ति को रोकता है।

{1225}

मनुष्य गति के अतिरिक्त गति वाले प्राणी समीक्षण ध्यान की परिपूर्ण उपलब्धि नही कर सकते।उसकी उपलब्धि तो आर्य सस्कारो से सम्पन्न व स्वय के स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए तीव्र जिज्ञासावान व्यक्ति ही कर सकता है।

{1226}

जो सपरिपूर्ण ज्ञानियो के रहस्य को स्वानुभूति पूर्वक निकाल कर अभिव्यक्त करता है, वह विद्वान् भले ही सपरिपूर्ण ज्ञानी न हो, पर सम्पूर्ण ज्ञानियो के सिद्धान्तों का अवलम्बन लेकर साधना विषयक योग पद्धति की विवेचना करता है तो वह स्वय के लिए और अन्य साधको के लिये सर्वथा ग्राह्य बन सकती है।

{1227}

जब तक आत्मा कर्म नोकर्मादि अवस्थाओ से युक्त है, तब तक रूपी कहलाती है। किन्तु इन अवस्थाओ से सर्वथा रहित होने पर आत्मा सदा सर्वदा के लिए अरूपी अवस्था मे अवस्थित हो जाती है।

{1228}

मानव समाज मे
जितने घातक से घातक दुर्गुण
दिखलाई देते है-यदि आप उनकी
जडो को खोजने जायेगे तो वे
आपको समग्र रूप से विषमता के
वृक्ष मे मिल जायेगे।

{1229}

आज आदमी धन
की लिप्सा मे पागल है,
सत्ता की लिप्सा मे उन्मत हुआ है
तो यश और झूठे यश की लिप्सा
मे अपने अन्तर को कालिमामय
बनाता जा रहा है।

{1230}

केवल
भाग्याश्रित मानव कभी
भी उन्नति के चरम छोर
को नही छू सकता।

{1231}

जिसने बून्द का नही समझा है,
वह कभी सागर को नही समझ सकता, जिसने
परमाणु को नही समझा, वह कभी अणुबम्ब को नही
समझ सकता। लघु को समझने से ही विराट का
विज्ञान हो सकता है। वैसे ही जिसने समता को नही
समझा है, वह कभी परमात्मा के विराट
स्वरूप को नही समझ सकता।

{1232}

धन लिप्सा सत्ता मे
बदलकर और अधिक आक्रामक
बन रही है ऑखे मूदकर सत्ता
लिप्सा अपना अणुबम इस तरह
गिराती है कि वहा दोषी और
निर्दोष के विनाश मे भी कोई
भेद नही रह जाता।

{1233}

सत्तालिप्सु एक तरह
से राक्षस हो जाता है कि उसे
अपनी कुर्सी से मतलब है फिर
दूसरो का कितना अहित होता
हे-यह सब उसके लिए
बेमतलब हो जाता है।

{1234}

भाई-भाई से
प्रेम करना सीखे और
मानवता का भव्य प्रसग
उपस्थित करे।

{1235}

ढीले हाथो से पकडी गई पतग
कभी भी दूसरी पतग से काटी जा
सकती हे। पर मजवूत एवं सावचेती से पकडी
गई पतग दूसरो की पतंग को काट सकती हे।
इसी तरह समता की पकड को मजवूती के साथ
पकडिये ओर कर्मो की पतंग को काटकर मुक्ति
के अनन्त गगन मे मुक्त विचरण करिये।

{1236}

धन, कम हाथो मे अधिक
और अधिक हाथों मे कम से कम
होता जा रहा है। इसका नतीजा है कि कुछ
सम्पन्न लोग विलास की कगार पर इठलाते है तो
अधिक सख्य–जन अपनी प्रतिमा, अपनी
गुणशीलता और अपने सामान्य विकास की बलि
चढाकर विनाश की कगार पर खडे हैं।

{1237}

तपाराधना से
शारीरिक शक्ति कुछ
शिथिल हो जाती है पर
आत्मिक शक्ति निरन्तर
बढती है।

{1238}

शान्ति देने लेने की
वस्तु नही, पर अपने मे
ही अभिव्यक्त करने की वस्तु है।
स्वय के पास जो वस्तु है उसी को
प्रकट करने की आवश्यकता है।

{1239}

"शान्ति क्रान्ति" आत्म
साधना से ही परात्मसाधना
के उदय का अभियान है। जो आत्म
पक्ष, परात्म पक्ष एवं परमात्म पक्ष
तीनों को उजागर करने मे सक्षम हैं।

{1240}

जब तक मानसिक जीवन
स्वच्छ, नैतिक एवं धार्मिक नही बनता
तब तक व्यावहारिक
जीवन मे नैतिकता, प्रामाणिकता एवं
सुख की वास्तविक
स्थिति नही आ सकती।

{1241}

अग्नि सम मन का
वेग ससार को बढाने वाला होता है,
जब कषाय सीमा से अधिक समय
तक रह जाती है तो उससे सम्यक्त्व
गुण का नाश हो जाता है।

{1242}

विषमता कुछ व्यक्तियो के
कुप्रयास से बनती और बढती है,
लेकिन इसके कुप्रभाव से सामूहिक विगति
आरम्भ होती हैं और वह इतनी तेज गति से
चलती है कि इसके चक्र मे दोषी और निर्दोष
समान रूप से पिसते चले जाते हैं।

{1243}

पकड़ के
अभ्यासी मानव को पकडने
का उपदेश है कि वह
सद्गुणों को पकडे, समता
को पकडे।

{1244}

जब तक मन
का समीक्षण-परीक्षण
नही होगा तब तक वास्तविक
आत्मिक शान्ति की अनुभूति
नही हो सकती।

{1245}

बाह्य वैभव से
अन्तर की तृप्ति-सतुष्टि कभी
संभव नही है। अन्तर के वेभव
से ही अतर की तृप्ति -सतुष्टि
बन सकती है।

{1246}

धर्म का
स्वरूप आत्मा के
मौलिक स्वरूप से भिन्न
नही है।

{1247}

शीतल पानी के पास जैसे
कोई गर्मी से तपा हुआ प्राणी
पहुँचता है, वह जैसी ही शीतलता, शान्तता
प्राप्त करता है उससे भी बढकर ससार की
विषय-वासनाओ की आग से सतप्त बना हुआ
मानव साधु के सन्निकट जाकर अनल्प शान्ति
की अनुभूति करता है।

{1248}

संसार के
समस्त पौद्‌गलिक
पदार्थ परिवर्तनशील है। पुद्‌गलो
के परिवर्तन से सुगन्ध दुर्गन्धमय
और दुर्गन्ध सुगन्धमय हो
जाती है।

{1249}

दूसरे की
शान्ति,दूसरा नही ले
सकता और न वह दे ही सकता
है। चाहे वह ईश्वर
रूपी महासत्ता भी
क्यो न हो।

{1250}

जो व्यक्ति
अपने मानवीय धरातल पर
रहता है, वह सारे राष्ट्रो
को झुका
सकता हे।

{1251}

जिस प्रकार पतगे
जलते प्रदीप के रूप मे आकर्षित
होकर उस पर झंपापात करते हुए अपना
प्राणान्त कर देते हे। उसी प्रकार दृष्ट एवं श्रुत
वस्तुओं के व्यामोह में फसकर अज्ञ जन भी
अपने जीवन का पतन कर लेते हे।

{1252}

किसी शिला के नीचे किसी का हाथ आ जाता हे तो उस शिला के नीचे से अपने हाथ को वापिस वाहर निकालने के लिए काफी श्रम, साहस और वुद्धि से कार्य करना होता हे, जो सहज नही होता हे। सारा वल लगाकर झटके से हाथ को वाहर निकालने की कोशिश की जाती हे तो अगुलियो के टूट जाने का खतरा रहता हे ओर अन्य हानि भी हो सकती हे, पूरी सावधानी जरूरी होती हे। उस समय श्रम, साहस ओर वुद्धि की परीक्षा होती है।

{1253}

मांसाहार परलोक मे तो हानिकारक होता ही हे किन्तु इस जीवन के लिये भी घातक सिद्ध होता हे।

{1254}

बाहर की कसौटी पर भीतर का तथा भीतर की कसौटी पर बाहर का मूल्याकन किया जा सके ओर वैसा मूल्याकन खरा उतरे,तब समझना चाहिये कि बाहर और भीतर की एकरूपता स्थापित हो गई है।

{1255}

संसार के वर्तमान जीवन का जो वायु मण्डल है, वह अधिकाश रूप से भोतिकता के संस्कारो से प्रभावित हे ओर उस भोतिकता के भावो की प्रबलता के कारण जीवन में कषायो का भी बाहुल्य हे।

{1256}

अपनी पाप प्रवृत्तियो से सरकार की निगाह से बचा जा सकता है लेकिन कुदरत की निगाह से नही बचा जा सकता। कर्मो की स्थिति बडी विचित्र होती है। कर्म अपनी विचित्र दशा से आत्मा को दण्डित करते रहते है।

{1257}

जिस इन्द्रिय को जिस विषय से सुख की अनुभूति होती है, उस इन्द्रिय को उसी विषय से बार-बार सम्बन्धित किया जाय तो वह विषय सुख देने के स्थान पर दु ख देने वाली बन जायेगी।

{1258}

जिन तौर तरीको से अन्य पदार्थो का ज्ञान किया जाता है उनके अतिरिक्त एक माध्यम इतना विशिष्ट है जिससे ज्ञान का ज्ञान भी किया जा सकता है। ज्ञान विषयी होता है। अन्य पदार्थ विषय होते है। पर जिस समय ज्ञान को विषय बनाया जाय और विषयी वह विशिष्ट ज्ञान हो उस वक्त की घडियॉ, उस समय का स्वरूप कुछ अलग ही होता है।

{1259}

इन्द्रियरामी जीव अच्छे पर राग और बूरे पर द्वेष कर बैठता है, जो कि उसके पतन का कारण बन जाता है।

{1260}

इन्द्रियो के माध्यम से जो शक्ति पोद्गलिक तत्त्वों मे खर्च हो रही है,उसे अन्दर मे नियोजित करे तो अन्तस् मे विद्यमान सुख का अक्षय स्त्रोत उद्घाटित हो उठेगा।

{1261}

आत्मा इन्द्रियो के माध्यम से कभी पौद्गलिक वस्तुओ से शाश्वत सुख की अनुभूति नही कर सकती है।

{1262}

सुखी बनने के लिये भौतिकता की पकड छोडनी होगी।

{1263}

वर्तमान के परिवर्तन के आधार पर ही श्रेष्ठ भविष्य का निर्माण किया जा सकता है। इस रूप मे भविष्य का आदर्श वर्तमान से सामने रहता हे तो परिवर्तन की प्रक्रिया सहज बन जाती है। भविष्य का आदर्श होना चाहिए-सिद्ध स्वरूप।

{1264}

पॉचो इन्द्रियो की वैषयिक शक्ति से, जो विषय सुख पाना है, वह भीतर से पाने का प्रयास किया जाय, क्योकि जो सुख भीतर मे है, वह बाहर मे नही।

{1265}

जो सुख बाहरी आवाज से नही मिलने वाला है, उसकी अपेक्षा अनिर्वचनीय सुख भीतरी आवाज को सुनने से मिल सकेगा।

{1266}

अर्हत सिद्धान्त अहिसा आदि सार्वजनीय, सार्वभोमिक हे।

{1267}

जीवन इसी क्षण चमक सकता है,जिस क्षण जीवन का समीक्षण होता हे, उसी क्षण से आत्मिक स्वरूप के लिये प्रतिक्षण को कार्य रूप में परिणित करने लगता हे। ऐसी अलभ्य परिणति को विरले भव्य पुरुष ही अपने जीवन मे उद्घाटित कर सकते हे।

{1268}

एक दृष्टि से इस जीवन
को भी इसी रूप मे देखने की
आवश्यकता हे। ऊपर से ऑख, कान,
नाक आदि की सारी की सारी संरचना दिख रही है
एवं उसकी प्रवृत्तियाँ भी ज्ञात हो रही है, लेकिन
उनका मूल संचालन कहाँ से होता है और कहाँ से
होना चाहिये- इसको जाने बिना जीवन का
सदुपयोग नही किया जा सकता।

{1269}

जितने संसार मे
भव्य जन हें ओर जो अपने
आत्म-कल्याण के अभिलाषी
हे, वे सभी वीतराग की भक्ति
करते हें।

{1270}

आज निश्छल मन छल
के तारो मे उलझता कसता
जा रहा है। अन्तर सोचता कुछ हे किन्तु
उसका प्रकटीकरण किसी अन्य रूप मे ही
होता है। यह द्वेष भरा व्यवहार मनुष्य को
सत्य से विमुख बनता
जा रहा है।

{1271}

स्वार्थ का स्वभाव
संकुचित होता हे वह सदा छोटा से
छोटा होता जाता हे, उसका दायरा
बराबर घटता ही जाता है। जितना यह
दायरा घटता हे,उतनी ही मनुष्यता
बोनी होती हे,पशुता
बडी बनती जाती है।

{1272}

जीवन निर्वाह के लिये
धन चाहिये, वह निरपेक्ष भाव
से अर्जित किया जाय और चारो और
समता के वातावरण की पुष्टि की जाय
तब धन जीवन में प्राथमिक न रहकर
गौण हो जायगा।

{1273}

सार्थक जीवन वह है
जो स्वयं चले स्वस्थ एवं
सुदृढ गति से चले बल्कि अपने चलने
के साथ अन्य दुर्बल जीवनों में भी
प्रगति का बल भरता हुआ चले।

{1274}

दूसरे व्यक्ति लडेगे या नही
लेकिन उसने स्वय अपने अन्दर
द्वन्द्वात्मक सघर्ष करने की दुष्प्रवृत्ति को जन्म देकर
कर्म बन्धन कर ही लिया। उसका दण्ड तो उसको
भोगना ही पडेगा। ऐसी होती है मन के
सकल्प-विकल्पो की भूमिका- जिसके आधार पर
मन,वचन और काया तीनो दुष्प्रवृत्तियो मे सलग्न होते
हे तथा उन दुष्प्रवृत्तियो का दण्ड भुगते है।

{1275}

ऐन्द्रियक विषयो
मे रमण करने
वाला प्राणी संसार के
भव-प्रपंच को
बढाता है।

{1276}

श्रोतेन्द्रिय जिसके माध्यम से शब्दों को सुना जाता है तो इसी श्रोतेन्द्रिय की शक्ति से आत्मा की आवाज को सुनने का प्रयास करना चाहिये।

{1277}

आत्मा की आवाज कभी भी व्यक्ति को गलत दिशा मे नियोजित नही करती है। वह सदा उसे सही दिशा निर्देशन देती है।

{1278}

आज का मानव आत्मा की आवाज को सुनने लग जाय तो वह कभी भी दु खी नही हो सकता।

{1279}

इन्द्रियॉ स्वय मे जड हैं–जडाभिमुख हैं। ऑखे देखने का स्वरूप नही जानती, कान सुनने की कला नही जानते। नासिका सूघने के स्वरूप को नही समझती। जिह्वा चखने की कार्य पद्धति का विज्ञान नही रखती और त्वचा स्पर्श का स्वरूप समझ नही पाती। समझने वाला इनसे भिन्न कोई और ही है।

{1280}

इन्द्रियो के माध्यम से जो शक्ति बाहरी विषयों को पाने मे विकेन्द्रित हो रही है, उसे अन्तर चैतन्य को जागृत करने के लिये केन्द्रित करने की आवश्यकता है।

{1281}

जैसी शाश्वत तृप्ति,आत्म रूप को देखने से मिलेगी, वैसी तृप्ति संसार के किसी भी जड तत्व को देखने से मिलने वाली नही।

{1282}

जैसा आत्मा का मौलिक रूप है। वैसा रूप ससार की किसी वस्तु का नही है।

{1283}

ज्ञान का ज्ञान कराने वाला तत्त्व कहॉ हैं–इसी तत्त्व को खोज के लिए कम्प्यूटर का निर्माण किया गया है। शरीर विज्ञान के लिए भी साधन उपलब्ध है।लेकिन आत्म–ज्ञान की खोज करने के लिए चरण नही उठाए गए हैं। वह चरण वीतराग की वाणी मे मिल रहे हैं। प्रभु ने संकेत दिया ' *'णाणस्य सव्वस्य पगासणाए''*।

{1284}

मुख्यतया मन ही मनुष्यो के कर्मबन्ध एव कर्मक्षय का कारण होता है। इस मन की प्रवृत्ति से मनुष्य अपने जीवन को कर्मो से कुत्सित वनाता हे। अपने लिये नये-नये कष्ट खडे करता है ओर अपने आपको बरबाद करता है। यह मन इतना वडा दण्ड हे कि जिसकी समानता की कल्पना भी नही की जा सकती है।

{1285}

क्रोध, मान, माया लोभ आदि कषाय अशुभ वृति के सूचक है। इन पर नियन्त्रण ओर संयमन करके ही चेतना को ऊर्ध्वमुखी किया जा सकता है।

{1286}

समीक्षण ध्यान की विद्या इतनी विलक्षण एवं प्रभावोत्पादिका है कि उसकी विधिवत् साधना से साधक की अर्न्तदृष्टि जागृत होकर यथातथ्य अवलोकन में सक्षम बन जाती है।

{1287}

जो आत्मा अन्तर्मुखी साधना से हटकर इन्द्रियो के माध्यम से वेषयिक सुख पाने की दोड लगाती हे वह भोतिकता मे उलझ जाती हे, ओर अपनी आत्मा का गहरा अधःपतन कर लेती हे।

{1288}

धर्म अन्धविश्वास, मन गढन्त कल्पना और भावोन्माद का परिणाम न होकर यथार्थ चिन्तन, उदात्त जीवनादर्शो और वृत्तियो के परिष्करण का प्रतिफलन है।

{1289}

अन्तर्दृष्टि समभावना एव समदर्शिता के आधार पर एक ओर जड तत्वो की विभिन्न पर्यायो की भीतरी पर्तो को देख लेती है तो दूसरी ओर वह आत्मा की वृत्तियो तथा प्रवृत्तियो के रहस्यो का अवलोकन भी कर लेती है।

{1290}

जो मानसिक उलझनो मे उलझ जाता है ओर मनोवृत्तियो का समीक्षण नही करता तो उन उलझनो मे उसकी आत्म -प्रतीति मन्दी हो जाती है, वह अपने ही अन्तरग मे उठती आवाज को समझ नही पाता है। परमात्मा किसी जिज्ञासा का क्या उत्तर देगा-यह तो स्वय-की भीतर की आवाज होती है। यह आवाज उतनी ही सच्ची होगी जितनी आत्मा निर्मल ओर सूक्षम होगी।

{1291}

परम शान्ति के जिज्ञासु साधक को अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति के लिए समीक्षण के साथ ध्यान साधना मे गति करनी चाहिये।

{1292}

वीतराग वाणी के
अनुसार वही मोक्ष का
अधिकारी बनता है जो पुरुष
सम्यक् ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की
आराधना करते हुए सयम का
अनुपालन करता हे।

{1293}

सिद्धात्मा ओर
ससारी आत्मा के मूल स्वरूप
मे कोई अन्तर नही है। अन्तर है
तो केवल उस स्वरूप की
आवृतत्ता का एव
अनावृतत्ता का।

{1294}

समीक्षण के
साथ की गई आत्मसाधना
निश्चय ही शाश्वत शाति
देने वाली होगी।

{1295}

जो हृदय की रसधारा मे
समरस बन कर न केवल अपने
भीतरी बल्कि बाहर भी सब ओर आनन्द की
उमंग उत्पन्न कर सकता है, वही हृदय विषमता
की आग मे जल कर स्वय तो काला कलूटा
बनता ही है, किन्तु उस कालिमा को वातावरण
मे भी चारो ओर विस्तारित कर देता हे।

{1296}

वैचारिक समता
का आधार है प्राणीमात्र
के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार
करना एवं स्वय अपने लिये
किसी को
कष्ट न पहुँचाना।

{1297}

मोक्ष को समग्र
रूप से समाहित कर
लेने के लिए कषायो को विलग
करने का पुरुषार्थ क्रियान्वित
किया जाना चाहिये।

{1298}

वास्तविक
सत्य के दर्शन
करने हे तो वे बाहर नही
भीतर मे ही होगे।

{1299}

व्यक्ति के हृदय की आन्तरिक
गहराइयो मे तो क्या वाह्य ससार
मे व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, राष्ट्र एव
समूचे विश्व मे प्राय· विषमता फेलती जा रही
ह। गहराती जा रही
हे। इसे समझकर संशोधित करने
की आवश्यकता हे।

{1300}

परमात्मा कही बाहर नही हे। वह आपके अपने ही भीतर हे। उसको आपने दबा रखा है। उसके ऊपर आपने आवरण डाल दिये है। फिर भी वह पूरी तरह दबता नही हे, छिपता नही है ओर समय-समय पर आपको अपना आभास देता रहता है। यदि आप तल्लीनता से दृढ-सकल्प पूर्वक समीक्षण प्रक्रिया के माध्यम से अपने अन्त करण को कुछ पूछे तो उसका सही उत्तर आपको मिलेगा।

{1301}

कापायिक वृत्तियों रूपी अवरोध को शास्त्रोक्त रीति से संयम का अनुष्ठान करके दूर कर सकते हैं।

{1302}

आत्मा की विकास यात्रा के सभी काषायिक अवरोध दूर हो और उसका मूल स्वरूप निरन्तर उज्जवल से उज्जवलतर होता रहे, तभी मोक्ष का अधिकारी निरन्तर समीप से समीपतर आता है।

{1304}

जेसे वेडियों से जडकर किसी को कारागार मे डाल देने से उसकी जिस रूप मे बाह्य दशा देखी जा सकती हे, वेसी ही आन्तरिक दशा का अनुमान क्रोध की अवस्था मे किया जा सकता है।

{1305}

सस्कृति एवं समता के विकास का मूल बिन्दु ही यह होता है कि सुसंस्कृत एवं सभ्य मनुष्य पहले दूसरों के लिये सोचे दूसरो के लिये कुछ करे और अपने लिए बाद मे।

{1306}

विषमता की वृत्ति मानव मन, वचन, काया के आन्तरिक आयामो तक मे समाविष्ट होने से व्यक्ति परिवार समाज, राष्ट्र एवं विश्व को व्याकुल बनाये हुए हैं।

{1307}

साधना मे बैठने वालों को अपने मन पर अकुश रखना है तो उसे छुटपल्ले नही रखना है। साधना मे बैठने के बाद आप मन को पकडने की कोशिश करेगे तो उसे पकड नही पायेंगे, किन्तु साधना की विधि से उसका निग्रह करिए, उसके गुलाम मत बनिए, स्वामी बनिए। उसके साथ मित्रता करेगे तो मन रूपी वह घोडा आपके वश मे आ जाएगा।आप मन के घोडे पर सवार हो जायेगे।

{1308}

जो साधक अपनी आत्मा के भीतर उभरता है और भीतर के स्वरूप को अपनी ज्ञान दृष्टि से देखता है, वही आत्मदृष्टा कहलाता है।

{1309}

विषमरी यह विषमता
सबसे पहले मानव हृदय
की भीतरी परतो में घुसकर उसे
क्षत—विक्षत बनाती है और हृदय
की सौजन्यता और शालीनता को
नष्ट कर देती है।

{1310}

इस आत्मा
ने जो भी, जैसे भी,
शुभ या अशुभ कर्मों का उपार्जन
किया है, उन्ही
का शुभाशुभ फल
वह पाता है।

{1311}

पौद्गलिक
पदार्थ स्वय
आनन्द रूप नही है।
उसमे आनन्द थोपा जाता
है।

{1312}

सहकार के सूत्र मे अतीत से
बन्धे हुए भारत पर ही यदि दृष्टिपात
करे तो क्या यह स्पष्ट नही होगा कि ज्यो—ज्यो
सब ओर विषमता फैलती जा रही है त्यो—त्यो
सरकार की कडियॉ ही नही टूट रही है ? बल्कि
मानवीय सद्गुणों का शनै शनै ह्रास भी
होता चला जा रहा है।

{1313}

स्वार्थ के घेरे मे
जो विचार जन्म लेते हैं,
वे उदार त्यागमय नही होते और
त्याग के बिना मन अपने मूल
निर्मल स्वरूप को ऊचाईयो मे
ऊपर कैसे
उठा सकता है ?

{1314}

अनियत्रित विज्ञान
के विकास ने मानव
को असन्तुलित बना दिया है।
लेकिन व्यक्ति का मानसिक
सन्तुलन, उसे
बचा सकता है।

{1315}

मनयोग से
किये जाने वाला
कार्य अच्छा होगा
और साथ ही मन
की साधना भी
सधेगी।

{1316}

विषमता से अधिकाधिक विषम
बन कर जब इन्सान भौतिकता को
पाने के लिये बेतहाशा भागता है तो भौतिक
उपलब्धियॉ उसे मिले या नही यह दूसरी बात
है, लेकिन वह उस भाग दौड और
भगदड मे दुर्गुणों का सचय तो
अवश्य ही कर लेता है।

{1317}

शरीर के भीतर मे विषवर्षी ग्रंथितत्र भी होते है, तो अमृतवर्षी ग्रन्थितंत्र भी होते है। बाहर के मारक विष का प्रभाव होने पर अमृतवर्षी ग्रंथितत्र निष्क्रिय होने लगते हे तथा विषवर्षी ग्रथितंत्र सक्रिय, जिसके कारण वाहर के जहर तथा भीतर के जहर के सयुक्त हो जाने से एक नई विष शक्ति का स्त्रोत फूट पडता हे।

{1318}

विज्ञान जहॉ वास्तव मे निर्माण का साधक वनना चाहिए, वहॉ वह उसके दुरूपयोग से विनाश ओर महाविनाश का साधन वनता जा रहा हे।

{1319}

आज विषमता मनुष्य के मन की गहराईयो मे समा रही हे, वाणी के छल मे फूट रही है और कर्म की प्रवचनाओ के रूप मे प्रलय ढा रही है। उस विषमता की वृत्ति को रूपान्तरित करना होगा।

{1320}

श्री गणेश ही जहॉ विषमता के कुप्रभाव से विकृत भूमिका पर हो रहा हो वहॉ भला आगे का विकास सुप्रभावी एवं कल्याणकारी बने- इसकी आशा निराशा मात्र ही सिद्ध होगी।

{1321}

व्यक्ति से लेकर विश्व तक समूचे रूप में प्राय विषमता फैली हुई है। इससे विश्व के कोने-कोने मे आत्मीयता का ह्रास होता जा रहा है।

{1322}

विलास की कगार पर खडा इन्सान अट्टहास कर रहा है तो विनाश की कगार पर खडा इन्सान इतना स्वार्थ ग्रस्त हे कि दोनो को यह भान नही है कि किसी भी क्षण पतन की खाई मे गिर सकते है।

राजनीति में, अर्थनीति, मे यथायोग्य समानता के जब पग उठाये जायेगे, उसे अधिक से अधिक वास्तविक रूप दिया जायेगा तो समता की द्विधारा बहेगी-भीतर से बाहर और बाहर से भीतर। तब भौतिकता और आध्यात्मिकता सघर्षशील न रहकर एक दूसरे की पूरक बन जाएगी जिसका समन्वित रूप जीवन के बाह्य और अन्तर को समतामय बना देना।

{1323}

विचार प्रकट होता है वाणी के माध्यम से और विषम विचार वाणी को भी विषम बना देता है एवं कार्य मे भी वैसी ही छाप छोडता है।

{1324}

{1325}

आर्थिक विषमता
की विषमतम स्थितियों मे
भूलते भटकते समाज मे कहाँ
खोजें मनुष्यता की मृदुल भावना
को कहा करे सौम्य एवं सरलता
से परिपूरित समता के दर्शन ?

{1326}

समता का
विचार जहाँ जीवन
का आह्वान करता है, वहाँ
विषमता जन्य विचार मृत्यु को
बुलाता है।

{1327}

आचरण की
धारा सम्यक् ज्ञान
के चट्टानी तटबंधो में ही
मर्यादित रहनी चाहिए।

{1328}

शुभ भावना भरना कठिन
लगता है, क्योकि जो सम्पन्नता
उसे किसी भी आधार पर प्राप्त हुई
है, उसके आनन्दोपयोग से वह अपने आपको
क्यो विलग करे ? भोगग्रस्त उसकी चेतना
शिथिल और श्लथ हो रही है।

{1329}

आज दलन, दमन
शोषण और उत्पीडन की कठिन
चोटो को झेलता हुआ मायूस
इन्सान विवशता के भार से दबता
हुआ प्रतिपल अपनी स्वस्थ
चेतना को खोता जा रहा है।

{1330}

विषमता के
वशीभूत होकर व्यक्ति हृदयहीन,
गुणहीन और कर्त्तव्यहीन होता
जा रहा है।

{1331}

जिसके
जीवन में समता
स्वर प्रस्फुटित नही होते,
उसका जीवन महान् नही
बन सकता।

{1332}

मनुष्य के मन मे और
उसके बाहर परिवार से लेकर
समूचे संसार मे ऐसा नव जीवन लाने का एक
मात्र उपाय है कि सभी तरह की विषमताओ पर
घातक आक्रमण किया जाय और समतामय
जीवन शैली का विकास साधा जाय।

{1333}

जिसका लक्ष्य विपरीत है, श्रद्धान सही नहीं है, वह व्यक्ति कितनी भी कुछ क्रियाएं करे, चाहे वह संसार के अंदर परोपकार के नाम से क्रिया करे। चाहे किसी अन्य सेवा की दृष्टि से काम करे,अथवा धार्मिक क्षेत्र की पोशाक लेकर के कठिन से कठिन तप भी करे, परन्तु वह मोक्ष साधक न होकर संसार वर्धक है। लक्ष्य से विपरीत दिशा मे चलने वाली गाड़ी की तरह, जीव की वह यात्रा व्यर्थ हो जाती है।

{1334}

हमारी संस्कृति का जो मूलधार गुण और कर्म पर किया गया था, वह इस असन्तुलित वातावरण के बीच उखड़ता जा रहा है।

{1335}

यशलिप्सा का इच्छुक साधक साधना करके भी संसार मे भटकता है। और अपने भक्तों को भी ससार मे भटकाता है। इन्सान का सत्कार्य यश लिप्सा से ऊपर उठकर करना चाहिये।

{1336}

जब तक इच्छाएँ बनी रहेगी तब तक दु खो से मुक्ति नही हो सकती। अत इन्सान को चाहिये, अपनी इच्छाओ को सीमित करे। और एक न एक दिन इच्छाओ के भंवर से पूरी तरह बाहर निकल जाय।

{1337}

मव्यात्माएं महापुरुषो के आदर्श रूप जीवन के साथ जब अपनी आत्मा का तुलनात्मक अध्ययन करती है तो उन्हें कर्म का काला धब्बा स्पष्ट नजर आ जाता है।

{1338}

आहार दान, ज्ञान–दान, औषध दान, भी अपने–अपने स्थान पर उपयोगी हे, किन्तु इन समी दानों का आधार भूत अमयदान है। मरते हुए व्यक्ति की रक्षा करना सबसे बडा दान है।

{1339}

वृद्धावस्था तत्क्षण नही आती, अपितु निरन्तर पौद्‌गलिक परमाणुओं के परिवर्तन से आती है। लेकिन यदि जवानी का भाव बना रहे तो पुद्‌गलों के घटने पर भी युवावस्था बनी रहती है। क्योकि योंवन शब्द की व्युचित करते हुए कहा गया है –*"मनोभाव यौवनम्"* जवानी का भाव ही यौवन है।

{1340}

विचार सर्वप्रथम हृदय तल से ही फूटता है और इस प्रस्फुटन का रूप वैसा ही होता है, जैसा कि साधन मिलता है।

{1341}

जड पदार्थ मे
उत्पाद--व्यय होते हुए भी
वे जडत्व की अपेक्षा ध्रुव होते है।
उस जड पदार्थ का आकर्षण
आत्मा को भी जडता की ओर ले
जाने वाला बनता है।

{1342}

आत्मा की चरम
परिणति परिपूर्ण, शात-- प्रशान्त
अवस्था पाने के लिये
आवश्यकता है, दृढ
सकल्प--शक्ति की।

{1343}

शरीर की
चिकित्सा डाक्टर करते हैं।
मन एवं कर्मों की चिकित्सा
समता
करती है।

{1344}

मृत्युभय से आतंकित
व्यक्ति को दुनिया की सारी सम्पत्ति
क्यो न दे दी जाय फिर भी वह सुखी नही बन
सकता। वह तभी सुखी बन सकता जब मृत्यु के
भय से मुक्त हो। आत्मसाधना मे रमने वाला
व्यक्ति मृत्यु --जयी बन जाता है उसे मौत का
कोई डर नही रह जाता।

{1345}

कितना भी परिवर्तन
हो जाय किन्तु जड कभी चैतन्य
नही होता। जड,चेतन से विजातीय
होने से उसे सुख नही दे सकता।
चेतन ही चेतन को सुखी बना
सकता है।

{1346}

करूणावंत साधक
अखिल प्राणियो के
दु खो को दूर करने की
नि.स्वार्थ भावना वाले
होते है।

{1347}

मानसिक
एव कर्म--रोगो से रूग्ण
मानवो को समता
चिकित्सा प्रणाली अपनानी
चाहिए।

{1348}

निष्कपट रहने पर
प्रामाणिकता आती हे और इसके
आने पर जीवन मे एक स्वस्थ एव व्यवस्थित
परिपाटी के निर्माण का संकल्प जगाता हे। इसी
व्यवस्था का नाम है मर्यादा, नियम एव
संयम का अनुपालन।

{1349}

समीक्षण ध्यान की साधना
पद्धति आगम वर्णित सहज योग
की साधना पद्धति का ही मूल रूप है।
जैनागमो मे ध्यान साधना का विहंगम एवं गहनतम
विवेचन–वर्णन उपलब्ध होता है वहा ध्यान,ध्याता
और ध्येय के संबध मे ही नही,
इनकी सुव्यवस्थित क्रिया विविधो के
संदर्भ में भी सुविस्तृत हुआ है।

{1350}

अपने निज
स्वरूप को भूल कर संसार
के विज्ञान को ही सब कुछ
मानता हे,
वह अज्ञानी है।

{1351}

जिन धर्म के उपासक
कहलाने वाले जैनी, जो कि
छोटे से छोटे जन्तु को मारने मे हिचकते
हैं, ऐसे अहिंसक व्यक्ति यदि दहेज प्रथा
के रोग से ग्रस्त है तो वे सच्ची तरह से
अहिंसा की उपासना नही कर सकते।

{1352}

जिह्वा के वश होकर
अण्डे जैसे अभक्ष्य नॉनवेज मिश्रण
दिया जाता हे। अत शाकाहारी वस्तुओ
को भी समझकर उपयोग करने की
आवश्यकता है जिसमें अधिक रूप मे
नॉनवेज हो, वह शाकाहार
भी घातक है।

{1353}

उच्चवर्ग का पाखण्ड
रूपी विष आज इस तरह
सब ओर रमने लगा है कि दीप लेकर
भी प्रामाणिकता को
खोज निकालना कठिन
हो गया है।

{1354}

प्रामाणिकता की धारा
उन लोगो से बहेगी तभी
वह सारे समाज में फैलेगी, जो समाज
मे किसी भी नजर से जिम्मेदार जगहों
(पदो) पर काम करते हैं अथवा परम
आध्यात्मिक है।

{1355}

मन एक ऐसा अश्व है कि
यदि लगाम हाथ मे न हो तो सवार
को किसी भी बीहड वन मे भटका सकता है या
भयंकर गड्ढे में डाल देता है किन्तु यह भी उतना
ही सत्य है कि मन की दशा बदल जाय, उसे
सम्यक् मार्ग मिल जाये तो वह प्रचण्डतम ऊर्जा
का संभाग बन कर परमात्म साक्षात्कार का
माध्यम भी बन सकता है।

{1356}

वीतरागी
महापुरुषो की गुण स्तवना
स्वात्मीय जीवन को
आलोकित करने में
सहायक होती है।

{1357}

स्वात्माभिमुख
साधक यह जान लेता
है कि मनोज्ञता या
अमनोज्ञता पुद्गल के
परिणाम से है, इस पर राग द्वेष
कर कर्म बधन
नही करना चाहिये।

{1358}

चैतन्य उत्पाद-व्यय
स्वभाव वाला होते हुए
भी चैतन्यत्व की अपेक्षा ध्रुव हे।
उस चैतन्यत्व के जागृत करने के
लिए चेतन का ही
सम्पर्क प्रभावी बनता हे।

{1359}

शान्ति का
स्वरूप सम्यक्
प्रकार से मन के समीक्षण
से ही जाना जा सकता
है।

{1360}

जिस प्रकार आत्माए मूल मे
समान होती हे किन्तु कर्मो का मेल उनमे
विवाद पेदा करता है, उन्हे सयम ओर नियम
द्वारा समान बनाया जा सकता हे। उसी प्रकार
समग्र मानव समाज मे भी स्वस्थ नियम प्रणाली
एव सुदृढ सयम की सहायता से समाज
मे समता का भी प्रसारण किया
जा सकता हे।

{1361}

रूपासक्ति इस
जीवन को ही नही जन्म जन्मान्तर
को बर्बाद कर देती है। व्यक्ति के
मानसिक तत्र को खराब करके
इस जीवन की गतिविधियो को भी
अस्त- व्यस्त कर देती हे।

{1362}

आप सभी श्रेय
मार्ग के राही बनना चाहते हो,
तो प्रेय मार्ग को सबल बनाने
वाली दहेज प्रथा को त्याग देना
चाहिए।

{1363}

वर्तमान
युग मे सन्तोष की सीमाएँ
टूट गई और वितृष्णा
व्यापक हो रही हे।

{1364}

वर्तमान विषमता के मूल
मे सत्ता व सम्पति पर व्यक्तिगत
या पार्टीगत लिप्सा की प्रवलता ही विशेप रूप से
कारण भूत हे। यही कारण
सच्ची मानवता के विकास मे वाधक हे।
समता ही इसका स्थायी व सर्वजन
हितकारी निराकरण हे।

{1381}

अन्त समीक्षण कषाय की आग को शान्त करने के लिए पानी है,वैर विरोध की गर्मी को प्रशान्त करने हेतु यह मेघ की धारा, मन की मलीनता को धोने हेतु गगाजल है,विषयो के विष विकारो को हटाने के लिए अमृत है, मोहान्धकार को हटाने के लिए सूर्य है, आध्यात्मिक दीनता को दूर करने के लिए चिन्तामणी है,और मुक्ति रूपी फल के लिए कल्पवृक्ष हे।

{1382}

महावीर ने इस समता दर्शन को व्यवहारिक वनाने के लिए जिस चतुर्विध संघ की स्थापना की उसकी आधारशिला भी समता पर रखी गयी।

{1383}

दृष्टि जब सम होती है अर्थात-उसके भेद नही होता विकार नही होता और उपेक्षा नही होती, तब उसकी नजर मे जो आता हे वह न तो राग या द्वेष से कलुषित होता है और न स्वार्थभाव से दुषित।

{1384}

क्रोध को मेगाटन शक्ति वाला वंम या इससे भी भयानक बव कह सकते हें जो जहॉ गिरता है, वहॉ की आत्म- गुणों की उपजाऊ भूमि को नष्ट -भष्ट कर डालता हे।

{1385}

कटु वचन को तलवार की धार की उपमा दी जाती है। तलवार का घाव तो कालान्तर मे शीघ्र भर जाता है लेकिन दुर्वचन का घाव दीर्धकाल तक हरा रहता है।

{1386}

क्रोधी व्यक्ति अपने चरित्र को देखना और समझना तो भूल जाता है। परन्तु दूसरो की अधिकाशत झूठी निन्दा करने मे कुशल बन जाता है। उसके स्वभाव की यह विकृत्ति उसे असामाजिक बना देती है।

{1387}

यदि व्यक्ति के मस्तिष्क मे समता जीवन दर्शन का बीज अकुरित हो गया है तो उसकी वाणी मे समता का प्रवाह बहने लगेगा, उसके नेत्रो से समता का झरना बहेगा, उसके कानो मे समता का नाद गूजेगा, उसके हाथ समता के कार्य मे अग्रसर होगे, उसके पैरो की गति समता जीवन की साधना मे तप्पर होगी, उसके शरीर के अणु-२ मे से समता जीवन दर्शन का प्रकाश फूट पडेगा और वह समता की परम पावनी गगा वहाता हुआ जन- जन के मन को पवित्र करता हुआ चलेगा।

{1388}

क्रोध के इस कुप्रभाव की विष-तरगे इस प्रकार फैल जाती है कि जो क्रोधी के तन मन को दीर्घकाल तक स्वस्थ नही होने देती।

{1389}

मेरे तेरे की
भावना से ऊपर उठने मे
ही जागृति का मूल मन्त्र समाया
हुआ हे और इसी भावना की नीव
पर त्याग का प्रासाद खडा किया
जा सकता है।

{1390}

जड का मादक असर
जितना बढता हे दुर्गुणो
की ग्रस्तता उतनी ही अधिक
फेलती हे ओर इसी परिमाण मे
चेतना शक्ति दुर्बल होती चली
जाती है।

{1391}

मन की क्रूर विचारणाएँ
वचन
की कठोरता मे प्रकट
होकर सब का दिल
दु.खाती है।

{1392}

वर्तमान विषमता की
कर्कश ध्वनियों के बीच आज
साहस करके समता के समरस स्वरो
को सारी दिशाओ मे गुजायमान करने
की आवश्यकता है सम्पूर्ण मानव समाज ही नही
समूचा प्राणी समाज भी इन
स्वरो से आल्हादित हो उठेगा।

{1393}

त्याग का अर्थ हे
जो अपने पास परिग्रह हे उसे भी
परोपकार के निमित्त छोड देना
बल्कि यो कहे कि अपनी ही
आत्मा के उपकार के
निमित्त छोड देना।

{1394}

सम्पन्न वर्ग का
चेतन्य जड के ससर्ग से जड
हुआ जा रहा ह तो अभावग्रस्त
वर्ग का चेतन्य जड के अभाव मे
जडा हुआ जा रहा हे।

{1395}

भोग स्वयं
के लिये ही होता
हे इसलिए भोग वृत्ति
स्वार्थ को जन्म
देती हे।

{1396}

जिह्वा के माध्यम से
प्राणी जिस मिष्ठान्न को अधिक
खाना चाहते ह, उसी मिष्ठान्न को
उसे बार-वार खिलाया जायगा तो वह उसक
लिए हानिकारक वन जाएगा। अत॰ इन्द्रिय
सुखो के उपभोग से हटकर इन्सान को
अतीन्द्रिय साधना मे लगना चाहिये।

{1397}

साधना की आराधना उधार
का धंधा नही, अपितु नगद का
व्यापार है। लेकिन व्यक्ति साधना आज नही कल
करना चाहता है ओर विराधना कल नही आज
करना चाहता है। क्रोध कल नही आज वल्कि
अभी करना चाहता हे जव कि क्षमा आज नही
कल करने में भी सोचने लगता हे।

{1398}

मतलव खोर मन,
मनुष्यता की जडो पर
ही जव कुठारघात कर देता हे
तव स्वस्थ विचारों की
उत्पत्ति ही दुस्साध्य
वन जाती हे।

{1399}

आत्मा की समग्र
उपलब्धियॉ मानव भव मे ही संप्राप्त
होती है। अत· तद्रूप
मानवतन का मूल्याकन करो।
अमूल्य हीरे को कोडियो
के भाव मे मत वेचो।

{1400}

वडे से वडे विद्वान्
भी अपनी विद्वत्ता को
अनुभव को हथेली पर निकाल कर
नही दिखा सकता। वेसे ही आत्मिक
सुख, अनुभूति का विषय हे।
उसे कहा नही,
पाया जा सकता है।

{1401}

प्रकृति की दृष्टि से
भी मास खाना, इन्सान
का लक्षण नही है। शाकाहारी पशु जिस
प्रकार होठ से पानी पीते है। दात उनके
चपटे होते है। इन्सान के भी वैसे ही है।
अत शाकाहार ही मानवीय
सभ्यता के अनुरत है।

{1402}

स्पर्श विषय मानव
को क्षणिक सुखकारी महसूस
हो सकता है, अन्तत तो महा दु.ख देने
वाला बनता है। आत्मा की ऊर्जा के
अधोगामी बनाने वाला होता है। शरीर
को शिथिल एवं मग्न बना देता है।

{1403}

स्मरण रखे, जिसका
प्रारम्भ सुधर जाता है, उसका
शेष जीवन भी सुधर जाता है। हलुवे की चासनी
प्रारम्भ मे बिगड गई तो हलुवा बिगड जाएगा,
वैसे ही जीवन की चासनी प्रारम्भ मे बिगड गई
तो पूरी जिन्दगी बिगड जायेगी।

{1404}

दुर्गुण अकेला
नही आता एक के साथ
एक और एक के बाद एक इस
तरह इस गति से मनुष्यता
पशुता और पैशाचिकता में
ढलती जा रही है।

{1405}

पुद्गलो के
परिवर्तन से सुगध
दुर्गन्ध मय और दुर्गन्ध
सुगन्धमय हो जाती हे। अतः
किसी पर भी राग द्वेष
करना उचित नही।

{1406}

शिक्षा का
उद्देश्य हे-जीवन को सस्कारी
बनाना, न कि
धनोपार्जन। धनार्थी की शिक्षा,
घातक भी बन
सकती है।

{1407}

सच्चा,
उपदेष्ण,अनुग्रह बुद्धि
से जैसे पुण्यशाली सत्ता
-सम्पन्न को उपदेश देते है,
वैसे ही तुच्छ
रक को भी।

{1408}

किसी भी महापुरुष का
गुण-गान करे, किन्तु जब तक
उनके गुणो का प्रवेश जीवन मे नही होगा तब
तक स्वय उत्थान नही हो सकता। रोटी के
गुण समझने एवं गाने के साथ ही पेट भरने के
लिए उसे खाना भी होगा।

{1409}

कोई भी
इन्द्रिय बाहरी तत्त्वों
मे अधिकाधिक शान्ति नही
पा सकती। बाहरी तत्त्वो का
बार-बार उपभोग आत्मा
को दु खी बनाने वाला
होता है।

{1410}

एन्द्रियक शक्ति
भौतिक विषयों में लगकर
क्षणिक सुख देती हे। जव कि
वही शक्ति अध्यात्म लगे पर
शाश्वत आनन्न
प्रदान करती हे।

{1411}

भीतरी के
विकारो को जलाने
के लिए तप आवश्यक हे।
तप तन को ही नही बुद्धि
को भी निर्मल
बना देता है।

{1412}

जिनके पास भोतिक साधनों
की जितनी अधिक विपुलता हे, वे
उतने ही अधिक अशान्ति की आग से जल रहे
हे। इसका कारण उनकी तुच्छ स्वार्थ बुद्धि हे,
यदि वे उनका उपभोग सम्यक् रीत से करे तो
आनन्द भी पा सकते ह। मजा खाने मे
नही खिलाने मे ह।

{1413}

जवानी के साथ यदि धन
सपति का योग हो जाय तो
अनर्थो की संभावना एक पर एक ग्यारह की तरह
बढ सकती हे। यदि इसके साथ प्रभुत्व (सत्ता)
मिल जाय तो १११ की तरह अनर्थो की सभावना
बहुत अधिक बढ जाती हे यदि इनके साथ
अविवेक भी जुड जाय तो फिर कहना ही क्या
है-सर्वनाश ही समझ लेना चाहिए।

{1414}

तपस्या की
अग्नि मे तपकर
आत्मा शुद्ध स्वर्ण की तरह
निखर उठती हे। वशर्ते की
तप क्षमा भाव के साथ हो।

{1415}

जितना भी विकास
दृष्टिगत होता है चाहे
वह भौतिक क्षेत्र मे हो
अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र मे,
वह मानव तन से ही
सभव हो सका है।

{1416}

जेसे वहता हुआ
पानी निर्मल होता हे उसी तरह
विचरण करता हुआ मुनि भी
अनासक्त अप्रतिष्ठत ओर
निर्ममत्व होने के कारण
निर्मल बना रहता हे।

{1417}

जिस संयम की साधना
और रक्षा हेतु शेषकाल में
विहार की अनुज्ञा है, उसी सयम की
साधना और रक्षा हेतु ही चातुर्मास
काल मे एक स्थान
पर रहने की अनुज्ञा है।

{1418}

चातुर्मास कल्प का
उद्देश्य मुनियों की आत्मसाधना तो
है ही परन्तु इसके साथ ही सघ, तीर्थ,
समाज ओर सर्व
साधारण के कल्याण की भावना भी
इसमें सन्निहित है।

{1419}

जिस प्रकार वस्त्रो का शरीर
की शक्ति के साथ सबध नही है,
यदि पहलवान स्त्री वेश धारण करले तो उसकी
शक्ति में कोई अंतर नहीं पडता, उसी प्रकार
आत्मा के लिए स्त्री-पुरुष, आत्मा की अनत
शक्ति मे कोई
अतर नही आता है।

{1420}

तप के माध्यम
से भूख की परतंत्रता मिटती
है, शरीर की आसक्ति घटती
है और भावनाओ
की निर्मलता आती है।

{1421}

आध्यात्मिक रत्नो
का सग्रहण गृहस्थ
जीवन मे उतना नही हो पाता,
क्योकि उसक समक्ष सासारिक
झझटे समस्याए खडी रहती हैं।

{1422}

बाह्य और
अन्तरग दोनो ही सधियो
से जब समीक्षण पूर्वक नमन होगा
तब निश्चित रूप से सभी पापो
का नाश हो जाएगा।

{1423}

तप से दोषो
को हटाने की क्षमता, एव
कषायो को शमन करने की
योग्यता प्रकट होती है।

{1424}

भगवान् महावीर ने दुव्यशात्री
बनने के लिए दान देने की बात
करी है, उसमे अन्नदान सब से पहले बतलाया है।
स्वय पहले न खाकर दूसरो को खिलाकर खाने वाला
पुण्यशाली होता है। अन्न कितना दान मे दिया यह
महत्व पूर्ण नहीं जितना कि स्वय
के खाने से पहले खिलाना महत्वपूर्ण है।

{1425}

जो आत्मा साधु
जीवन स्वीकार करने
के साथ ही द्रव्य और भाव
से परिग्रह की ग्रथि से मुक्त हो
जाता है। उस आध्यात्मिक जीवन
का अद्‌भुत खजाना हस्तगत हो
जाता है।

{1426}

धर्म और मोक्ष
के अकुर को आप
प्रकट करना चाहते हैं तो पहले
आत्मा को सरल, करूणार्द और
सुकोमल बनाना सीखे।

{1427}

जो साधु साधना
करके भी चापल्य
वृति वाला बन जाता है
वह कभी कभी उन्नत दशा
को प्राप्त नही कर सकता।

{1428}

लोहा भी २५०० डिग्री गर्मी
पाकर पिघलकर भाप बन जाता हे।
उसी प्रकार जब शुभ ध्यान अग्नि की हीट तेज
होती है तो आत्मा भी कर्मो से हटती
तरल–हल्की बनाकर मुक्ति
की उडान भरने लगती है।

{1429}

यदि भावना की शुद्धि मात्र
से ही आत्मा को ऐसी परम
उपलब्धि हो जाती होती तो तीर्थकर
और दूसरे हजारों महापुरुष राज्य वैभव न
छोडते और तपश्चर्या के कठोर मार्ग का
अवलबन न लेते ओर न ऐसा
करने का उपदेश ही देते।

{1430}

समता के
धरातल पर ही हमे वाह्य
एवं अन्तरंग का अवलोकन
करना है। तभी जीने की
सही
राह मिलेगी।

{1431}

साधु संत स्वकल्याण
के साथ ही सर्व-साधारण को विना
किसी भेदभाव के आशंसा रहित होकर,
एकान्त परमार्थ दृष्टि से उपदेश देकर
उनके जीवन को संस्कारित करने
का प्रयत्न करते है।

{1432}

आज दुनियां की दूरी
मिटने के साथ ही साथ
दिलों की दूरी वढती जा रही है। यह
उच्च स्वार्थ का परिणाम है। दिल की
दूरियां कमी आम
शांति नही दे पाती।

{1433}

समता द्वारा जीवन
मे समभावना की समीक्षण
द्वारा आत्मा से परमात्मा
की दूरी तय की जाती है।
आवश्यकता है इन्हे
समझने की।

{1434}

जिन आत्माओ ने
अपने अन्तर स्वरूप को समझा
है, उन्होने संसार को समग्र रूप
से जाना है। उन्हे संसार से स्वतः
ही विरक्ति होती चली जाती है।

{1435}

आन्तरिक विकृति के सूक्ष्म
अश आत्मा की भीतरी तहो मे इस
प्रकार छिपे रहते है, कि उन्हे पकडने की शक्ति
किसी सूक्ष्म दर्शक यंत्र मे नही है। उन्हे पकडने
के लिए तो उनके अनुरूप यत्र की आवश्यकता
रहती है, वह यंत्र है - अन्त· समीक्षण।

{1436}

आज साधनो की
वृद्धि के साथ-साथ
अशान्ति की वृद्धि होती
जा रही है। इसका कारण,
व्यक्ति की विषमता
मूलक स्वार्थ परक
दृष्टिकोण है।

{1437}

अन्त समीक्षण
शांति का संदेश वाहक
है वर्षो की ही नही अपितु
जन्मो-जन्मातरो की
कुआदतों से हटाकर आत्मा की
निजानतरमण
कराने वाला है।

{1438}

भोतिक साधनो
की अभिवृद्धि शान्ति
की विधि नही हे। बल्कि व्यक्ति
की सही समझ
ही उसे सुखी बना
सकती हे।

{1449}

भीतर में
अनन्त शक्ति
का स्त्रोत है,
जरा झाकिये
तो सही।

{1440}

आध्यात्मिक क्षेत्र मे
तो पाखण्ड का अस्तित्व ही
घातक होता है जब कि वस्तुस्थिति
ऐसी भी है कि धर्म ओर सम्प्रदायो के
नाम पर भी भयंकर पाखड
चलता हे। यह जटिल ओर
विषम स्थित हे।

{1441}

यदि मानव वर्तमान
जीवन को व्यर्थ के
झझावालो से बचाना चाहता
है तो व्यथ के पापो से बचने का
प्रयत्न करे। फिजूल
की बातो मे अपनी
एनर्जी खर्च न करे।

{1442}

अपनी गलत दिशा
को छोड दीजिये ओर सही
दिशा की ओर मुड जाइये। वह
सही दिशा है-
समता ओर समीक्षण।

{1423}

मनुष्य जीवन
से ही स्व का परिपूर्ण
समीक्षण किया
जा सकता है।

{1444}

कपट माया दभ ओर
पाखण्ड की वृत्ति से अपनी
आत्मा की श्रेष्ठता की घात तो
वह करता ही हे किन्तु प्रतिशोध
या आत्मगलानि के भंवर में पडकर वह कभी
आत्म हत्या करने के लिये
भी तेयार हो जाता हे।

{1445}

जीवन की प्रक्रिया मन के साथ है। जीवन निर्माण की जठराग्नि मन है। वह मन रूपी जठराग्नि यदि मन्द है तो कुछ ओपधि का सेवन करके तीव्र बनाना चाहिये। यदि उसकी पाचन क्रिया विकृत हो गई है तो उसका इलाज करके उसे व्यवस्थित करना है। मन की जठराग्नि ही जीवन का रस तेयार करेगी ओर वर्तमान जीवन सुखी और समृद्धिशाली तभी वन सकेगा जवकि जीवन की तन्दुरुस्ती वास्तविक रूप मे आयेगी।

{1446}

मानव यदि अपनी शक्ति को मोडता है, तो उसके भाग्य मे भी मोड आ जाता है।

{1447}

आज तक संसार का कोई भी व्यक्ति धन से सच्चा सुख नही पाया है। सुख भोग मे नही त्याग मे है। क्योकि भोग के साधन जड है, वह चेतन आत्मा को सुखी नही बना सकते।

{1448}

जीवन की भव्य रत्न राशि मे ककरो के समान जो हीन भावनाओ का सचय है, काषायिक मलिन तत्त्वो की उपस्थिति है, उनको चुनने का अभ्यास बनाइये।

{1449}

भाग्य भरोसे चलने वाला इन्सान सफल नही होता। भाग्य कैसा भी क्यो न हो, यदि आदमी पुरुषार्थ सतत बना रहे तो कैसे सफल हो सकता है।

{1450}

जहां अलग-अलग पार्टियो हो, अलग-अलग व्यक्तियो के गुट हो, अलग- अलग भावना से स्वार्थ का पोषण हो वहां व्यक्ति का मन दूषित हुए बिना नही रहता।

{1451}

मन को पाप रूपी मल से खाली करना है उसके पश्चात् समता रूपी औषधि की मात्रा लेनी है, और आत्म-समीक्षण की साधना मे प्रवेश करना है। वही प्रवेश साधना का रस प्रदान करने वाला बनेगा। सामायिक के कार्यक्रम मे आपका मन डोलता रहा, केवल भक्तामर के शब्दों में रह गया तो पुण्यवानी तो बधेगी, लेकिन जिस उद्देश्य से सामायिक साधना मे बेठे है, वह उद्देश्य सिद्ध नही होगा।

{1452}

जो कुछ जाना है वह सही है या नही उसकी सबसे बडी कसौटी शुद्धात्मानुभूति ही होती है।

{1453}

आध्यात्म से तात्पर्य–
अधि आत्मनि योग इति
अध्यातम है जिसके मन– वचन–काय
का स्पन्दन आत्म स्वरूपी हो वह
अध्यात्म है। अत किसी भी कार्य को
करने मे साधक का लक्ष्य आत्म
स्पर्शि होना चाहिए।

{1454}

यदि मानव–मस्तिष्क समता
सिद्धान्त दर्शन से शुद्ध बनाया
जाय तो उसमे शाति का
बीजारोपण
हो सकता है।

{1455}

उत्तेजना,
व्यक्ति से अनर्थ
करा बैठती है। अत कोई
भी निर्णय शांत चित्त से ले।

{1456}

बूरे विचार जल्दी भीतर
मे प्रवेश पा जाते हे, अच्छे
विचारो को लाने मे काफी कुछ
प्रयत्न की आवश्यकता रहती है। पानी नीचे
स्वत बहता है उसे ऊपर चढाने
के लिये भारी होर्स पावर की
मशीने लगानी पडती है।

{1457}

जिन आत्माओ
का शरीर, निर्मल आत्मा
से निर्मल विचारो से जुडा रहता
है, उनका शरीर भी उन पवित्र
आत्मिक विचारो से प्रभावित हुए
बिना नही रहता है।

{1458}

भोग–विलास और
ऐश्वर्य के वातावरण मे रहकर
केवल भावना के
बल पर मोक्ष की साधना
की बात जितनी सरल है,
उसका आचरण उतना
ही कठिन है।

{1459}

शरीर आत्मा
रहित है तो वह
बेकार है जड है। वह
सड–गल जाता है दुर्गन्ध से
भर जाता है।

{1460}

सत्ता ओर सम्पत्ति को,
चाहे वह व्यक्तिगत हो या
राष्ट्रीय हो अपने अधीन रखने वाला व्यक्ति
अपनी भावना को सात्विक रख सके, यह
अत्यन्त कठिन और दु शक्य है।

{1445}

जीवन की प्रक्रिया मन के साथ है। जीवन निर्माण की जठराग्नि मन है। वह मन रूपी जठराग्नि यदि मन्द है तो कुछ औषधि का सेवन करके तीव्र बनाना चाहिये। यदि उसकी पाचन क्रिया विकृत हो गई है तो उसका इलाज करके उसे व्यवस्थित करना है। मन की जठराग्नि ही जीवन का रस तैयार करेगी और वर्तमान जीवन सुखी और समृद्धिशाली तभी बन सकेगा जबकि जीवन की तन्दुरूस्ती वास्तविक रूप मे आयेगी।

{1446}

मानव यदि अपनी शक्ति को मोडता है, तो उसके भाग्य मे भी मोड आ जाता है।

{1447}

आज तक ससार का कोई भी व्यक्ति धन से सच्चा सुख नही पाया है। सुख भोग में नही त्याग मे है। क्योंकि भोग के साधन जड है, वह चेतन आत्मा को सुखी नही बना सकते।

{1448}

जीवन की भव्य रत्न राशि मे कंकरो के समान जो हीन भावनाओ का सचय है, काषायिक मलिन तत्त्वो की उपस्थिति है, उनको चुनने का अभ्यास बनाइये।

{1449}

भाग्य भरोसे चलने वाला इन्सान सफल नही होता। भाग्य कैसा भी क्यो न हो, यदि आदमी पुरुषार्थ सतत बना रहे तो कैसे सफल हो सकता है।

{1450}

जहा अलग-अलग पार्टियो हो, अलग-अलग व्यक्तियो के गुट हो, अलग- अलग भावना से स्वार्थ का पोषण हो वहां व्यक्ति का मन दूषित हुए बिना नही रहता।

{1451}

मन को पाप रूपी मल से खाली करना है उसके पश्चात् समता रूपी औषधि की मात्रा लेनी है, और आत्म-समीक्षण की साधना में प्रवेश करना है। वही प्रवेश साधना का रस प्रदान करने वाला बनेगा। सामायिक के कार्यक्रम मे आपका मन डोलता रहा, केवल भक्तामर के शब्दो मे रह गया तो पुण्यवानी तो बंधेगी, लेकिन जिस उद्देश्य से सामायिक साधना मे बेठे है, वह उद्देश्य सिद्ध नही होगा।

{1452}

जो कुछ जाना है वह सही है या नही उसकी सबसे बडी कसौटी शुद्धात्मानुभूति ही होती है।

{1453}

आध्यात्म से तात्पर्य–
अधि आत्मनि योग इति
अध्यातम है जिसके मन– वचन–काय
का स्पन्दन आत्म स्वरूपी हो वह
अध्यात्म है। अत किसी भी कार्य को
करने मे साधक का लक्ष्य आत्म
स्पर्शि होना चाहिए।

{1454}

यदि मानव–मस्तिष्क समता
सिद्धान्त दर्शन से शुद्ध बनाया
जाय तो उसमे शांति का
बीजारोपण
हो सकता है।

{1455}

उत्तेजना,
व्यक्ति से अनर्थ
करा बैठती है। अत कोई
भी निर्णय शांत चित्त से ले।

{1456}

बूरे विचार जल्दी भीतर
मे प्रवेश पा जाते है, अच्छे
विचारो को लाने मे काफी कुछ
प्रयत्न की आवश्यकता रहती है। पानी नीचे
स्वत बहता है उसे ऊपर चढाने
के लिये भारी होर्स पावर की
मशीने लगानी पडती है।

{1457}

जिन आत्माओ
का शरीर, निर्मल आत्मा
से निर्मल विचारो से जुडा रहता
है, उनका शरीर भी उन पवित्र
आत्मिक विचारो से प्रभावित हुए
बिना नही रहता है।

{1458}

भोग–विलास और
ऐश्वर्य के वातावरण मे रहकर
केवल भावना के
बल पर मोक्ष की साधना
की बात जितनी सरल है,
उसका आचरण उतना
ही कठिन है।

{1459}

शरीर आत्मा
रहित है तो वह
बेकार है जड है। वह
सड–गल जाता है दुर्गन्ध से
भर जाता है।

{1460}

सत्ता और सम्पत्ति को,
चाहे वह व्यक्तिगत हो या
राष्ट्रीय हो, अपने अधीन रखने वाला व्यक्ति
अपनी भावना को सात्विक रख सके, यह
अत्यन्त कठिन और दु शक्य है।

{1461}

परमात्मा का स्वरूप
'ऐसा नही है' "ऐसा नही है"
इस रूप में ही व्यक्त किया जा
सकता है। *"वह कैसा है"* यह विषय शब्दों और
विकल्पो की परिधि से बाहर है। परमात्मा केवल
अनुभवगम्य है, गूंगा गुड़ के स्वाद का अनुभव
कर सकता है, परन्तु उस स्वाद के स्वरूप का
कथन नही कर सकता हैं।

{1462}

आध्यात्मिक
गुणों के मकरन्द
का आस्वादन एक बार भी
किसी ने कर लिया है तो
उसका जीवन बदल
जाएगा।

{1463}

यदि मन में मलिनता
है तो नेत्रों में भी मलिनता
आए बिना नही रहेगी। भीतरी सोच का
किसी न किसी रूप
मे बाहर रिएक्सन होगा ही
अत बाहर को नही भीतर
को ठीक करे।

{1464}

जिसका नाम ही
चंचला है, वह लक्ष्मी किसी भी व्यक्ति
के साथ स्थायी रूप से नही रह
सकती। अत उसके आने में खुशी
एवं जाने पर गम करना बुद्धिमता
नही हैं।

{1465}

जो सदा के लिये
आध्यात्मिक लक्ष्मी को
पाना चाहता है, वह प्रभु के
श्रुत धर्म और चारित्र धर्म
रूप परम पवित्र चरणो
को ग्रहण करें।

{1466}

मन की चंचलता
व्यक्ति के पूरे अस्तित्व को प्रकंपित
करने लगती है। अत मन को स्वच्छ
विचारों से ओत प्रोत बनाने के लिये
सत्संग, सत्साहित्य के पठन–पाठन को
करते रहना चाहिये।

{1467}

वैज्ञानिक अनुसंधानों का
लक्ष्य भौतिक मात्र होने के कारण
दुनिया के आनन्द में जो सुख–शान्ति परिलक्षित
होनी चाहिए थी, वह नही हो रही है। इसलिए
वैज्ञानिक अनुसधानो के कारण
विश्व में अशान्ति
का वातावरण बढा है।

{1468}

जिसमे
आध्यात्मिक गुणों
की सुगन्ध और वस्तुत
आनन्द की लहर नही है तो
उस जीवन का विशेष
मूल्याकंन नही हो सकता।

{1469}

आस-पास का
वातावरण व्यक्ति को
बहुत हद तक प्रभावित करता
है।अतः सही संस्कारो को भीतर
मे रमाने के
लिए संगत भी अच्छी
होनी चाहिये।

{1470}

चिन्तामणी रत्न
सम सप्राप्त मानव भव
का सदुपयोग आत्म-कल्याण के
लिए ही कीजिए,
भौतिक उपलब्धियो
के लिए नही।

{1471}

यदि हम
आत्मा रूपी दर्पण
को स्वच्छ करना
चाहते है तो ममता
के मैल को धोना
ही पडेगा।

{1472}

पावर-हाऊस से तारो के
माध्यम से सम्बन्धित होते ही जैसे
लट्टू रोशनी से जगमगाने लगता है, वैसे ही
प्रार्थना के द्वारा परमात्मा का सम्पर्क होते ही
भक्त का हृदय भी प्रकाश मान हो उठता है,
पाप की कालिमा नष्ट हो जाती है।

{1473}

जीवन रूपी वस्त्र
को धर्म के रग मे
रग लीजिए। आपके हर व्यवहार
मे धार्मिकता, सदाशयता
का पुट
रहना चाहिये।

{1474}

प्रार्थना के माध्यम
से भक्त के हृदय-तत्री
के तार झकृत हो उठते है। और
भावनाओ मे अध्यात्म के प्रति
उभार आने
लगता है।

{1475}

प्रार्थना वह पथ्य
है जो हृदय
के रोगो को मिटा कर उसे
आरोग्य ओर
आनन्द प्रदान करता है।

{1476}

यह संदेहतीत तथ्य है कि
जब-जब मानव ने सदाचार की अवहेलना की,
उस पर विपत्ति के बादल मंडराये हे।
विषमताए पनपी है, जीवन का धागा टूटा हे,
समाज उच्छृखल
बना हे ओर राष्ट्र पर संकट
गहरा हे।

{1477}

मनोवैज्ञानिको का कथन
है किजितने प्रश्न खडे होते है,
उतने ही समाधान पूर्व में ही निश्चित
होते है। समस्त तनावो से मुक्ति का एकमेव
समाधान है–ध्यान–योग। ध्यान–
साधना केवल मानसिक तनावो से ही
नही, आर्थिक,सामाजिक,पारिवारिक एवं
राजनैतिक सभी तनावो से मुक्ति
दिलाने मे सक्षम हैं।

{1478}

मोह को
जीतना असभव नही, संभव है
लेकिन उसके लिए आवश्यक
है दृढ
संकल्प और प्रबल
पुरुषार्थ की।

{1479}

मदिरा तो व्यक्ति की
चेतना को केवल आच्छादित
करती है, जबकि मोह आत्मा
की चेतना को आच्छादित करने के
साथ ही साथ उसे विपरीत दिशा मे–
मिथ्यात्व मे पटक देता है।

{1480}

गुरु और माता–पिता
नि स्वार्थ भाव से आशीर्वाद देने
वाले होते हैं। अत यथा सभव
प्रतिदिन गुरुदर्शन, माता–पिता को
चरण नमन करना चाहिए। उनकी
दुआए, तुम्हे भाग्यशाली बनाती है।

{1481}

पारिवारिक जीवन
मे माता–पिता के अलावा
जो भी भाई – बहिन बडे है उनके
प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार करने मे
कोई हिचक
नही होना चाहिये।

{1482}

पारिवारिक परिवेश में,
जाति या समाज–गत क्षेत्र
मे राष्ट्रीय परिधि मे और अन्तर्राष्ट्रीय
स्थिति मे –सर्वत्र सदाचार और
अनुशासन
की आवश्यकता है।

{1483}

स्थूल शरीर मे चैतन्य देव रहा
हुआ है। उस चैतन्य देव के लिये स्थूल
शरीर भी एक प्रकार की पोषाक है। कपडे की
पोषाक जीर्णशीर्ण हो फट जाती है तो उस पोषाक से
विलग होने मे किसी प्रकार का शोक, सताप नहीं
होता, बल्कि एक प्रकार की प्रसन्नता ही होती है।
वैसे ही स्थूल शरीर सम्बन्धी इष्ट के वियोग एव
अनिष्ट के सयोग को भी पोषाकवत् समझ कर मुझे
सममाव का अवलम्बन लेना चाहिये।

{1484}

क्रोधी व्यक्ति
से पारिवारिक जन
भी प्रेम नही करते वे
भी सोचते है कि कब
घर से निकले तो
अच्छा रहे।

{1485}

भारतीय लोगो
मे अधानुकरण अधिक
देखा जाता है। यदि किसी भी
वस्तु से हानि भी है तो वह
जल्दी से उसे
छोडता नही है।

{1486}

प्रेम का पागल
व्यक्ति ऐसा अनर्थ
कर देता है जिसे भव–भव तक
नही सुधारा जा सकता है।

{1487}

क्रोध से किसी
आदमी को दबाया जा
सकता है बदला नही जा
सकता।

{1488}

यदि जीवन का सही मूल्याकन
करना है, यदि नव–निर्माण की
शक्ति के साथ वर्तमान को स्वर्णिम
आदर्शो पर टिकाता है और भविष्य को
उज्ज्वलतर बनाना है तो जीवन मे
सदाचार अपनाना ही होगा।

{1489}

यदि आज सुखी है
तो कल भी रहेगा। जो
आज सुखी नही है, वह कल भी
नही रह सकेगा। क्योकि अमुक
इच्छा पूरी होते होते दूसरी अनेक
खडी हो जाती है।

{1490}

भारत भूमि
आध्यात्मिकता की जननी
है। यहां पर महात्माओ ने बहुत
कुछ किया है
और आगे भी करेगे।

{1491}

पाश्चात्य देश
जिस भौतिकता
को उतार कर फैक
रहे हैं, उसे भारतीय अपना
श्रृंगार समझ
रहे हैं।

{1492}

सम्मिलित व्यापार तभी
सफल हो सकता है जब दोनो का दिल साफ
हो और एक दूसरों के प्रति पूरी तरह समर्पित
हो। किसी के बहकावें मे आकर एक दूसरे के
प्रति संदेहशील न बनते हुए परस्पर
स्पष्टीकरण कर लेते हो।

{1493}

वैज्ञानिकों को अब अनुभव
होने लगा है कि भौतिकता ही सब
कुछ नही है। वे भी अब अध्यात्म की ओर मुडने
लगे है। ऐसा सुना है कि आइस्टीन ने मरने से
पहले कहा था कि–इस जन्म मे तो मैंने भौतिक
अनुसधान किये है। लेकिन अगर भविष्य मे मनुष्य
बनूं तो अध्यात्म साधना करना चाहता हूं।

{1494}

विदेशी जनता
भारत से, उसकी सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक सम्पदा
से बहुत अपेक्षाएं
रखती है।

{1495}

यदि परिवार के सदस्य
अपने दायित्व को समझ कर
पारिवारिक आचार संहिता और
अनुशासन का पालन करते हैं
तो निस्संदेह वह परिवार सुखी, समृद्ध
और शान्त होता है।

{1496}

पारिवारिक जीवन
वहा टूटते नजर आते हैं,
जहां परिवार के सदस्य अपनी
जिम्मेदारियों को भुलाकर एक
ही व्यक्ति पर निर्भर
हो जाते हैं।

{1497}

परिवार मे एक ही
व्यक्ति कमावे और शेष
व्यक्ति हाथ पर हाथ धरे बैठे
रहे–उपभोग मात्र करे तो उस परिवार
की दशा प्राय विकृत और विषम हो
जाती है।

{1498}

भारतवासियों ! अपनी
मौलिकता (आध्यात्मिकता)
को नष्ट कर भौतिकता की भूलभूलैया
मे क्यों फंसते जा रहे हो ? अपनी
अन्तरंग शक्ति को पहिचानो जो
अद्भूत कार्यकारी बन सकती है।

{1499}

यूरोप, अमेरिका, रूस के
कई लोग भौतिकता से अब ऊब
चुके हैं, और वे अभौतिक तत्व की
प्राप्ति के प्रति उत्सुकता प्रकट कर
रहे है। वहां भारतीय जनता विरासत से
प्राप्त अध्यात्म को भूलाकर भौतिकता
की ओर कदम बढा रही है। भारतीयो
को विरासत से प्राप्त शक्ति को
पहिचानने की आवश्यकता है।

{1500}

यदि दुनिया में
प्रगति की दौड मे
आगे बढाना चाहते हो तो
इसके लिए एक ही उपाय है
– *चरित्र की प्रतिष्ठा।*

{1501}

यदि भारतीय जनता उत्तराधिकार मे मिले हुए अपने सिद्धान्तो पर, चरित्र निष्ठा पर प्रामाणिकता पूर्वक आचरण करती रहे तो वह विश्व में सबसे अग्रगण्य होगी।

{1502}

जैसे शुद्ध पात्र मे रहा हुआ दूध गुणकारी एव शोभावंत होता है, वैसे ही शुद्ध हृदय मे की गई धर्म प्रतिष्ठा महत्वपूर्ण होती है।

{1503}

आज भूख पेट की नही पेटी की है।

{1504}

आत्मिक वैभव के उत्तराधिकारी स्वय को दीन–हीन समझकर अमेरिका, रूप आदि विदेशों की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहे हैं, जबकि विदेशी जनता भारत की आध्यात्मिक सपदा से आकर्षित हो रही है।

{1505}

जीवन की प्रारभिक अवस्था मे जैसे संस्कार और वातावरण मिलता है, उसी के अनुसार जीवन का निर्माण हुआ करता है।

{1506}

सास अपनी बहू को बेटी और बहू सास को माता मानले तो बहुत से पारिवारिक झगडे समाप्त हो सकते है।

{1507}

जवानी दीवानी है, अगर इस पर नियंत्रण नही रखा तो भयकर अनर्थ हो जायेगा।

{1508}

जैसे मणिरत्न, जब स्वर्ण के साथ सयोजित होता है तो उसकी चमक–दमक कई गुना बढ जाती है, वैसे ही शुद्ध हृदय में स्थापित किया गया धर्म आलौकिक गुणो से मडित हो जाता है।

{1509}

कर्म लुटेरो का सरदार "मोह" बडा दुर्दान्त है। संसार में मोह राजा का वर्चस्व है। मोह के बंधनो को तोडना आसान नही, टेढी खीर है, दृढ फोलाद और लोह की जंजीरों को तोडना आसान हे, परन्तु मोह के कच्चे धागे को तोडना बहुत कठिन हे। आर्द्र कुमार ने राज्य वैभव छोड दिया। पर बच्चे के द्वारा बॉधे कच्चे सूत के धागे तोड नहीं पाया।

{1510}

यदि आप अपनी सन्तति को आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर अग्रसर करना चाहते हें तो उसे बचपन से ही वैसे संस्कार देने होगे।

{1511}

जो परिवार सुख का आगार बन सकता हे, वही कारागार के समान दु.खदायी बन जाता है, क्यो? इसका एक मात्र कारण हे- परिवार के सदस्यो में कर्त्तव्य भावना का अभाव।

{1512}

कोमल लताओ को इच्छा अनुसार दिशा दी जा सकती हे, कोमल बालको के जीवन को चाहे जिस दिशा मे मोडा जा सकता है।

{1513}

यदि आप बच्चे को दिग्विजयी वीर बनाना चाहते है, तो प्रारभ से ही उसके लिए व्यायाम आदि के संस्कार और साधन अपेक्षित होगे। उसी प्रकार बचपन की संयमीय साधना विशिष्ट फल देने वाली बनती है।

{1514}

बच्चे के संस्कारो को सही बनाने के लिये बडो का सतसंस्कारित होना आवश्यक है क्योकि बच्चे अनुकरणशील होते है। जैसा देखते है, वेसा करते हे।

{1515}

जिस शरीर पर्याय को लेकर उसके वियोग मे मै आर्त्त ध्यान कर रहा हूँ, उस आर्त्त ध्यान के निमित्त आत्मा कर्मबधन करती है। उन कर्मो का भोग स्वयं को ही करना पडता हे। ऐसी दशा मे मै आर्त्त ध्यान क्यो करूं ? मेरा इतना ही संयोग था।

{1516}

यदि आप बालक को दिग्गज विद्वान् बनाना चाहते हे तो प्रारभ से ही उसकी शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक हे।

{1517}

आजकल पुरुषो
की अपेक्षा महिलाए साधना,
तपस्या व धर्म के क्षेत्र मे
विशेष प्रगतिशील हे। यही नही
सामाजिक राजनैतिक एव राष्ट्रीय
स्तर पर भी महिलाए
विशेषता लिए है।

{1518}

सतजन अपने
सर्वजन हितकारी
उपदेशो द्वारा प्राणी मात्र
का कल्याण करते है।
अतएव वे विश्व
के परोपकारी हे।

{1519}

जिसने मानव
मात्र ही नही,
प्राणी मात्र की सेवा का वृत
लिया है वह
सर्वोतम सेवा भावी है।

{1520}

जीवन मे सुख शाति
का सचार और परिवार मे
समृद्धि तभी तक सभव है जब तक मदिरापान
की आदत न लगी हो। मदिरापान की आदत
एक बार पड जाती है तो वह घर और परिवार
को बर्बाद किये बिना नही रहती।

{1521}

धरती एव अबर
को कपाने वाले बडे-
बडे शूरवीर भी मोह की मोहिनी
शक्ति के सामने श्वान की तरह
दुम हिलाते रहे है।

{1522}

आत्मा मूल मे
न तो स्त्री है न पुरुष
अत न धनी न निर्धन। अत
किसी भी प्रकार का
अभिमान या हीनभावना
करना व्यर्थ है।

{1523}

स्त्री-पुरुष का
परस्पर सामज्जस्य
पूर्ण व्यवहार ही
पारिवारिक शाति का
प्रतीक हे।

{1524}

किसी भी पदार्थ की पूरी
परिभाषा तभी सभव हे, जव
विधि-निषेध दोनो से समन्वित हो।
जेसे - अहिसा का मतलव हिसा का प्रतिवोध
ही नहीं है अपितु जीवो की रक्षा रूप विधि पर
के अर्थ होने पर ही परिपूर्णता आती हे।

{1525}

मन का पखा बाहर नही अदर घुम रहा है। जब तक हम को सामायिक मे रस नही आएगा, यह मन का पखा सरलता से बस मे आने वाला नही, इसको बन्द करने का बटन भीतर है और आप बाहर से देख रहे है। इसलिए साधना की उपलब्धि नही हो रही है। ४८ मिनिट की सामायिक मे बैठ कर भीतर प्रवेश कर जाते है, आत्म-समीक्षण मे लग जाते है तो पखे का स्वरूप समझ मे आ जाता है।

{1526}

कर्म लुटेरो ने आत्मा के वैभव को लुट लिया है अत आत्म शौर्य जगाकर कर्म रिपुओं को परास्त करिये।

{1527}

स्वतन्त्र और सार्वभौम चेतनराज पराये घर जाकर-पर परिणति मे पडकर कर्मो के चगुल मे फस गया है। उसकी स्वतन्त्रता सार्वभौमता, अनंत शक्ति सपन्नता छीन ली गई है।

{1528}

प्रवृति और निवृति, विधि और निषेध एक ही सिक्के के दो पहलू है, एक ही रथ के दो चक्र है। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। प्रवृति और निवृति एक दूसरे के पूरक है, विरोधी नही

{1529}

विधि प्रवृतिपरक है और निषेध निवृतिपरक। अशुभ से हटना निवृति है और शुभ मे लगना प्रवृति है। अशुभ से निवृति ही शुभ मे प्रवृति है, और शुभ मे प्रवृति ही अशुभ से निवृति है।

{1530}

अन्य पदार्थो की अपेक्षा उसी को रहती है, जो स्वय परिपूर्ण न हो। समुद्र परिपूर्ण है वह कूप-जल की या नदी के जल की आशा क्यो रखेगा?

{1531}

मन रूपी घोडा ससार रूपी अटवी मे अनादि काल से भटक रहा है। इसके ऊपर यदि सवार होना है तो अन्य हट योगिक प्रयोगो को छोडकर सहज योग के प्रयोग के साथ इस मन रूपी घोडे को शिक्षित करने की आवश्यकता है। सम्यक् सूत्र का दूसरा छोर हाथ मे रखकर धीरे-धीरे असद् विषयो से निवृत कर सद् विचारो मे प्रवृत करना चाहिए। फिर उसे सम्भाव पूर्वक साधते हुए आज्ञाकारी घोडे की तरह सहचर बना लेना चाहिए। यह कार्य समीक्षण दृष्टि पूर्वक सूत्र के आधार पर सम्यक् आचरण के साथ सम्पन्न किया जा सकता है।

{1532}

नारियो के रूप पर चचंल बनने वाला व्यक्ति, कितना भी बडा साधक हो, फिर भी आत्मिक-चमत्कृति से दूर ही रहता है।

{1533}

आत्मा पर पडे हुए
कर्म भार को हटाने के लिए
स्वयं को ही पुरुषार्थ करना
होगा, दूसरा व्यक्ति निमित्त
मात्र हो सकता है
उपादान नही।

{1534}

चेतन तत्त्व
अपने मौलिक रूप
मे स्वय प्रभु और सार्वभोम
शक्ति- सम्पन्न है। उसे किसी के
सहयोग की
आवश्यकता नही।

{1535}

साधना का
सबध मुख्यतया आत्मा के
साथ
है, शरीर के
साथ नही

{1536}

भारी भरकम शिला के नीचे
दवे इन्सान का एक ही मनोरथ है,
एक ही दृष्टि है, एक ही साध्य है, किसी तरह
शिला को हटाना, वैसे ही अष्ट कर्मो की शिला
के नीचे दबे आत्मा का भी एक ही लक्ष्य हो
किसी भी तरह कर्म-शिला को हटाना।

{1537}

दूसरा व्यक्ति आपके
सुख-दु.ख नही देख सकता।
दूसरा केवल निमित्त बन सकता
है, उपादान तो स्वय का ही होता
हे। अत दूसरे पर शत्रु-मित्र भाव
रखना उचित नही।

{1538}

आत्मा सूर्य-प्रकाश
से भी अधिक प्रकाशपुज
है, देदीप्यमान हे। वस उस पर
लगे कर्मो के आवरण को हटा
दिया जाय।

{1539}

मोह की
मदिरा ने वडी
दुर्दशा की है, आत्मा
की।

{1540}

अपूर्ण ओर सीमित शक्ति
वाला मानव परिपूर्ण, असीम ओर
अनुभवगम्य परमात्मा का चिंतन भली-भाति नही
कर पाता है। मानव ससीम हे, परमात्मा असीम
हे। मानव अपूर्ण हे, परमात्मा पूर्ण हे। मानव
विन्दु हे, परमात्मा सिंधु हे।

{1541}

इस दृश्यमान शरीर के भीतर मन का अवस्थान होता है और आत्मा भी इस शरीर के भीतर होती है। जितने हिस्से मे आत्मा रह रही है, उतने ही हिस्से मे मन रह रहा है। जितने हिस्से मे आत्मा और मन है,उतने ही हिस्से मे आप का यह शरीर दिख रहा है। इस शरीर मे रहता हुआ यह मन जब बुरे सकल्प करता है, बुरा चितन करता है तो उस बुरे चितन के साथ वह स्वय उलझता है और इस आत्मा को भी उलझन मे डालकर उसे बुरे कार्य मे लगवा कर दण्ड भोगवाता है।

{1542}

आप अनंत शक्ति–सम्पन्न हो सकते है, पर इसके लिए आवश्यक है–दृढ आस्था, अडौल विश्वास और प्रबल संकल्प।

{1543}

अन्त करण के विकारो को हटाइये, मन की मलिनता को धो डालिये। हृदय को साफ सुथरे दर्पण के समान स्वच्छ बना लीजिये।

{1544}

जिस व्यक्ति का तुम कुछ नही बिगाड सकते। उसके प्रति बुरे विचार कर तुम एक ढंग से अपनी ही मानसिक हिंसा कर रहे हो।

{1545}

आध्यात्मिक विकास के भवन का निर्माण नीति की नीव पर हुआ करता है। यदि जीवन मे नैतिकता नही है तो वहां आध्यात्मिकता भी नही आ सकती।

{1546}

सार्थक जीवन वह है जो स्वयं चले स्वस्थ चले स्वस्थ एवं सुदृढ गति से चले बल्कि अपने चलने के साथ अन्य दुर्बल जीवनो में भी प्रगति का बल भरता हुआ चले।

{1547}

किन्हीं दो व्यक्तियो की कुछ स्नेह भावना का दृश्य उसके सामने आता है तो वह सोचता है कि इन दोनो व्यक्तियो मे इतना स्नेह क्यो है? मेरे साथ तो किसी का स्नेह नही है, इन दोनो मे आपस मे इतना स्नेह है तो इसको तुडवा देना चाहिए। तब वह अपने मन मे ताना–बाना बुनता है और उन व्यक्तियो के स्नेह को तोडने के लिए जाल रचता है। उनके स्नेह के विरुद्ध वह एक दूसरे को इधर–उधर की बातो मे भिडाता है। ऐसी बाते करता है जिनको आप अपनी भाषा मे नारद विद्या कहते है।

{1548}

सम्यक् विश्वास को लेकर चलने वाला व्यक्ति ही सफलता के शिखर पर पहुँचता है।

{1549}

सम्यक् दृष्टि के
अभाव मे ससार मे
घोर सघर्ष हो सकता है, जगत्
का वातावरणअशान्त, क्षुब्ध और
विषाक्त
हो सकता है।

{1550}

कोई विरले ही
व्यक्ति त्याग मार्ग
के पथिक बनते है। उसे
सहयोग करना महान्
पुण्यार्जन का हेतु है।

{1551}

सब जीवो
के साथ मैत्री
भाव रखिये।

{1552}

अब समय आ गया है जब
मनुष्यता की सजीवता लेकर मनुष्य
को उठाना होगा–जगाना होगा और क्रान्ति की
पताका को उठाकर परिवर्तन का चक्र घुमाना
होगा। क्रान्ति यही कि वर्तमान विषमताजन्य
सामाजिक मूल्यो
को हटाकर समता के नये मानवीय
मूल्यो की स्थापना।

{1553}

साधु को समाज
के लिये भारभूत समझना हृदय
की संकुचितता है, दृष्टि का
वैषम्य है, मिथ्यापन है।

{1554}

जो वस्तु तुम्हे
मिलने ही वाली नही हे उसके
प्रति आसक्त होकर निरर्थक
अपनी आत्मा को
काली न करे।

{1555}

मिथ्या आरोप
जघन्य अपराध है।
दूसरों पर मिथ्या आरोप
करने वाला समाज मे विष
घोलते, उनसे
सावधान रहिये।

{1556}

मानव ही नही प्राणी,
समाज से सम्बन्धित सभी
क्षेत्रो मे यर्थाथ दृष्टि, वस्तुस्वरूप, उत्तरदायित्व
तथा शुद्ध कर्तव्याकर्तव्य
का ज्ञान एव सम्यक् सर्वांगण वसम्पूर्ण चरम
विकास की साधना समता
सिद्धान्त का मूलाधार हे।

{1557}

स्वस्थ व्यक्ति उस एन्टीबॉयाटिक कैप्सूल को हाथ मे लेकर एक तरफ रख देता है। मुँह में प्रवेश नहीं होने देता फलत- तज्जनित अशांति का अनुभव नहीं करता, वहीं स्थिति उस व्यक्ति की भी होगी जो उस मूर्ख शब्द को कर्ण गोचर होने पर भी अन्दर पकड़ने की चेष्टा नहीं करेगा। वह उसे एक तरफ छोडता हुआ उस शब्द रूप कैप्सूल को जिस समीक्षण दृष्टि से देखेगा उसी दृष्टि से मूर्ख शब्द प्रयोग कर्ता महाशय को भी देखेगा।

{1558}

मानव क्षुद्र है, परमात्मा विराट है। मानव स्थूल दृष्टि वाला है, परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभवगम्य है।

{1559}

मनुष्यों । जागो । निद्रा को छोड़ो। जो जागता है, उसकी बुद्धि भी जागती है, जागृत मनुष्य के विकास की अनंत संभावनाएं सामने खडी रहती है।

{1560}

भौतिकता को पीठ देकर अध्यात्मिकता की ओर बढिये, भौतिकता स्वत- ही छाया की तरह पीछे दौडती चली आएगी।

{1561}

व्यामोह के विचार के कारण एक व्यक्ति यौवन काल मे जितना हर्षित होता है, वृद्धावस्था में उतना ही व्यथित भी हो जाता है। कारण शरीर की और उसकी दृष्टि होती है, आत्मा की ओर नही।

{1562}

चैतन्य को याने कि स्वयं को अपना शासक बनालें और जड़ को अपने प्रशासन में ले ले तो जहाँ राजनीति, तथा समाजनीति भी सुधर जायगी वहाँ धर्मनीति भी अपने सहज स्वरूप मे सज संवर जायेगी।

{1563}

संसार से संबंधित कलुषित भाव ममत्ववृति को अभिभूत कर समग्र आत्माओं को अपनी आत्मा के तुल्य अनुभव करता हुआ उस ध्यान मे ऐसी समीक्षण दृष्टि निर्मित करें,जिससे उसे व्यावहारिक क्षेत्र में भी घंटे भर की साधना का आस्वादन स्वयं आता रहें और अन्य को भी वह उसी भाव से नमूने के तौर पर आस्वादन करता रहें। जिससे व्यक्ति,परिवार,समाज और राष्ट्र में समता का वायु–मण्डल निर्मित हो।

{1564}

शब्दो में यह सामर्थ्य नही की वे परमात्मा के संपूर्ण स्वरूप को व्यक्त कर सके।

{1565}

व्यक्ति, दस
आदमियो की दो
हाथो से सेवा करता
है, पर जब उसे सेवा की
आवश्यकता हो तो बीस हाथ
लगते हैं।

{1566}

भोगवृति की तुष्टि
का प्रधान आधार है परिग्रह,
अपने द्रव्य अर्थ मे भी और
अपने भाव अर्थ मे भी।

{1567}

आज मनुष्य
का मस्तिष्क सीमित
है, सोचने की क्षमता
अधूरी है।

{1568}

चिन्तन मनुष्य के मन
का उन्नायक भी होता है।
चिन्तन से मन जो कुछ जानता
है, उस पर अपनी कसौटी से सोचता है, तब
उस ज्ञान को उपादेयता पर उसकी निष्ठा
जमती है, वह सुदृढ
एवं स्थायी होती है।

{1569}

सम्यक् ज्ञान
दर्शन एवं चारित्र का
जीवन में जब तक आर्विभाव नही
होता तब तक विकास का मूल
भी हाथ नही
आता है।

{1570}

अधिक धन
और अधिक शक्ति
अधिक सम्माननीय का मापदंड
बन जाता हे। इसी
मापदंड से विषमता
का विषवृक्ष फूटता है।

{1571}

मानव देश—काल
की मर्यादा मे आबद्ध
है, परमात्मा
स्वतन्त्र है।

{1572}

जब कोई व्यक्ति अपने
प्रति व्यवहार किये जाने की
अमुक धारणा बना लेता है और सामने वाला
जब उसके साथ उस धारणा की तुलना मे
निम्न कोटि का व्यवहार करता है
तो उससे वह व्यक्ति
क्रुद्ध हो जाता है।

{1573}

ज्ञानावस्था मे भी मन की
अस्थिरता के परिणाम स्वरूप विचारों
की अस्त–व्यस्तता किस रूप में है, किस हेतु से
बन रही है, इसके पीछे मूल कारण क्या है,
इत्यादि विषय का समीक्षण दृष्टि से अवलोकन
करना साधक का मूल कार्य है क्योकि वह
तत्कालीन अवलोकन, मन को स्थिर करने में
विशेष उपयोगी होता है।

{1574}

सम्यग्दृष्टि
साधक नीतिमता
को आत्म विकास
का अंग मान कर चले।

{1575}

जो सम्यक् निर्णायक
है और समतामय है वही
जीवन है, शेष जीवन प्राण धारण
करते हुए भी इस जागृति के अभाव
में मृत के पर्यायवाची
ही कहलायेगे।

{1576}

एक–एक आत्मा समता
की ओर मुड़े तो दूसरी ओर
परिवार समाज, राष्ट्र और विश्व मे भी
ऐसा समतामय वातावरण,बनाया
जाय,जिसके प्रभाव से समूह गत समता
भी सशक्त बनकर जीवन को समता
मुखी बना दे।

{1577}

जब–जब व्यक्ति स्वस्थ
धारा से अलग हटकर निरकुंश होने
लगता है शक्ति के मद मे झूमकर
अनीति पर उतारू होता है तब तब
उस पर अकुंश लगाने हेतु समूह की
व्यवस्थित शक्ति ही
कामयाब होती है।

{1578}

जीवन में जब समता
आती है तो सारे प्राणियों के
प्रति समभाव का निर्माण होता है। तब
अनुभूति यह होती है कि बाहर का
सुख हो या दु ख दोनों
अवस्थाओं में समभाव रहे।

{1579}

जहां राग है द्वेष है स्वार्थ है
वहां कौनसा विकार डेरा नही डालता।
भोग है तो विषय वासना है राग द्वेष है तो क्रोध,
मान, माया, लोभ है और जहॉ यह कुविचार की
चौकडी है, वहॉ अनीति अन्याय एवं अत्याचार का
कोई ऐसा अनर्थ नही जिसे भोगी मनुष्य
करने मे हिचकिचाएँ।

{1580}

साधु संत समाज
को वह दिव्य–दृष्टि प्रदान
करते है, जिसके प्रकाश मे
वह कर्तव्या कर्तव्य का
निर्णय कर सकता है।

{1581}

क्रोध के कारण
वह उन व्यक्तियो का
भी वैरी हो जाता है जो उसे
अपनी सदाशयता के कारण क्रोध
से विलग होने की
सत्शिक्षा देने का
प्रयास करते हैं।

{1582}

अधिक धन की
उपलब्धि का सीधा
प्रभाव मनुष्य की
भोगवृत्ति के उत्तेजित बनने
पर पडता है।

{1583}

मिथ्यादृष्टि
केवल भौतिकता
को ही देखता है,
उसे ही परिपूर्ण
समझता है।

{1584}

कई बार सामने वाले का
अनुचित व्यवहार करने का कोई
इरादा नही होता और इसी प्रकार कई कार्यों मे
अहितकारी आशय नही होता फिर भी व्यक्ति
वैसा ही होने का भ्रम कर बैठता है। उस भ्रम से
भ्रमित होकर भी क्रोधावश के चक्कर
मे फॅस जाता है।

{1585}

क्रोध के
अपने दुर्गुण को
क्रोधी अपना बल मान
लेता है जिसके कारण भद्र
व्यक्ति दु साहसी भी
हो जाता है।

{1586}

जो छोडना सीख
लेता है तो उसकी
तृष्णा कट जाती है ओर इस
तृष्णा के कटने पर विषमता के
मूल पर आघात होता हे।

{1587}

सत जीवन
ही जगत् के आगन मे
शाति और
सुख का संचार कर
सकता है।

{1588}

प्राय देखा जाता है कि
कई व्यक्ति अन्य व्यक्तियो
के अपने विचारो से भिन्न विचार
अथवा अपनी रूचियो से भिन्न रूचियॉ सहन
नही कर पाते है और उनकी
सहनशीलता का वह अभाव
क्रोध का कारण बन जाता हे।

{1589}

मनुष्य का मन आज सोचता कुछ और है किन्तु अपने बाहरी आचरण से वह दिखता कुछ और है और इस तरह अपने दुमुखी दभपूर्ण व्यवहार द्वारा वह धूर्तता का प्रचार करता है और धूताई को धीरे-धीरे अपना पेशा बना लेता है। यह आज की सम्पति एव सत्ता प्रधान समाज व्यवस्था का कुफल है।

{1590}

नियम और सयम की धारा तब ही बहती रह सकेगी जब परिग्रह की मूर्च्छा समाप्त की जाय।

{1591}

निरपेक्ष दृष्टि मे पक्षपात नही रहता और जब पक्षपात नही है तो वहाँ उचित के प्रति निर्णायक वृत्ति पनपती है तथा गुण और कर्म की दृष्टि से समता अभिवृद्ध होती है।

{1592}

जीवन में जितनी विषमता है,वह उतना ही भटका हुआ है और जितनी समता आती है, वह उसके सच्चे मार्ग पर प्रगतिशील होने का सकेत देने वाली होती है।

{1593}

समता की साधना एकागी नही,मन,वचन,काया तीनो के सफल सयोग से ही की जानी चाहिये तभी बाह्य दृष्टि अर्न्तदृष्टि से पूछकर चलेगी। अर्न्तदृष्टि का अनुशासन ही बाह्य दृष्टि पर चलना चाहिये।

{1594}

क्रोध की अग्नि ईर्ष्या का रूप धारण करके भी जलाती है और उस जलन मे क्रोधी अन्य किसी की भी उन्नति को फूटी आखो भी नही देख पाता है।

{1595}

स्यात्-अस्ति और स्यात्-नास्ति की इस विधि को कई लोग ना समझी मे अनिश्चयपूर्ण कहते है किन्तु यदि इसे गहराई से समझा जाय तो साफ हो जायेगा कि हठहीन निष्ठा से विचार समन्वय की इस पृष्ठभूमि पर खडे होकर जितने सहज भाव से सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। सभवत वैसी अन्य कोई पृष्ठभूमि सार्थक नही हो सकती।

{1596}

यह मेरा है-ऐसा अनुभव कभी अन्तर जगत् के लिये स्फूर्तिजनक नही माना जाता है।

{1597}

समता दर्शन का
लक्ष्य है कि समता विचार मे हो,
दृष्टि और वाणी मे हो तथा
समता आचरण के
प्रत्येक चरण में है।

{1598}

व्यक्ति की शक्ति
प्रत्यक्ष दिखती है फिर भी
समूह की शक्ति उससे ऊपर
होती है जो व्यक्ति
की शक्ति को नियन्त्रित भी
करती है।

{1599}

साधु सत
समाज की
जो सेवा करते हैं
वह सर्वोत्कृष्ट
सेवा है।

{1600}

जानने को तो वास्तविकता
का ज्ञान करले और उस जाने हुये चिन्तन की
कसौटी पर कसकर खरा
भी पहिचान ले और उसके बाद करने के नाम
पर निष्क्रियता धार ले तो उससे
तो कुछ बनने वाला नही है।

{1601}

क्रोधी आकारण
ही दूसरो की प्रवृतियो
में मन कल्पित दोष आरोपित
करता है और अपने प्रति रही हुई
दूसरो की सहानुभूति
खोता
रहता है।

{1602}

व्यक्ति स्वयं से
नियत्रित हो–व्यक्ति
समाज से नियत्रित हो ये दोनों
परिपाटियॉ समता लाने के लिये
सक्रिय बनी
रहनी चाहिये।

{1603}

अपना घर
छोडकर जो दूसरे
के घर मे जाता है,
उसकी दुर्दशा
होती है।

{1604}

ज्ञान और क्रिया की सयुक्त
शक्ति ही मनुष्य को बन्धनों से मुक्त करती है।
चाहे वे बन्धन कैसे भी हो विषमता या तज्जन्य
विकारो के ही क्यो न हो,
इस शान्ति के सामने कभी भी
टिके हुए नही रह सकते है।

{1605}

साधु को भी रोटी चाहिये,
किन्तु वह रोटी के प्रति ममत्व नही
रखता निरपेक्ष भाव से उसे ग्रहण करता है।
उसी तरह जब जीवन के लिए परिग्रह होगा,
परिग्रह के लिये जीवन को मिट्टी मे नही मिलाया
जायेगा तभी समता रूप जीवन का अभ्युदय हो
सकेगा। यही अपरिग्रह व्रत का गूढार्थ है।

{1606}

समता मानव
मन के मूल मे है
उसे भुलाकर जब वह
विपरित दिशा मे चलता है
तभी दुर्दशा आरम्भ होती है।

{1607}

यह ध्रुव सत्य है कि
मनुष्य गिरता उठता और
बदलता रहेगा किन्तु समूचे तौर पर
मनुष्यता कभी समाप्त नही हो सकेगी
और मनुष्यता का अस्तित्व डूबेगा
नही। वह सो सकती है,
मर नही सकती।

{1608}

सबके लिये एक व
एक के लिए सब तथा
जीओं व जीने दों के प्रतिपादक
सिद्धान्तो तथा संयमीय नियमो को
स्वयं व समाज के जीवन
मे आचरित करना समता
जीवन दर्शन है।

{1609}

जो जीवन को भोग
मात्र के लिये मानता है,
वह अपनी चेतना से हटकर शरीर मे
बधता है, परिग्रह की मूर्छा
में बंधता है और
जड ग्रस्त बनता हे।

{1610}

भोगवृत्ति जब समाज
और राष्ट्र को आच्छादित करती है,
तब शोषण और दमन के दौर चलते है
हिसात्मक आक्रमण एवं युद्ध होते
है-तब मनुष्यता के रक्त से नहाकर
पैशाचिकता का रूप धारण
कर लेती है।

{1611}

अर्थ-प्रधान युग का
मानसिक दृष्टि से यह भी एक
भयंकर कुपरिणाम माना जाना चाहिये कि आज
का मानव अधिक से अधिक दंभी और पाखडी
(हिप्पोक्रेट) बनता जा रहा है। जो व्यक्ति जीवन
में प्रामाणिक रहना भी चाहता है, अधिक बार
वातावरण उसे प्रामाणिक नही रहने देता।

{1612}

समता का
आविर्भाव तभी
सभव होगा जब राग ओर
द्वेष को घटाया जाय।

{1613}

क्रोध रूपी विष तंरगे, जब किसी व्यक्ति की आत्मा तन और मन मे प्रवाहित होने लगती हैं तो वह सभी और से अपने जीवन विकास की सम्भावनाओ को गवा देता है।

{1614}

अन्तर के नेत्रो की प्रकाशमय दृष्टि से देखकर जीवन मे गति करना समता दर्शन का मुख्य भाग है।

{1615}

अपने उद्धार का दायित्व हमारा ही है, अन्य किसी का नही।

{1616}

गुण कर्म के आधार पर श्रेणि विभाग का विश्वास ज्यो–ज्यो मुनष्य के आचरण मे उतरेगा, अन्य भौतिक प्राणियो का महत्व समाज में स्वत ही घटता जायेगा और तद्नुसार भौतिक दृष्टि से सम्पन्नो का अनपेक्षित समादर भी समाप्त हो जायेगा।

{1617}

क्रोध की विष–तरगो से ग्रस्त व्यक्ति ने अपने घर मे अपना रहता है ओर न ही अपने धधे या पेशे को लाम व लोकप्रियता के साथ चला सकता है।

{1618}

अन्तर और बाह्य दोनो दृष्टियो से समतापूर्ण जीवन का संचालन करने से सार्थक जीवन की उपलब्धि हो सकती है।

{1619}

सर्वव्यापी पिशाचिनी विषमता का मूल मनुष्य की मनोवृत्ति मे है।

{1620}

मदान्ध व्यक्ति हर कीमत पर अपने अहं को ऊपर रखना चाहते हे। इसलिये यह मद का अंधापन दूर हो तभी प्रभु के दर्शन हो सकते है। मद दूर होने पर ही अन्तर्वृत्तियो मे विनम्रता तथा ऋजुता का प्रवेश होता हे तथा आत्दर्शन अथवा परमात्य दर्शन का यही ख्यद्वार कहलाता हे।

{1621}

व्यक्तिगत एव समाजगत
शक्तियों के ज्ञान एव क्रिया के
क्षेत्र में साथ–साथ कार्यरत होने से विकास मे भी
विषमता नही रहती। दोनो स्तरो पर विकास का
क्रम साथ –साथ चलने से नीति एवं न्याय तथा
सुख एवं समृद्धि मे सामाजिक समता
की स्थापना होती हैं।

{1622}

तेरे मेरे की जब
दीवारे टूटती है तब
अर्न्तमन में जिस विराटता का
प्रकाश फैलता है, उसी प्रकाश
को समता सुस्थिर शीतल
और सौख्यपूर्ण
बनाती है।

{1623}

सभी जीवन धारियो
की मूल आवश्यकताएँ पूरी हो यह
पहली बात है, किन्तु दूसरी बात भी
उतनी ही महत्वपूर्ण
है कि वह पूर्ति विषम नही
होनी चाहिये।

{1624}

समस्त प्राणी वर्ग
का स्वतत्र अस्तित्व स्वीकारने
मे मनुष्य के समूचे जीवन मे एक
समतामय परिवर्तन आता है
जो सारी जीवन विद्या को
बदल देता है।

{1625}

समान कर्मण्यता
समान श्रेष्ठता एवं समान हार्दिकता
का स्पर्श दुर्बल जीवन मे भी प्राण
भरेगा और उसकी
सर्वांगीण शक्ति
को उभारेगा।

{1626}

जो भी ज्ञान और
क्रिया के सच्चे रास्ते
पर निरपेक्ष भाव से अपना
पराक्रम दिखायेगा, वह स्वय रास्ता
पायेगा और बाहर
समता फैलायेगा।

{1627}

जो सदा कमाता और
कमाकर उसकी रक्षा मे समर्थ
बनता है, वह समाज मे भी अधिक
शक्तिशाली कहलाता है। जो कमा लेता, मगर
उसकी सुरक्षा का सामर्थ्य पैदा नही कर सकता,
वह कमजोर वर्ग मे ही रहता है।
लेकिन व्यवस्था गुण, कर्म पर
सम्यक्रीत्या आधारित है।

{1628}

समता जीवन
के अवसरो की प्राप्ति
मे होगी,सत्ता और सम्पति के
अधिकार में होगी तो वह
व्यवहार के समूचे
दृष्टि–कोण मे होगी।

{1629}

आत्मा का अन्नत
ज्ञान एव अनन्त शक्ति ईश्वरत्व
के रूप में फूट कर प्रदीप्त
वनती हे वही प्रदीप्तता
प्रत्येक आत्मा
मे समाई हुई हे।

{1630}

क्रोधी सदा
दूसरो का अहित
चिन्तन करता हे ओर तरह
-तरह की विचारधाओ मे
क्रूर कल्पनाए करता
रहता हे।

{1631}

दुर्गुणो
की जननी
विषमता को मानी
जा सकती हे।

{1632}

सपरित्याग की आस्था
जितनी गहरी होगी, उतना ही
सम्पत्ति आदि के प्रति मनुष्य का मोह कम होगा
जिसके प्रभाव से विषमता की दिवारे स्वय
ढहती जायेगी ओर उसके स्थान पर
समता का सुखद
सदन निर्मित होगा।

{1633}

व्यक्ति को अपनी
सचित सम्पत्ति मे ममत्व नही
रखना चाहिये। वल्कि उसे भी
समाज का न्यास समझकर
यथावसर पुन समाज
को समर्पित कर
देना चाहिये।

{1634}

क्रोधी, दुष्टभाव
कठोर वचन तथा
क्रूर व्यवहार का स्वामी वन
कर पागलो की
श्रेणि मे चला जाता है

{1635}

एक के
लिये अधिक धन,
का साफ अर्थ हे,
वहुतो के लिये
अधिक कष्ट।

{1636}

अर्थ के नियन्त्रण मे
जव तक चेतन रहता हे तव
तक वितृष्णा के वशीभूत होकर
जडवत वना रहता ह किन्तु ज्योहि
वह अर्थ को अपने कठोर नियन्त्रण
मे रखना सीख जायेगा उसका
चेन्तय भी चमक उठेगा।

{1637}

ससार के क्रम को बनाया
रखने वाला यह मैथुन माना गया
है। ऐसा मानकर मेथुन सेवन की प्रवृत्ति सर्वथा
अनुचित है। ससार मात्र आपके अकेले से नही
जुडा है आप अपना ससार का अन्त कर
परमानन्द पा सकते है। फिर
भी ससार चलता रहेगा।

{1638}

अपने स्वाभाविक
गुणो सद्‌गुणो का
उत्तरोत्तर विकास
करना ही वास्तविक
उन्नति हे।

{1639}

किसी भी जीवधारी
मे सामान्यतया आहार निद्रा व
भय के अलावा मैथुन वृत्ति को भी कर्म
प्रकृति प्रदत्त अनादि माना गया है।
लेकिन सम्यक् ज्ञान के बल पर
उसे मन वचन कर्म से
छोडा जा सकता है।

{1640}

सांसारिक जीवन मे
विवाह एव परिवार संस्थाओ के
निर्माण का लक्ष्य काम-वासना को
नियमित करना ही था। उन्मुक्त
सैक्स को समाज के लिये घातक
माना गया है।

{1641}

काम वासना के
पागलपन को जितने अंशो
मे रोका जा सकता है, उतनी ही
व्यवहार स्वस्थता व्यक्ति मे उभरेगी।
कानूनो का भी इस
दिशा मे यही लक्ष्य रहा है।

{1642}

अपनी इच्छा एव
सकल्प शक्ति के जरिये मैथुनवृत्ति
को धीरे-धीरे उसके वैचारिक
वाचनिक एव कायिक तीनो रूपो मे
नियत्रित करे, यही ब्रह्मचर्य
की सच्ची आराधना होगी।

{1643}

जब परिग्रह की मूर्छा नही
रहेगी और माया की छलना भी मिट
जायेगी, तब हृदय पटल, त्याग एव बलिदान
(आत्म समपर्ण) की भावना से अभिभूत हो जायेगा
और वह स्वतत्व को विर्सजित कर विराट रूप
धारण कर लेगा याने कि उस उन्नत श्रेणि मे
पहुचकर मनुष्य समूचे
विश्व को आत्मसात् कर लेगा।

{1644}

ज्ञान जितना
मन की गहरी पर्त्तो
मे उतरता जायेगा, उतना ही
उसका वैशिष्ट्य
भी प्रकट
होता जायेगा।

{1645}

सासरिक जीवन
मे मैथुन की मर्यादा
की गई है तो साधु जीवन
मे इस विकार को मन से भी
निकाल देने की प्रेरणा
दी गई है।

{1646}

व्यक्ति का
श्रमनिष्ठ अर्जन व्यक्ति
और समाज दोनो के जीवन मे
नेतिकता शुद्धता एवं
समता का संचार करेगा।

{1647}

व्यामोह विचार
को विगाडता है तो
दृष्टि स्वयमेव
ही
विगड जाती हे।

{1648}

समता का सवसे
वडा शत्रु परिग्रह हे, अतः
अपरिग्रह व्रत उसके गुढार्थ मे समझा जाना
चाहिये तथा व्यवहार मे सिर्फ पदार्थो के
त्याग को ही नही, तृष्णा त्याग
को अधिकतम महत्व
दिया जाना चाहिये।

{1649}

परिग्रह, परिग्रह
के प्रति मूर्छा को उत्पन्न करता
हे ओर जीवन मे जितनी मूर्छा
गहरी होती हे, जागृति
उतनी ही लुप्त
हो जाती है।

{1650}

काम-वासना
का वेग अति प्रवल होता हे
ओर इस अन्धड मे कई वार
वडे-वडे ऋपि महर्पि
भी गिरकर चकनाचूर
हो जाते हे।

{1651}

सम्यक्
निर्णायक शक्ति के
जागने पर विषमता का
विस्तार
संभव नही होता।

{1652}

परिग्रह की समतापूर्ण व्यवस्था
हो- उसका संसार मे जीवन संचालन
के लिये उपयोगी भी हो किन्तु ज्यो ही उसके
प्रति ममत्व-मूर्छा क्षीण हो जायेगी तो परिग्रह फिर
अनर्थ कारी नही रह जायेगा-
जीवन के स्वस्थ, सचालन
का साधन मात्र हो जायेगा।

{1653}

जीवन व्यवहार मे
श्वास-प्रश्वास से ही प्राणो का
अधिक सम्वन्ध माना गया हे, किन्तु
प्राणो का सम्वन्ध इतना सीमित नही है।
जीवन की प्रत्येक क्रियान्विति प्राणो से अनुवन्धित
है और हमारी समीक्षण साधना जीवन
के हर कोण से जुडती है। अतः
उसमे प्राणो का परिज्ञान बहुत
अधिक महत्त्व रखता हे।

{1654}

काम-वासना
के निरोध एव उन्मूलन
मे वलात् प्रयोगो की
अपेक्षा स्वेच्छिक प्रयोग ही
अधिक सफल
हो जाता है।

{1655}

आत्मा की चेतना
को भुलाने वाला यह परिग्रह होता है
और उससे भी घातक होती है
परिग्रह को अधिक से
अधिक प्राप्त करने की
अन्तहीन वितृष्णा।

{1656}

व्यक्ति की वितृष्णा
बढती है तव वह नीति
छोडकर येनकेन प्रकारेण धनार्जन एवं
धन सचय करना चाहता हे- सारा
विवेक सदाशय एव न्याय विचार
खोकर तब विषमता का
दौर दोरा चलता हे।

{1657}

इस धनलोलुपता ने
आज के विषम ससार मे जो·
हाहाकार मचा रखा है और मानवता
को कुचल रखी हे- उसके रहते
समता व्यवस्था की आशा दुराशा
मात्र होगी।

{1658}

जो जितने अच्छे
क्षेत्र मे काम करता
है और जितने ऊँचे पद पर जाता
है, उसकी प्रामाणिकता के
प्रति अधिक से अधिक
जिम्मेदारी बनती हे।

{1659}

साधक को साधना मे तो
लक्ष्यानुरूप साधना करनी ही होती है।
किन्तु साधना के अतिरिक्त समय मे उठते,
बेठते, चलते, खाते-पीते आदि सामान्य देनिक
व्यवहारों के साथ भी लक्ष्यानुचिन्तन इतना स्थायी
बन जाना चाहिये कि जिससे रजनी मे भी
अर्थात् निद्रावस्था मे भी लक्ष्य का विस्मरण
न हो। तभी साधना की सच्ची ललक
(जिज्ञासा) कही जा सकती है।

{1660}

भोतिक -साधन
एवं उसमे रहने वाले
ममत्वभाव को परिग्रह के
रूप मे परिभाषित किया
गया है।

{1661}

जेन तत्त्व ज्ञान
मे प्राणो को समस्त
चेतन्य ऊर्जा के सवाहक
के रूप मे स्वीकार किया हे। शरीर
मे चेतन्य की अभिव्यक्ति का आभास
प्राणो के द्वारा ही होता हे।
शरीर मे प्राण मुख्य हे।

{1662}

जानने की
सार्थकता मानने
मे हे ओर मानना तभी सफल
वनता हे जव उसके
अनुसार
किया जाय।

{1663}

जड से मन
को हटाकर नियमित एव
सयमित बनाया जाय
तो चेतना जागृत
होती हे।

{1664}

पाच व्रतो का यथाशक्ति
यथाविकास पालन ज्यो-ज्यो
जीवन मे वढता जायेगा निश्चित हे व्यक्ति के
इस पालन का सामाजिक प्रभाव होगा ओर
दोनो प्रभाव मिलकर
समता विकास के लिये सुन्दर
वातावरण की रचना करेगे।

{1665}

आत्मिक स्वरूप
ही मूल स्वरूप हे ओर
वह अनन्त गुणो का स्वामी हे।
ज्ञान दर्शनादि उसके मोलिक गुण
हे,किन्तु कर्मो से आवृत होने से वे
न्यूनाधिक रूप मे
आच्छादित हे।

{1667}

आचरण ही
जीवन को आगे
वढाता हे-यह अवश्य हे
कि आचरण अन्धा न
हो विकृत न हो।

{1668}

वहुलतया
अधिक धन
अधिक अनीति
से ही
अर्जित हो सकता हे।

{1669}

जव परिणामी नित्य द्रव्य ही
नही हे तो पर्याय रूप क्रिया का
स्वामी कोन हे ? ऐसी स्थिति मे उत्पाद आर
व्यय रूप क्रिया स्वामी के अभाव मे निष्फल
होगी। साधना से सम्वन्धित जो क्रिया होगी,
वह कर्ता के अभाव
में अस्तित्व शून्य होगी।

{1670}

त्रिकाल स्थायी अस्तित्व की स्वीकृति के बिना साधना फलवती नही होती है अतएव किसी साधना का प्रारभ लक्ष्य निर्धारण पूर्वक ही होना चाहिए और वह लक्ष्य भी शुद्ध चेतन देव के परम एवं चरम विकास का होना चाहिए। उसके ध्रौव्य स्वरूप का अनुचितंन करते हुए विकृत पर्याय सम्बन्धी परिमार्जन के अनुसधान के साथ साधना का शुभारम्भ करना चाहिये।

{1671}

सभी आत्माओ मे अपना सर्वोच्च विकास सम्पादित करने की समान शक्ति रही हुई हे।

{1672}

जिस वक्त उस पुरुष ने इसके प्रति बुरे विचार मन मे पैदा किये उस समय विशेष अन्तर नही पडेगा-कुछ ही समय मे उस व्यक्ति के मन मे प्रतिक्रिया पैदा हो जायेगी कि अमुक व्यकित मुझे मारने के लिये आ रहा है।

{1673}

मै किसी भी दूसरे प्राणी के हित पर कतई आघात न करूं यह सामान्य निष्ठा हुई, लेकिन में दूसरों के हितो की रक्षा के लिये अपने हितो को भी छोड दूँ यह त्याग की विशेष निष्ठा होगी।

{1674}

आत्मीय समता को निखारने के लिये सत्कर्मो की ऐसी हवा बहाई जाय कि अंगारे पर जमी कुकर्मो की राख उड जाय और उसकी ज्योति अपनी पूरी चमक के साथ प्रकाशित हो जाय।

{1675}

विषमता को दूर करने आर्थिक समता के मार्ग को प्रशस्त करने का यही उपाय है कि सुदृढ व्यवस्था प्रणाली द्वारा सभी पदार्थो का यथा विकास एव यथायोग्य सवितरण किया जाय।

{1676}

इन्द्रियॉ मन के माध्यम से स्व-स्व के विषय मे प्रियाप्रिय का स्वरूप प्राप्त करने एव परिहार मे तत्पर होती है। प्रिय को आसक्ति पूर्वक ग्रहण करना और अप्रियता का विद्वेष के साथ परिहार करने का कार्य सम्पादित होता है। उस अवस्था में साधक के लिये विषय सम्बन्धी स्वरूप का एव मन की वृत्तियो का सविज्ञान भी अपेक्षित रहता है।

{1677}

समदृष्टि होना समता के लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का समारभ मात्र है।

{1678}

आत्मा का अनंत
ज्ञान एव अनन्त शक्ति जो
ईश्वरत्व के रूप मे फूट कर
प्रदीप्त बनती है,
वही प्रदीप्तता प्रत्येक आत्मा मे
समाई हुई हे।

{1679}

विषमता के कारण
ही धनलिप्सा भी असीम बनकर
अनीति एवं अनर्थ कराने के
लिए मनुष्य को
उत्तेजित करती है।

{1680}

सामूहिक
हितसाधना मे
व्यक्ति के त्याग को सदा
प्रोत्साहित किया जाना
चाहिये।

{1681}

शराब को समस्त बुराइयो
की जड कह दे तो भी कोई
अत्युक्ति नही होगी। गाजा भाग धतूरा और
आज की एल एस डी की गोलियो आदि के
सारे नशो का त्याग मदिरा
त्याग के साथ ही आवश्यक
समझा जाना चाहिये।

{1682}

सपरित्याग
अर्थलोलुप परम्पराओ को
बदलेगा वितृष्णाजन्य वृत्तियो को
बदलेगा तो जीवन मे सरसता
की नयी शक्तियो का
उदय भी करेगा।

{1683}

समता लाने और
उसे फैलाने के विशाल
प्रयोजन के हित जो जीवन मे
देना सीख जाता हे
वह छोडने मे
आनन्द अनुभव करता है।

{1684}

पदार्थों का
अभाव जितना घातक
नही होता उससे भी
अधिक घातक विषमता
होती है।

{1685}

अपने कुटुम्ब मे आप
साधारतया भेदभाव भूल जाते हे
कर्त्तव्यो का ध्यान भी रखते हे एव सबकी
यथायोग्य सेवा भी करना चाहते हैं तो उसका
कारण यही होता हे कि उस घटक मे आप
अपनी आत्मीयता प्रस्थापित करते हैं।

{1686}

अपूर्ण पुरुष,चाहे कितना ही
विद्वान् हो,पर उस विद्वत्ता मे समपरिपूर्ण
ज्ञान वाले आप्त पुरुषो द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो का
अवलम्बन लेकर चितन मनन के साथ उन्हे स्वय के
जीवन मे स्थान देने पर उस आचरण की अवस्था मे
जो अनुभूति के साथ यदि वह आगे
का निर्देशन -सम्मुख रखकर विवेचना
करता हे तो उस विद्वान् पुरुष की
विद्वत्ता ग्राह्य हो सकती है।

{1687}

मानव शरीर
अवश्य भोजन पर
चलता है किन्तु मानव जीवन
मुख्यतया भावना
पर चलता हे।

{1688}

समता के सिद्धान्त
दर्शन का निचोड यह होगा
कि वर्तमान समाज व्यवस्था मे
आमूलचूल परिवर्तन हो और उस
परिवर्तन का उद्देश्य यह हो कि जड
का नही, चेतना का
शासन स्थापित हो।

{1689}

ज्ञान चितन एव
कर्म की त्रिधारा मे कही भी सत्य को
ऑखो से ओझल न होने दिया जाय
और सत्य की सारी कसौटियो मे
आत्मानुभूति की कसोटी सदा
जीवन्त बनी रहनी चाहिये।

{1690}

सिद्धान्त के प्रत्येक
पहलू पर चिंतन करते
समय यदि आत्मानुभूति सजग बनी
रहती है तो अतर के
सत्य की ज्योति भी सदा चमकती
रहेगी।

{1691}

किसी भी तत्व, स्वरूप,
सम्बन्ध अथवा वस्तु के कई रूप
होते है। यदि उसके सभी रूपो का
ज्ञान न हो तो उसका एकागी
ज्ञान अधिकतर मिथ्या की और
ही ले जाता है।

{1692}

चेतन्य देव मे चेतन्य शक्ति के साथ-साथ
ज्ञान धारा उपयोग आदि शक्तिया का कर्तृत्व
विद्यमान रहता हे। यही तो जड एव चेतन्य की भेद-रेखा
का मुख्य विन्दु है। पर वर्तमान परिवेश मे चेतन्य देव
अपनी स्वभाविक अवस्था को विस्मृत कर विषमता के दल
दल मे फॅस गया है। अतएव उनकी समग्र शक्तियॉ
विषमता से अनुरजित हो चुकी है। परिणाम स्वरूप वह
प्राय विषमता को ही अपना साथी समझने लगा है। इसी
से ज्ञान शक्ति अज्ञान के रूप मे एव दर्शन शक्ति
मिथ्या दर्शन के रूप मे परिणित हो गई हे।

{1693}

जो कुछ जाना
है, वह सही है या
नही उसकी सबसे बडी
कसौटी शुद्धात्मानुभूति
ही होती है।

{1694}

समता के
वातावरण मे पला–पोषा संसारी
जीवन आध्यात्मिक क्षेत्र मे ऐसी
आदर्श समता का विकास
कर सकेगा जो आत्मा को
परमात्मा से मिलाती है।

{1695}

कहावत है कि
किसी भी शुभ का समारम्भ
स्वयं से होना चाहिये और
समता भी अपने से शुरू
होनी चाहिये।

{1696}

आत्मानुभूति
को सजग एव
सक्षम बनाने का
मार्ग चिन्तन का
मार्ग है।

{1697}

किसी को उसके अपराधो
के लिये दण्डित करना आसान हे किन्तु
उसमे मावनात्मक परिवर्तन लाना ओर
उसके दिल को वदल देना आसान
नही होता इसके लिये सयम की
आवश्यकता होती हे।

{1698}

सत्याधारित
चिन्तन का जो
भीतर निष्कर्ष निकलता
है, सही अर्थ मे उसे ही आत्मा
की आवाज
मानना चाहिये।

{1699}

गुण और कर्म
ही मनुष्य की महानता
के प्रतीक हो एव अन्य
पौद्गलिक उपलब्धियाँ इनके
समक्ष हीन दृष्टि से
देखी जाय।

{1700}

जो चिन्तन
मे रमता हे, वह
निश्चित मानिये कि वह
सतत् जागृत
भी रहता है।

{1701}

ऊँचाई नही मिलती
यह जीवन की कमजोरी हो
सकती हे, किन्तु जव भी जीवन दर्शन की
क्रियाशील प्रेरणा से आप्लावित होकर समता
मार्ग पर गति की जायेगी,
तव उच्च लक्ष्यो की ऊँचाई
मिल कर रहेगी।

{1702}

सार्वभोम अहिंसादि महाव्रतों को सर्वतोभावेन शक्ति भर आचरण मे लाने का सत्य पुरुषार्थ आवश्यक है। सत्पुरुषार्थ के रूप मे भावात्मक अहिंसा सत्यादि निजी गुणो को अतीव सत्कार पूर्वक जीवन मे स्थान देना आवश्यक हो जाता हे। ऐसा किये बिना नवीन कर्मो का बंध रूक नहीं सकता।

{1703}

समाज की आर्थिक व्यवस्था सम वन जाती हे तो सही मानिये कि व्यक्ति-व्यक्ति का चरित्र भी नई प्रगतिशील करवट ले सकेगा।

{1704}

जहाँ सत्य की जिज्ञासा हे, वहाँ एकांगी ज्ञान भी पूर्णता प्राप्ति की ओर गति करता है किन्तु दुराग्रह में पडकर वेसा ज्ञान अज्ञान रूप ही हो जाता है।

{1705}

समता दर्शन के साधक का इस संदर्भ में पवित्र कर्तव्य होना चाहिये कि वह सिद्धान्तो को जानकर आत्मानुभूति की कसोटी पर कसे ओर सत्य दर्शन की जिज्ञासा को सदेव जागृत रखे।

{1706}

दूसरे की परिश्रम की आय को व्यक्त या अव्यक्त रूप से स्वय ले लेना भी चोरी हैं। यही आज के आर्थिक शोषण का रूप हे। टैक्स चोरी भी इसका ही दूसरा रूप है।

{1707}

विकासोन्मुख व्यक्ति मूर्छित व्यक्ति को अपने करूणामय प्रभाव से जगाता रहे एक बाती से बत्तियाँ जलती रहें फिर सबका समतामय विकास केसे दूर रह सकेगा।

{1708}

इस प्राकृतिक रचना मे कितनी समता, सौम्यता एव सहज-स्वाभाविकता भासित होती है। इसमे विषमता का पुट दृष्टिगत नही होता। पर यह समता एव सरलता चराचर एवं जड चैतन्य रूप जगत की प्राकृतिक रचना है। इसका अवलोकन करने वाला चैतन्य देव, इनमे समता की कल्पना कर सकता है। सरलता एव सहजता के भाव को भी शिक्षा की दृष्टि से ग्रहण कर सकता है। जड तत्व मे समता, सरलता एव नैसर्गिकता को समझने की योग्यता नहीं हे।

{1709}

सच पूछा जाये तो मनुष्यता का सच्चा विकास ही तब होगा जब गुण पूजक संस्कृति की रचना होगी जैसी कि महावीर ने रची थी।

{1710}

दुराग्रही विचारान्धो
के लिये स्याद्वाद वैसा नेत्रवान
पुरुष है जो उनके अनुभवो को
समन्वित करके
सत्य के दर्शन
करता है।

{1711}

सत्ता या सम्पत्ति
की शक्ति से प्रभुता न मिले
बल्कि मानवीय गुणो की
उपलब्धि से समाज का नेतृत्व
प्राप्त हो।

{1712}

सर्वहित मे
जो जितना ज्यादा
त्याग करेगा, वह
उतना ही पूजा
जायेगा।

{1713}

प्रत्येक विकासकामी
मानव का पहला कर्तव्य यह
होना चाहिये कि वह अपने प्रत्येक
चरण पर सद्सद् का एव उसके
फलाफल का विवेक सतत् रूप
से जागृत रखे।

{1714}

क्रियाहीन ज्ञान
पगु होता है तो ज्ञानहीन क्रिया
निरर्थक जानना, मानना और
करने का सतत् क्रम ही
जीवन को सार्थक
बनाता है।

{1715}

सम्पत्ति ओर
सत्ता को अपने लिये
प्राप्त करने की होड ही
सारी विषमता को पेदा
करने वाली है।

{1716}

सत्य ज्ञान
दृष्टि विविध अपेक्षाओ
को समझ कर सम्पूर्ण
स्वरूप का निर्णय
करती है।

{1717}

समूचा मैल कट
जाता है तो सम्पूर्ण
निर्मलता की आभा प्रस्फुटित
होती है। यह आभा ही आत्मा की
परम स्थिति हे ओर उसे
परमात्मा वनाती हे।

{1718}

समता की उच्चतर
श्रेणियो मे जब आत्मा प्रवेश
करती है तो उसके मूल स्वरूप का—
उसकी आधारगत शक्तियो का प्रकटीकरण होने
लगता है। यह प्रकटीकरण ही
आत्मा की परम पद की ओर
गति का संकेत होता है।

{1719}

मानवता प्रधान
समाज व्यवस्था मे
चेतना, मनुष्यता एव
कर्म निष्ठा की श्रेष्ठता
को
प्रधानता मिलेगी।

{1720}

काम का विकार
अति प्रबल होता है और
उसे नियमित एवं सयमित करने के
लिये ससारी मनुष्य के लिये स्वस्त्री
सन्तोष का व्रत
बताया है।

{1721}

वेश्यागमन यह
कुव्यसन सारे समाज के लिये
घातक है जो नारी जैसे पवित्र
जीवन को मोरी के कीडे
की तरह पतित बनाता है।

{1722}

परस्त्रीगमन तो इस
कारण भी जघन्य अपराध
माना जाना चाहिये कि ऐसा दुष्ट
पुरुष दो या अनेक परिवारो के
सदाचरण को नष्ट करता है। एव
एड्स जैसे गंभीर बिमारी को
आमंत्रित करता है।

{1723}

अहिसा का सूक्षम रूप
मन से सम्बन्धित है। मानसिक
एवं वैचारिक रूप मे भी किसी के मन
को कष्ट न दे। तथा जहा मतभेद
हो वहॉ उसे स्वस्थ
रीति से दूर करे।

{1724}

क्रोध, कल्पना करे
कि किसी भी कारण से आया,
किन्तु यदि समता की सुदृढता हुई
तो वह उस क्रोध को दबा देगी — फिर उसका
उपशम करके ही वह शान्त नही होगी बल्कि,
क्रोध को समूचे तौर पर क्षय करने के सस्कारों
को वह ढालेगी।

{1725}

जो ससार के
सत्कर्मों मे शौर्य
प्रदर्शित कर सकते हैं,
वे धर्म क्षेत्र मे भी अपना
अपूर्व शौर्य अवश्य
दिखाते है।

{1726}

आत्मोन्नति की उच्चस्थ श्रेणियो मे राग द्वेष से विहीन होकर निरपेक्ष भाव से सत्यावलोकन वीतराग पुरुषो ने किया, वह भव्यो के लिए आदर्श बन गया।

{1727}

सभी प्रकार से मिथ्या को छोडना एव सत्य का अनुकरण एव अनुशीलन करना समता साधक का कर्त्तव्य हे।

{1728}

सत्य ओर मिथ्या क्या ? यह पूर्णत आत्मा की ज्ञान एवं चिन्तन दशा तथा अन्तर अनुभूति के निर्णायक विषय हे।

{1729}

किसी भी जीवधारी की आत्मा कभी भी जागृति या सज्ञा से सर्वथा हीन नही होती। सज्ञा के दब जाने की दशाओ मे अतर हो सकता हे किन्तु वह सर्वथा नष्ट नही होती क्योकि आत्मा का मूल स्वभाव ज्ञानमय हे- चेतनमय हे।

{1730}

सत्य तभी सुदृढता से रह सकेगा जब उसके स्तर से आत्मानुभूति को विचार एव आचार की उत्कृष्टता एवं शुद्धता के पथ पर विकसित कर लिया जाय।

{1731}

कभी कभी ऑखो देखी कानो सुनी भी झूठी हो जाती हे। अत सत्य को पहिचानने के लिए सही समीक्षा होना आवश्यक हे।

{1732}

अहिसा का व्यापक रूप समाज मे व्यक्ति के सम जीवन के निर्धारण मे पूर्णरूप से सक्षम एवं प्रभावकारी हो सकता हे।

{1733}

जीवन मे छुपी शक्ति की अभिव्यक्ति होने पर आत्मा तीनो लोको की प्रभुता प्राप्त कर सकती हे। वह प्रभुता शस्त्रवल, धनवल अथवा अन्य किसी वाह्य वल से नही प्राप्त हो सकती। वह तो आन्तरिक शक्ति के सही विकास पर निर्भर हे। आन्तरिक शक्ति अभिमान की मात्रा मे दव जाती ह।

{1718}

समता की उच्चतर
श्रेणियो मे जब आत्मा प्रवेश
करती है तो उसके मूल स्वरूप का–
उसकी आधारगत शक्तियो का प्रकटीकरण होने
लगता है। यह प्रकटीकरण ही
आत्मा की परम पद की ओर
गति का सकेत होता है।

{1719}

मानवता प्रधान
समाज व्यवस्था मे
चेतना, मनुष्यता एव
कर्म निष्ठा की श्रेष्ठता
को
प्रधानता मिलेगी।

{1720}

काम का विकार
अति प्रबल होता है और
उसे नियमित एवं संयमित करने के
लिये ससारी मनुष्य के लिये स्वस्त्री
सन्तोष का व्रत
बताया है।

{1721}

वेश्यागमन यह
कुव्यसन सारे समाज के लिये
घातक है जो नारी जैसे पवित्र
जीवन को मोरी के कीडे
की तरह पतित बनाता है।

{1722}

परस्त्रीगमन तो इस
कारण भी जघन्य अपराध
माना जाना चाहिये कि ऐसा दुष्ट
पुरुष दो या अनेक परिवारों के
सदाचरण को नष्ट करता है। एवं
एड्स जैसे गभीर बिमारी को
आमत्रित करता है।

{1723}

अहिसा का सूक्ष्म रूप
मन से सम्बन्धित है। मानसिक
एव वैचारिक रूप मे भी किसी के मन
को कष्ट न दे। तथा जहा मतभेद
हो वहॅा उसे स्वस्थ
रीति से दूर करें।

{1724}

क्रोध, कल्पना करे
कि किसी भी कारण से आया,
किन्तु यदि समता की सुदृढता हुई
तो वह उस क्रोध को दबा देगी – फिर उसका
उपशम करके ही वह शान्त नहीं होगी बल्कि,
क्रोध को समूचे तौर पर क्षय करने के संस्कारों
को वह ढालेगी।

{1725}

जो ससार के
सत्कर्मों मे शौर्य
प्रदर्शित कर सकते हैं,
वे धर्म क्षेत्र में भी अपना
अपूर्व शौर्य अवश्य
दिखाते है।

{1726}

आत्मोन्नति की
उच्चस्थ श्रेणियो मे राग
द्वेष से विहीन होकर निरपेक्ष भाव
से सत्यावलोकन वीतराग पुरुषो ने
किया, वह भव्यो के लिए आदर्श
बन गया।

{1727}

सभी प्रकार
से मिथ्या को छोडना
एव सत्य का अनुकरण एव
अनुशीलन करना समता
साधक का कर्त्तव्य है।

{1728}

सत्य ओर
मिथ्या क्या ? यह पूर्णत
आत्मा की ज्ञान एव चिन्तन
दशा तथा अन्तर अनुभूति
के निर्णायक विषय है।

{1729}

किसी भी जीवधारी की
आत्मा कभी भी जागृति या सज्ञा
से सर्वथा हीन नही होती। संज्ञा के
दब जाने की दशाओ मे अतर हो सकता है
किन्तु वह सर्वथा नष्ट नही होती क्योकि आत्मा
का मूल स्वभाव ज्ञानमय है- चेतनमय है।

{1730}

सत्य तभी सुदृढता
से रह सकेगा जब उसके स्तर से
आत्मानुभूति को विचार एव आचार
की उत्कृष्टता एव शुद्धता के
पथ पर विकसित कर
लिया जाय।

{1731}

कभी कभी ऑखो
देखी कानों सुनी भी
झूठी हो जाती है। अत
सत्य को पहिचानने के
लिए सही समीक्षा होना
आवश्यक है।

{1732}

अहिसा का
व्यापक रूप
समाज मे व्यक्ति के सम
जीवन के निर्धारण मे
पूर्णरूप से सक्षम एव
प्रभावकारी हो
सकता है।

{1733}

जीवन मे छुपी शक्ति की
अभिव्यक्ति होने पर आत्मा तीनो
लोको की प्रभुता प्राप्त कर सकती है। वह प्रभुता
शस्त्रबल, धनबल अथवा अन्य किसी बाह्य बल
से नही प्राप्त हो सकती। वह तो आन्तरिक शक्ति
के सही विकास पर निर्भर है। आन्तरिक शक्ति
अभिमान की मात्रा मे दब जाती है।

{1734}

आन्तरिक ग्रन्थियो को सुलझाने के लिये अभ्यास के समय बारीकी से चित्त की वृत्तियो को पहचानने के प्रयत्न के साथ कठिनाइयों को दूर करने के लिये सही निर्णायक बुद्धिपूर्वक सावधानी रखना। साथ ही उलझी समस्याएं नही सुलझे तो नोट करने का ध्यान तथा योग्य गुरु के पास हल लेते हुए चला जाय, तो आतरिक तत्त्व सहज ही विदित हो सकते है।

{1735}

सिद्धान्त भी वही प्रेरणोत्पादक कहलाता है जो तदनुकूल कार्य क्षमता को जागृत बनाता हे। जीवन निर्माण का यही मूलमत्र होता है।

{1736}

अस्तेय का अर्थ है चोरी के स्थूल या सूक्ष्म सभी रूपो को निरन्तर छोडते जाना तथा अचौर्य व्रत को सुदृढ बनाते जाना।

{1737}

समता साधक के जीवन का प्रत्येक विचार प्रवचन और कार्य प्रामाणिकता के धरातल से ही जन्म लेना चाहिये एव प्रशिक्षण प्रामाणिक बना रहना चाहिये।

{1738}

अप्रमाणिकता जब तक है, जीवन मे सच्चा ज्ञान नही आ सकता, सच्चा चिन्तन नही हो सकता तब आचरण की सच्चाई का बनाना तो सभव ही नही है।

{1739}

नियम भग करने वाले के समाने अगर कोई अपना पाप भी छोड दे और सयम का रूख अख्तियार कर ले तो नियम भग करने वाले के दिल को भी पलट सकता है।

{1740}

किसी भी कार्य मे विलम्ब या शैथिल्य उस कार्य की कारण-सामग्री के प्रमुख सुत्रधार सकल्पशक्ति पर निर्भर है। वह सकल्पशक्ति वास्तविक ज्ञानपूर्वक निरन्तर जीवन-निर्माण की परिपूर्ण कारण-सामग्री के प्रत्येक अग मे प्राणस्वरूप बन कर दृढ, दृढतर, दृढतम बन जाय, तो अन्य कोई भी शक्ति उसमे वाधन नही वन सकती ।

{1741}

व्यक्ति का अटल सकल्प अपने क्रम मे परिवार, समाज, राष्ट्र एवं समूचे विश्व की संकल्प शक्ति को प्राणवान बनाता हे।

{1742}

जहाँ भी बिना परिश्रम अनर्थ तरीको से धन आने का स्त्रोत हो उसे जुए की ही श्रेणी मे लेना चाहिये। इस नजर से सट्टा व तस्कर व्यापार भी त्याज्य है।

{1743}

सन्तजन आत्मसाधना भी कर सकते है तथा उपदेश की धारा बहाकर समाज की सेवा भी कर सकते हैं।

{1744}

परोपकार मे स्वोपकार तो स्वत ही हो जाता है। पानी पिलाने वाले के हाथ पहले ठडे होते हैं।

{1745}

ऊर्जा दो प्रकार की है। एक भौतिक, दूसरी आत्मिक। भौतिक ऊर्जा के लिये सर्वत्र प्रयत्न प्रचलित है, लेकिन आत्मिक ऊर्जा का अत्यधिक स्वल्प प्रयत्न किचित ही परिलक्षित हो पा रहा है।कारण कि सत्ता के कर्त्तव्यो के प्रति पूर्ण निष्ठा प्राय नही है। निष्ठा के बिना उसकी ओर प्रयत्न बनाना कठिन है।

{1746}

यदि काम के अन्धेपन को छूट दे दी जाय तो वह कितने अनर्थो एव अपराधो की लडी बाध देगा इसका कोई हिसाब नही।

{1747}

बुराई हेय है और अच्छाई उपादेय। इसलिये हेय को छोडे और उपादेय को ग्रहण करते जाय।

{1748}

जितना त्याग उतनी समता और जितना भोग उतनी विषमता।

{1749}

आज तो प्रायः यत्र–तत्र–सर्वत्र मोह का ही जाल फैला हुआ है। इस जाल को तोडना सरल नही हैं क्योकि यह वह मदिरा है, जो अनेक रूपो को धारण कर लेती है। मानव को मानव न रखकर दानव पिशाच,रावण आदि बना देती हे। इससे छुटकारा पाना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। लेकिन निरन्तर विवेकपूर्वक अभ्यास से सुसाध्य हो सकता है।

{1750}

आत्मन् ! अमरता की चाबी तेरे पास है। तू उसे पा ले। असावधानी मत रख। साधन का वास्तविक सदुपयोग कर। जो साधन उपलब्ध हे, उसको व्यवस्थित रूप से नही सभाला अथवा उस विशेष विज्ञानमय प्रक्रिया का सही माने मे उपयोग नही किया, तो अवसर निकल जायगा। फिर क्या कर पाएगा। अत. अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता है। समय चूकने पर पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ भी नही बन पाएगा।

{1751}

ईर्ष्या से जितनी मुक्ति मिलेगी, उतना ही विकास जीवन मे समाता जायेगा।

{1752}

सातों कुव्यसनो के वैयक्तिक एव सामाजिक कुप्रभाव को ध्यान में रखते हुए त्वरित परित्याग की ओर कदम आगे बढने ही चाहिये।

{1753}

आज के अर्थ प्रधान युग मे अस्तेय व्रत का बहुत ही महत्व है। चाहे मजदूर की चोरी हो या सरकार की चोरी सभी चोरियॉ न्यूनाधिक रूप से निन्दनीय है।

{1754}

सम्पूर्ण सत्य का साक्षात्कार ही जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है- वह तभी होता है जब जीवन विकास चरम पर चढ जाय।

{1755}

अस्तेय व्रत का यह असर होना चाहिये कि संसार मे सभी नीतिपूर्वक अर्जन करे। ओर जो भी अर्जन करे वह स्वयं के शुद्ध श्रम पर आधारित होना चाहिये।

{1756}

विश्व विराटशक्तियो का केन्द्र है। सभी प्रकार की सभी शक्तियॉ यत्र-तत्र विखरी पडी है, जो भी व्यक्ति, जिस भी शक्ति को प्राप्त करना चाहे वह खुशी से प्राप्त कर सकता है। उसको रोकने वाला कोई भी सत्ताधीश व्यक्ति नही हे। हॉ, बाधाएँ आ सकती हे, पर उनको तो धैर्य ओर विवेकपूर्वक दूर किया जा सकता हे।

{1757}

सर्वजीव रक्षण की भावना मे अपने मनोविनोद के लिये जीव हनन सर्वदा निन्दनीय है।

{1758}

जब सहयोग एवं
सहानुभूति का वातावरण
होता है तब समता के विकास का
रूप एक और एक मिलकर दो की
संख्या मे नही बल्कि एक और एक
मिलकर ग्यारह की
सख्या मे ढलता है।

{1759}

त्याग और सयम
मे ऐसी दिव्य शक्ति
होती है जो मनुष्य को
उसके मनुष्यत्व से भी
ऊपर उठाकर देवत्व के
समीप ले जाती है।

{1760}

नियम वे
ही नही होते
जो लेखबद्ध हो बल्कि वे,
भी जो आदर्श
रूप हो।

{1761}

एक चिन्तक स्वय के जीवन
को तो समुन्नत बना ही लेता है
किन्तु सारे विश्व के लिये ऐसा आलोक भी
उत्पन्न करता है जिसके प्रकाश मे वह पीढी ही
नही, आनेवाली कई पीढियाँ भी विकास का
सन्देश आदर्श रूप
मे ग्रहण करती रहती है।

{1762}

समता के दर्शन
एव व्यवहार का इसे
चरम विकास मानना होगा कि
व्यक्ति का व्यक्तित्व समूचे
विश्व की परिधि तक
प्रसारित हो जाय।

{1763}

जब तक कपट
नही छूटता तब तक
मनुष्य अपने शुद्ध स्वार्थो के लिये
हर किसी के साथ
विश्वासघात का
व्यवहार करता है।

{1764}

बडे से बडा
और छोटा से छोटा व्यक्ति
भी कानून के
सामने समान गिना
जाता है।

{1765}

समुद्र मे जो जितना गहरा
गोता लगता है, उतने ही मूल्यवान् मोतियो
की उपलब्धि कर सकता है।
उसी प्रकार चिन्तन, मनन एव स्वानुभूति की
गहराई मे जो जितनी पेठ करता है, उतने ही
सत्साधना के मुक्ताकण
उसे प्राप्त हो सकते है।

{1766}

सहानुभूति एवं सहयोग का
स्नेह जब अंतर से उद्भूत होकर
सब ओर और सब पर फैल जाता है। तब
समस्त प्राणियो के साथ जिस आत्मीय समता की
स्थापना होती है, वह अपने सुख–दु ख को तो
भुला देती है परन्तु दूसरो के
सुख–दु ख को अपना सुख–दु ख
बना देती है।

{1767}

मर्यादा, नियम
एव संयम के अनुपालन
मे निष्कपट भाव
पहले जरूरी है।

{1768}

आत्मीयता रक्त से
भी सम्बन्ध रखती है, किन्तु यदि इसी
आत्मीयता का सम्बन्ध समता दर्शन
से जोड़ दिया जाय तो उसका
विस्तार समूचे विश्व एवं प्राणी समाज
तक भी फैलाया जा सकता है।

{1769}

सारे विश्व को बड़ा
कुटुम्ब मान ले उसे अपनी
स्नेह पूर्ण आत्मीयता से रंग दे तो
भला क्यो नही वसुधैव कुटुम्बकम्
जैसी कल्पना
साकार हो सकेगी।

{1770}

पाखण्ड तो
समता के मूल पर
ही आघातकरता है चाहे
वह समता सांसारिक क्षेत्र से सम्बन्ध
रखती हो अथवा
आध्यात्मिक क्षेत्र मे।

{1771}

ऐन्द्रिक सुख वास्तविक
सुख नही है, सुखाभास है।
आत्मा का स्वभाव इन ऐन्द्रियक सुखो
मे रमण करने का नही है। सुख
पौद्गलिक पदार्थों मे नही है स्वयं
आत्मा में है।

{1772}

अपनी आत्मा वैसी सबकी
आत्मा, इस समता दृष्टि से भी आगे
आत्मदर्शी की यह भावना सजग हो जाती है कि
वह अपनी आत्मा को भी एक प्रकार से सबकी
आत्मा में निमज्जित कर देता है याने कि
उसका जीवन पूरे तौर पर
लोकोपकारी बन जाता है।

{1773}

कपटी व्यक्ति
के मन वचन और
कर्म गाडी के पहिये की तरह
घूम जाते है।

{1774}

समता लानी
है तो दभीवृत्ति को
मिटानी पडेगी और जितना
अधिक दायित्व,
उतना ही अधिक प्रामाणिक
बनना होगा।

{1775}

समाज मे रहते
हुए व्यक्ति के कई पक्ष होते है
और इसीलिये उसके
दायित्व भी बहुमुखी
हो जाते है।

{1776}

किसी भी
कर्त्तव्य से कही भी
च्युत होने का अर्थ ही यह
होता है कि वहाँ अपने
विषमता का पोधा
रोप दिया है।

{1777}

समता व्यक्ति के
जीवन मे आवे तो समता समाज
के जीवन मे जागे - इस उद्देश्य
की श्रेष्ठ पूर्ति आत्म-दर्शन की दिशा मे
निरन्तर आगे बढते रहने से ही
सभव बन सकेगी।

{1778}

क्रोध के संहारक
शस्त्र के आघातो से
परमात्मा के तुल्य आत्मा का
अवमूल्यन हो जाता है। विचार
की सफल परिणिति
सत् आचार मे हे।

{1779}

बुराई जल्दी जड
पकडती और फैलती है,
उसी तरह विषमता भी एक बार
पनपकर बहुत जल्दी
पसर जाती है।

{1780}

मार्यादाओ
के निर्वाह मे भी
केवल अधानुकरण नही
होना चाहिये।

{1781}

समय को मिनट व सैकड
से भी छोटा धटक माना गया है।
समय का कोई मूल्य नही और बीता हुआ
समय कभी वापस लौटकर आता नही अत
आत्मदर्शी के लिये समय का लोकोपकार मे
सदुपयोग एक आवश्यक कर्तव्य
माना जाना चाहिये।

{1782}

आत्म–चिन्तन के आधार
पर समाज मे राजनैतिक,
आर्थिक आदि विभिन्न प्रकार की
समता–स्थापना हेतु नये शान्तिपूर्ण मार्ग खोजे
जांय और ऐसी पद्धतियो का विकास
किया जाय जो समाज के विस्तृत क्षेत्र
मे भावात्मक तथा कार्यात्मक
एकरूपता पैदा कर सके।

{1783}

समता की
महायात्रा मे कही
भी कर्तव्यहीनता की स्थिति
नही आवे इसकी सर्तकता
सदैव बनी
रहनी चाहिये।

{1784}

आत्मा के साथ कर्मो
का जो मैल लगा रहता है,
वही इसकी ज्ञान एवं चेतना शक्ति
को दबाता रहता है एवं अपने
मै को भी विस्तृत बनाये
रखता है।

{1785}

जितने सुविचार
एव सदाचरण से आत्मा
पर लगे मैल को धोन की कोशिश
की जाती है, आत्मा
का मूल स्वरूप भी
निखरता जाता है।

{1786}

आत्मा मे जितनी
ज्यादा सफाई आती है
उतना ही उसका बल बढता जाता है,
जितनी वह सशक्त होती है,
उतनी ही चेतना
जागृत होती है– संज्ञा
सुगठित बनती है।

{1787}

आत्मा जब तक मूर्च्छा
ग्रस्त रहती है, वह तब
तक शारीरिक एवं पौद्गलिक सुखो की
वितृष्णा मे अपने स्वरूप को
क्षतिग्रस्त बनाती
रहती है एवं सच्चे विकास से
दूर हटती रहती है।

{1788}

हमारा अपना चिन्तन
तब तक पूर्ण नहीं बन सकेगा
जब तक हम दूसरे प्रबुद्धजन के
अतीत के या वर्तमान के चिन्तन को समझकर
अपने स्वयं के चिन्तन की कसौटी पर न कसे
और उसकी उपयोगिता पर न सोचे।

{1789}

भारतीय संस्कृति
में "वासुधैव कुटुम्बकम्'
की जो कल्पना की गई है,
उसे समता पथ पर चलकर
ही साकार बनाई
जा सकती है।

{1790}

समता जीवन का
मुख्य स्वर होना चाहिए।
जीवन की महानता
समता मे निहित हे। मर्यादा ही
उत्तम आचरण का
सुरक्षा कवच है।

{1791}

चोरी का
अध्याय वही से शुरू
होता हे जब समर्थ कमजोर
की सम्पत्ति
हरने लगता हे।

{1792}

प्रामाणिकता
की जीवन मे सभी
अगो मे प्राण प्रतिष्ठा,
आज की प्रबल
आवश्यकता हे।

{1793}

समता-साधना की अन्तरग
धारा तो हर समय प्रवाहित होती
रहेगी किन्तु इसके प्रवाह को पुष्ट करते
रहने की दृष्टि से सत्साधना
के लिये नियमित समय का
निधार्रण भी आवश्यक हे।

{1794}

तप के माध्यम
से साधक विशाल
कर्मराशि को जला डालता हे।
तप सीधा अन्तर शक्ति को
प्रदीप्त करता हे।

{1795}

सत्य के प्रति
सतत निष्ठा मनुष्य
को समता की परम
श्रेष्ठता तक पहुचाती है।

{1796}

दंभ, छल,
कपट ओर पाखण्ड
आज की व्यवहारिकता के
सूत्र बनते जा
रहे है।

{1797}

वह जो सोचता हे, बोलता
और करता है- उसका उसके
स्वय के जीवन पर, उसके साथियो के जीवन
पर एव समुच्चय रूप से समाज के जीवन पर
क्या प्रभाव पडेगा-यह देखते एव
महसूस करते रहने
की सतर्कता होनी चाहिये।

{1798}

जब दपर्ण अपनी उच्चतम
सीमा तक स्वच्छ कर लिया जाता
है तो अपनी निर्मलता से न स्वयं ही
सुदर्शनीय होता है बल्कि जो भी उसके समक्ष
आता है उसके प्रतिबिम्ब को निखार कर
वह उसे भी सुदर्शनीय बना देता है। इन्सान
और भगवान् की समता की
यही आदर्श स्थिति होती है।

{1799}

परिग्रह में
धन सम्पत्ति के
सिवाय सत्ता, पद
या यश सभी का
समावेश हो जाता है।

{1800}

आत्मा की आवाज
सभी जीवनधारियो में उठती
है, किन्तु उसका अनुशीलन एवं
उसका विकास उसे सुनने एव
उसके अनुसार करने पर
आधारित रहता है।

{1801}

आत्म-विकास का
सही अर्थ यह होगा कि
आत्मा अपनी आवाज को शरीर से
मनवाये और शरीर वही
कर सके जिसकी आज्ञा
आत्मा दे।

{1802}

विकास का तात्पर्य
उपर उठना और जब
आत्मा हल्की बनती हुई उपर और
उपर उठती जायगी तो
विकास के चरम बिन्दु तक
भी पहुँच सकेगी।

{1803}

जीवन में जब
ज्ञानार्जन करके आचरण
को पुष्ट बना लिया जाता है
तब अन्तरानुभूति सशक्त बनती
है और आत्मानुशासन
प्रबल होता है।

{1804}

पुण्य उस नाव की तरह
होता है जिसमे बैठकर नदी को
पार कर ले किन्तु दूसरे तट पर
कदम रखने के लिये तो नाव को भी छोडनी
पडती हे। इस कारण पुण्य की सहायता से
ससार मे जो सुख-वेभव की उपलब्धियॉ होती है,
उन्हे छोडने को भी चरम त्याग कहा है।

{1805}

भाई पिता माता
धर्म और ईश्वर सभी का
स्थान एक परिग्रही के लिए
तृष्णा ले लेती है।
वितृष्णा विषमता
की मॉ है।

{1806}

कर्म बधन से
ज्यो-ज्यो आत्मा मुक्त
होती जायेगी, वह उर्ध्वगामी
बनेगी क्योकि वह
हल्की होती जायेगी।

{1807}

मन ही बन्धन
और मुक्ति का मूल
कारण होता है। विषम दृष्टि
हटने पर ही समदृष्टि
उत्पन्न होती है।

{1808}

चोरी सदा
सत्य का हनन
करती है, अत.
त्याज्य है ही ।

{1809}

सामाजिक स्वेच्छिक
नियंत्रण प्रणालिया यदि सुदृढ
नही होगी तो व्यक्ति की कामनाएँ
साधारण रूप से उद्दाम बनेगी और वह
आत्म विस्मृत बन कर पशुता
की और मुडेगा।

{1810}

चैतन्य का
अनुशासन हो तो
निश्चित रूप से प्रकाश
की और ही गति होगी-
जडत्व का अधकार उसे
घेर नही सकेगा।

{1811}

जहाँ भेद है, वहाँ
विकार है, पतन है।
वाणी ओर कर्म मे भेद है तो
वहाँ विषमता का खेद ही खेद
समझिये।

{1812}

बिना श्रम
का धन व्यसनो
की बढोतरी में ही
खर्च होता है। विषमता
छोडनी है तो समता
ग्रहण करनी है।

{1813}

यदि व्यक्ति का अपने और
अपने साथियो के हितो के साथ सामजस्य
बिठाकर चलने का अभ्यास नही हुआ तो उसके
जिस सभ्यता एव सस्कृति की रचना होगी,
वह न सर्वजन हितकारी होगी
और न किसी
भी दृष्टि से आदर्श।

{1814}

विषमता की कुप्रवत्ति के
साथ जब एक व्यक्ति चलता
है तो उसका कुप्रभाव उसके आस-
पास के वातावरण पर पडे बिना नही रह
सकता। यही वातावरण व्यापक बनकर
परिवार, समाज एव राष्ट्र से लेकर
पूरे विश्व तक फैलता है।

{1815}

मानव जीवन
के लिये विकास
की कोई भी ऊचाई
कभी भी असाध्य
मत मानिये।

{1816}

ज्ञान, दर्शन चारित्र्य
रूप, सत् साधना की
त्रिधारा जो सम्यक्त्व की निर्मलता मे
बहती हुई आत्म-स्वरूप
को भी निर्मलता
की ओर ले जाती है।

{1817}

आन्तरिकता की
अभ्युत्थानी अवस्था मे
ससार के समस्त जीवन
धारी अपनी ही आत्मा के
तुल्य प्रतीत होने
लगते है।

{1818}

आत्मानुभूति
एव अन्तर्चेतना की जागृत
दशा मे जो प्रगति की जायेगी, वह
व्यक्ति एव समाज दोनो
के जीवन को प्रभावित
करेगी।

{1819}

आत्म-दर्शी व्यक्ति
एक प्रकार से परिवर्तनशील
समाज के नेता होगे-सामान्य जन
जिनका विश्वासपूर्वक
अनुसरण कर सकेगे।

{1820}

जब लेने की ही मनुष्य
कोशिश करता रहता है तो यह
तो निश्चित नही है कि वह जो कुछ लेना
चाहता है, वह उसे मिल ही जाय, किन्तु लेने
के लोभ मे वह अपने आत्मिक गुणो
का कितना सर्वनाश कर देता है-
इसकी कोई सीमा नही।

{1821}

आत्मा का परम स्वरूप
ही समता का चरम
स्वरूप होता है। ज्ञान
और चिन्तन आचरण की
आधार शिलाए होती है।

{1822}

आत्मानुभूति के
सजग एव स्पष्ट होने
के बाद चिन्तन एव मनन की
मनोवृति ओर अधिक
गभीर एवं अन्तर्मुखी
बनती है।

{1823}

जितनी
निरपेक्ष क्रान्ति
पनपती है, समता
सगठित ओर सस्कारित
बनती है।

{1824}

क्रोधी अपने
सम्बन्धियो मित्रो एव
स्नेहियो को भी
शत्रु
बना लेता है।

{1825}

जब स्वय ज्ञानार्जन न
करके दूसरो के ज्ञानार्जन मे
बाधाएँ पैदा की जाती हे अथवा
पाखण्ड या दभ से अज्ञान या कुज्ञान की
प्रतिष्ठा की जाती है तो ऐसा
करने वाले के ज्ञान पर
आवरण लग जाते है।

{1826}

चिन्तन और
मनन की शिला पर
घिसती हुई स्वानुभूति तीक्षणतर
बनती हुई
अधिक समतामयी
बनती है।

{1827}

क्रोध आन्तरिक
सद्वृत्तियो के लिए
अतीव घातक होता है, एक
भयानक शस्त्र
के समान।

{1828}

जहा बाहर मे
भटकाव है, वहा
स्वार्थ है विकार है
ओर विषमता है।

{1829}

अच्छे काम से अच्छा
नाम कर्म तो उससे अच्छी
गति की प्राप्ति। अच्छी गति मिले तो
विकास के अच्छें अवसर मिलते
है। बुरी गति मे विकास की
सज्ञा ही पैदा नही होती।

{1830}

अपने ही ज्ञान और
विवेक से जो पतन के मार्ग
को पहिचान जाता है, वह अपने
जीवन मे व्यवहारिक प्रयोग के नाते अपने उन
विकारो से बचना चाहता है जो
पतनकारक होते हे। आत्म
नियंत्रण की श्रेष्ठता को चुनौती
नही दी जा सकती ।

{1831}

समता
शान्ति स्मृद्धि एव श्रेष्ठता
की प्रतीक होती है
इसे कभी
न भूले।

{1832}

प्रात. सूर्योदय से
पूर्व कम से कम एक
घडी यह आत्म चिन्तन करे कि
उस दिन हमे अपनी चर्या
क्या रखनी है जो समता लक्ष्य
के अनुकूल हो।

{1833}

दिन भर मे क्या
अकरणीय किया और
क्या करणीय नही किया- इसका
लेखा-जोखा भावी
सावधानी की दृष्टि से
जरूर लगाया जाय।

{1834}

समता-साधक का
बाह्य जीवन भी समता
प्रसार मे नियोजित हो जिसके प्रभाव
से सभी क्षेत्रो मे समता के
लिये चाह गहरी बने।

{1835}

स्वानुभूति की
सजग दशा मे होने वाला
स्वाध्याय नये-नये चिन्तन व मनन
तथा उसके फलस्वरूप नई
मौलिकता को जन्म
देने वाला होगा।

{1836}

सामान्य रूप से समाज
में बहुसख्यक ऐसे लोग होते
है, जिनका विवेक वाछित सीमा से
नीचा होता और जो अपने ही अनुशासन को
समझने, कायम करने तथा
उसका पालन करने की क्षमता
से हीन होते हे।

{1837}

समता साम्यता
या समानता मानव
जीवन एव मानव
समाज का शाश्वत
दर्शन है।

{1838}

प्रत्येक विचार
एव प्रत्येक कार्य की
कसौटी जब स्वय की ही
अन्तर्चेतना बन जाय
तब खरेपन की जाच हर समय
होती रहती है।

{1839}

जितनी
अधिक गभीरता
बढेगी, उतनी ही
उपलब्धि भी महत्वपूर्ण
होगी।

{1840}

आत्मा का
मौलिक रूप संसार
की समस्त वस्तुओ से
विलक्षण है।

{1841}

त्याग को जीवन का
उत्थान मार्ग इसलिये बताया
गया है कि जीवन विषमता के
इस तट से साधना की नदी पार
करके समता के दूसरे तट
पर पहुच जाय।

{1842}

लोकहित की
सतत चेष्टा नही हो तो
आत्मवत् सर्व भूतेषू का
अनुभाव भी कार्य रूप
नही ले सकता है।

{1843}

स्पष्ट स्वानुभूति
की दशा मे पतन की
आशका एकदम
घट
जाती है।

{1844}

कषाय
प्रमुख रूप से
आत्म–गुणो का
घात करने
वाली है।

{1845}

यदि सस्कार त्याग की
आधारशिला पर निर्मित हुये
तो वे संसार को भी स्वर्ग बनाने का प्रयास
करेगे तथा यदि वे वैराग्य की दिशा मे मुड
गये तो आध्यात्मिकता का निर्मल प्रकाश
बिखेरे बिना नही रहेगे।

{1846}

स्वहित की संज्ञा का सही
मोड हो तो वह परहित के साथ बलिदान बाद
मे भी करे किन्तु संतुलन करना तो जल्दी ही
सीख लेगी, और संतुलन की वृत्ति से ही
व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन का
स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर जायेगा।

{1847}

ब्रह्मचर्य का
तेज समता साधना
मे परम सहायक
होगा।

{1848}

विचारो मे समता,
वाणी मे समता तथा आचरण
मे समता-तभी कर्मण्यता के मार्ग पर
साधक के चरण तेजी से और मजबूती
से आगे बढते है।

{1849}

जेसे सूर्य के बीच
मे बादल आकर उसके तेज
को ढक लेते हैं उसी तरह कर्म के
आवरण आत्मा के अनन्त
तेज को ढक लेते है।

{1850}

''दृष्टि दर्शन'' के
अनुसार सामान्य अवबोध
दर्शन शक्ति को अवरुद्ध
करने वाला कर्म। इस आवरण के
कारण आत्मा वस्तु के
सामान्य अवबोध से
वचित रहती है।

{1851}

जैसा व्यवहार मन,
वचन, काया से दूसरो के
साथ किया जायेगा,
वैसा ही प्रतिफल यह
कर्म करने वाले को भी देता हे।

{1852}

मनुष्यता का अस्तित्व
सदा अक्षुण्ण बना रहेगा।
उसका अस्तित्व मात्र ही न बना
रहे, वल्कि समता के समरस स्वरो मे ढल कर
मनुष्यता का आदर्श स्वरूप प्रकाशित हो-
इसके लिये क्रान्ति की आवाज उठाने की
नितान्त आवश्यकता है।

{1853}

रक्त के
सम्बन्ध से भी
भावना की शक्ति
बडी होती है।

{1854}

जीव ओर अजीव
के सम्मिश्रण से समस्त जीवधारी
दिखाई देते है
तथा अजीव के बधन से
ही जीवधारी अजीव तत्वो की
ओर आकर्षित
हो जाते है।

{1885}

जब मानव अपना
निश्चित मानस बनाकर
अज्ञान से लड लेता है तो
ज्ञान का सूरज भी उगा कर
रहता है।

{1856}

कषाय विष
को बढाती है ओर जीवन
के हर पल और पहलु मे
राग एवं द्वेष के कुत्सित
भाव
को भरती है।

{1857}

समाज के अन्य क्षेत्रो मे
भी समता पाने की भूख तेजी से
बढती जा रही है और हर आदमी
के मन मे स्वाभिमान मात्र रहा है जो उसे
समता कायम करने की दिशा
मे सशक्त भी बना रहा है।

{1858}

सम्पन्नो एव
अभावग्रस्तो के बीच की खाई को
जितनी तेजी से पाटी जा
सकेगी-दोनो के बीच समानता भी
उतनी ही
हार्दिकता से बढेगी।

{1859}

समता की रक्षा
के लिये महापुरुषो ने
किसी भी बलिदान को
कभी भी बडा नही समझा।
सर्वस्व-त्याग उनका
आदर्श बिन्दु रहा ।

{1860}

अपने आप
को नियन्त्रित का अभिप्राय
ही यह है
कि अपने विकारो को
विषय एव कषाय को
नियन्त्रित करो।

{1861}

यह सत्य है कि मानव-मन
के मूल मे समता की प्रबल चाह
रमी हुई है। वह भूलता है, गिरता है किन्तु जब
भी थोडी बहुत चेतना पाता है
तो हर तरह से समता लाने
का प्रयत्न करने लगता है।

{1862}

आज जब क्रान्ति की
आवाज उठाने की बात कही जाती
है तो उसका सरल अभिप्राय यही लिया जाना
चाहिये कि विषमता से विकृत जो जीवन प्रणाली
चल रही है, उसे मिटाकर उसके स्थान पर ऐसी
समतामय जीवन प्रणाली प्रारभ की जाय जिससे
समाज मे सहानुभूति, सहयोग एवं
सरलता की गंगा बह चले।

{1863}

यह ध्रव सत्य
है कि मनुष्य अपने
जीवन मे गिरता, बदलता
और उठता रहेगा, किंतु समूचे
तौर पर मनुष्यता कभी भी
समाप्त नही
हो सकेगी।

{1864}

समता जब जीवन मे
उतरती है तो वह चिकने
विकारो का शयन भी करती है तो
सम्पूर्ण जीवन धारियो के बीच समत्व
की भावना की स्थित
का भी निर्माण करती हे।

{1865}

सम्यक्त्व धारण
करने पर व्रती बना जाय
और उसके बाद श्रावकत्व से साधुत्व
की ऊँची सरणियो मे चढते हुऐ मोक्ष
की मंजिल तक पहुंचा जा सकता है।

{1866}

अहिसा परहित पर
आघात नही होने देगी,
संयम, स्वार्थ को कभी ऊपर
नही उठने देगा तो तप, स्वार्थ के
सूक्ष्म अवशेषों को भी
नष्ट कर देगा।

{1867}

जो आत्मनियंत्रण
करना सीख जाता है, वही
तो संयमी कहलाता है ओर जो
सयमी है, वह समता को अपने
जीवन मे ऊॅचा से ऊॅचा
स्थान अवश्य देगा।

{1868}

जब कोई दूसरा अपने
स्वार्थ से टकराता है तो क्रोध
आता हे, उस टकराव को मिटाने
के लिये माया का सहारा लिया जाता हे। जब
अपना स्वार्थ जीत जाता हे तो मान बढ जाता है
और स्वार्थ लोभ को
तो छोडता ही कहॉ हे ?

{1869}

मानव जाति ने
ऐसी-ऐसी विभूतियो
को जन्म दिया है,जिन्होने
समता के प्रकाशस्तंभ
बन कर जीवन आदर्शो
एवं मूल्यो की
स्थापना की।

{1870}

किसी के लिये
जितने बाहरी नियत्रण
की आवश्यकता होती है-
यह समझा जाय कि वह अभी
उतना ही अधिक अविकास की
स्थिति मे
पडा हुआ है।

{1871}

अहिसा, सयम
एव तप की आराधना
वही कर सकता है जो निज पर
नियत्रण करना
सीख जाता है।

{1872}

विषय और
कषाय का मूलत
फेलावा विषमता के
कारण होता है।

{1879}

आग में न तपाया
जाय तो सोने की पक्की
परीक्षा न हो सकेगी,उसी प्रकार एक चरित्र-
साधक को यदि कठिन कठिनाइयो का सामना
न करना पडे तो उसकी
साधना भी कसौटी पर खरी
नही उतरेगी।

{1874}

स्वार्थो को
समेटो और आत्मीयता
को फैलाओ यह एक आत्मदर्शी
का नारा ही नही,
आचरण का सहारा
होना चाहिये।

{1875}

आत्म-दर्शन से
परमात्म दर्शन तक
की यात्रा की पूर्णाहुति चिन्तन
एव कार्य शैली पर आधारित
रहती है।

{1876}

आत्म
नियत्रण का तात्पर्य
गुणवृद्धि और गुणवृद्धि का
तात्पर्य समतामय
जीवन होना ही
चाहिये।

{1877}

एक बार मुनष्य को,
भेडिया बनाने वाले वातावरण
को बदल दिया गया तो वह सभव
हो सकेगा कि समूचे समाज को सामान्य
नैतिकता के धरातल
पर खडा किया जा सके।

{1878}

सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन की तुलना मे सम्यक् चारित्र स्वयं ही अधिक कठिन होता है और जब आचरण मे विविध प्रकार की कठिनाइयॉ सामने आती है एवं उस आचरण की स्वस्थ्य प्रक्रिया को भ्रष्ट करना चाहती है तब जो अडिग रहता है, वह जीवन की ऊँचाइयो मे विहार करता जाता है किन्तु जो उनके सामने झुक जाता है हार जाता है, वह अपनी सम्पूर्ण साधना को भी मिट्टी मे मिला देता है।

{1879}

आत्म नियन्त्रण का अर्थ है – धर्म की ओर गतिशील होना।

{1880}

मनुष्य की कम से कम ऐसी वृत्ति तो पूरी तरह ढल ही जाय कि वह स्व–हित एवं परहित को संघर्ष में न डाले। वह दोनो के बीच समाज के सभी क्षेत्रो मे सन्तुलन स्थापित कर सके।

{1881}

जो जितना अधिक आत्म–नियंत्रण की दिशा में आगे बढता है–यह मापदण्ड है कि वह उतना ही अधिक विवेक एवं विकास की सुदृढता को प्राप्त करता है।

{1882}

मोह–वृत्ति सबसे अधिक चिकनी होती है जो चैतन्य को न तो स्वरूप बोध की और उन्मुख होने देती है और न स्वरूपाचरण की ओर।

{1883}

मोह की प्रबलता इतनी मानी गई है कि अकेला मोह छूट जाय तो सारे कर्मों का वृक्ष हिल उठेगा और गिर जायेगा।

{1884}

समता की दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि समझने एवं मानने के बाद जब उस पर क्रियान्वयन किया जायगा तब देश,काल के अनुसार अवश्य ही कई तरह की व्यवहारिक कठिनाइयॉ सामने आवेगी और उनका यदि सही मुकाबला हुआ तो विषमता की स्थितियां नष्ट होती हुई चली जायेगी और ये थपेडे वैसी अवस्था में मनुष्य के मुख को समता की ओर सोत्साह मोड देगे।

{1885}

आत्मदर्शी को निरन्तर स्वाध्याय की आदत बनानी चाहिये और वह स्वाध्याय भी सत्साहित्य का हो।

{1886}

कर्म का सीधा
अर्थ है कार्य। कार्य
जो किया जा चुका है, वह फल
अवश्य देता है—
जैसा काम वैसा फल।

{1887}

आत्मा ही जब
अपने पूर्ण समतामय लक्ष्य
तक पहुंच जाती है, तब वही
परमात्म स्वरूप धारण कर
लेती है।

{1888}

आत्म दर्शन
की आखिरी
मंजिल है आत्म
विसर्जन ।

{1889}

परमात्मा ऐसी कोई
शक्ति नही, जो प्रारम्भ से
परमात्मा रही हो अथवा जिसने
इस ससार की रचना की हो ।
नर से नारायण और आत्मा से परमात्मा –
यही प्रकृति का प्राकृतिक
विकास—क्रम होता है।

{1890}

अच्छा और
भला काम पहिचाना
जाता है खुद की
महसूसगिरी पर । जो
सुधर कर पैनी बन
चुकी है।

{1891}

अन्तर की
आवाज के निर्देशन मे
चलते रहे तो कही भी भूल हो
जाय— इसकी समावना
नही रहती है।

{1892}

आदर्श
चिन्तन वर्षों और
युगो के मार्ग को
घडियो मे तय कर
सकता है।

{1893}

किसी वस्तुस्वरूप का
ज्ञान होना सरल है किन्तु
सम्यक् ज्ञान होना कठिन हैं और उससे भी
अधिक कठिन होता है उस ज्ञान
को अडिग रूप से
व्यवहार मे लाना।

{1894}

सामाजिक जीवन की
आज की प्रणालियो मे पूंजीवाद
भी है तो समाजवाद या साम्यवाद
भी है, किन्तु किसी भी एक प्रणाली के प्रति
दुराग्रह या आग्रह भी बन
जाय तो वह साध्य की स्थिति
को अस्पष्ट बना देता है।

{1895

कोई भी
विकास और विकास
का चरम बिन्दु इस
आत्मा की पहुच से
बाहर नही है।

{1896}

मान के स्थान पर
नम्रता, माया के स्थान पर सरलता
और लोभ के स्थान पर त्याग के
सस्कारो को समता पुष्ट बनाती है तो
समता विषय–भाव के
स्थान पर सयम
की लौ भी लगाती है।

{1897}

जो अपना है उस पर
राग और जो अपना व
अपनो का विरोधी है उस पर द्वेष।
इन्हीं वृत्तियो मे जीवन
अधिकांशत लुढकता रहता है
और जीवन के हर पहलु में
विषमता भरता रहता है।

{1898}

कर्म–बधन हर
कदम पर विषमता
बढाते है तो इन्हे काटना
व रोकना समता की दिशा
मे जीवन को
अग्रसर बनाना है।

{1899}

विषमता के थपेडो
से गुणो की भूमिका
समाप्त होती जाती है एवं चारों
और दुर्गुणो को बढावा
मिलने लगता है।

{1900}

मानव समाज का अन्तिम
उद्देश्य यही हो सकता है कि मानव स्वार्थ के
पशुत्व को छोडकर मानवता का वरण करे
और उससे भी आगे त्याग एवं बलिदान के
पथ पर बढकर समता के
चरम आदर्श तक पहुंचे
एव दैवत्व को धारण करे।

{1901}

जो जितना
शरीर–सुख की लालसा मे
दौडता है, वह उतना ही
विषमता के अंधकार मे
भटकता है।

{1902}

जीवन दो, रक्षा
करो तो जीवन मे
आयु की लम्बाई मिलती
है। दूसरो को मारो तो
आप कहाँ मार से
बच सकोगे।

{1903}

व्यक्ति समूह
का अग होता है
तो समाज होता है।
व्यक्ति-व्यक्ति का
समुच्चय रूप।

{1904}

असभव
शब्द मानव
जीवन के शब्दकोष मे
कही भी
नही है।

{1905}

समता का मार्ग ही यह है
कि सारी आत्माओ मे भव्यता होने
पर समान विकास की शक्ति रही हुई हे- यह
दूसरी बात है कि उनमे से कई आत्माएँ उस
शक्ति को प्रस्फुटित ही न करे
अथवा सही विकास
की दिशा मे अग्रसर न हो।

{1906}

मोह जीवन
की सम्पूर्ण विषमता
की जड रूप होता है।
मुख्यतया मोह के कारण
ही राग और द्वेष की
वृत्तियाँ बनती है।

{1907}

आत्मा एव
परमात्मा के अतर
को यदि एक ही शब्द मे
बताया जाय तो
वह है विषमता।

{1908}

कायर के
लिये सब कुछ असभव है,
किंतु साहसी के
लिये कुछ भी
असभव नही है।

{1909}

ज्ञान विकास का मार्ग
दिखाता है, दर्शन उसमे विश्वास
पेदा करता है तथा कर्म उस मार्ग
पर अडिग होकर चलता है, तभी सच्चे विकास
की यात्रा आरम्भ होती है।
प्रकाशपूर्ण विकास के अतिम छोर
का नाम ही मुक्ति है ।

{1910}

प्रत्येक जीवन मे स्वरक्षा
का भाव हो - यह स्वाभाविक
नही है किन्तु यह भाव अन्य जीवनो के साथ
रलमिल कर त्याग एवं बलिदान के ऊँचे
स्तरों तक पहुँचे -
यह मानव-जीवन एवं मानव समाज का
सतत प्रयास होना चाहिये।

{1911}

जिसको जो
प्राप्त नही हे, उसे जव
वह चुपके से ले लेना
चाहता हे तव
उसे चोरी करना
कहते हें।

{1912}

जब जीवन मे
दुर्गुणो का फैलाव हो
जाता है तो वह मिथ्यात्व के
वात्यचक्र मे टकराता रहता है
और पतन की राह पर
बढता जाता हे।

{1913}

जीवन मे जिन
संस्कारों का सामान्यतया निर्माण
होता हे, उन्ही की पृष्ठभूमि पर
संसार का जीवन भी चलता है
ओर वेराग्य का जीवन
भी बनता है।

{1914}

लेना छोडकर देना
सीखे तो उसके साथ
सहानुभूति सौहार्द्र, सहयोग
एव स्नेह की जो मधुर धारा प्रवाहित
होगी वह स्व-पर जीवन
को श्रेष्ठता का
पथगामी बना देगी।

{1915}

त्याग न सिर्फ
त्यागी के जीवन मे एक
नया उर्ध्वगामी परिवर्तन लाता है,
बल्कि अपने चारों ओर के वातावरण
मे भी जागृति
का मत्र फूंकता है।

{1916}

यदि हमें विषमता से
दूर हटते हुए समता के मार्ग
पर आगे बढना है तो वे उपाय अवश्य ही
खोज निकालने होगे जिनके द्वारा स्थायी
रूप से स्वार्थ के मदोन्मत हाथी पर कडा
अकुंश लगाया जा सके।

{1917}

सम्पत्ति और
विपत्ति मे जब अनुभूति की
एकरूपता आती है तो
वेदनीय कर्म
कटने लगता है।

{1918}

जितना मोह
ज्यादा, उतनी ही
मन की विषमता ज्यादा। मन
विषम तो वचन विषम और
तब कार्य भी विषम
ही बनता है।

{1919}

भोग मिलते हैं
किन्तु मिले हुये भोगो
को भी भावनापूर्वक छोड देना—
इसी मे त्याग की
विशेषता रही हुई है।

{1920}

इंसान और
भगवान् की
समता का मूल
अवरोध है कर्म।

{1921}

"अप्पा सो परमप्पा" का
सिद्धान्त भेद को भूलाकर
प्रत्येक ऊँची—नीची आत्मा मे आस्था स्थापित
करता है तथा उसमें उच्चतम
विकास पूरा कर लेने की
अटूट प्रेरणा भरता है।

{1922}

समता के सर्वोच्च
रूप की उपलब्धि सरल
नही है किन्तु यह प्रत्येक
विकासोन्मुख जीवन के
लिये साध्य अवश्य है।

{1923}

गति और
जाति मे भी ऊँचा
या नीचा स्थान दिलाने
वाला गौत्र कर्म
होता है।

{1924}

साहस
और पराक्रम पैदा
होगा विषमता
काटने से,
समता लाने से।

{1925}

समता की दृष्टि से
विकास का भेद नही है, कर्म
का भेद हो सकता है और जो
जितना व जैसा कर्म करता है,
वह वैसा व उतना विकास भी
प्राप्त कर लेता है।

{1926}

समता, कषाय को
काटती है, सरलता लाती
है वह मनुष्य को विषम से
हटाकर विराग की ओर मोडती है
तो जीवन को भोग से हटाकर
त्याग की दिशा मे गतिशील बना देती है।

{1927}

बाधा डालने
से बाधा पैदा होती है
तो दूसरों की बाधाएँ
हटाने से अपनी भी
बाधाएँ हटती है।

{1928}

आत्मा के स्वरूप
पर जो विषय और कषाय
की कालिख तथा क्रोध, मान, माया
लोभ की मलिनता चढी होती है–
समता सीधा उन पर
अपना असर करती है।

{1929}

परम पद की ओर
गतिशील समतामयी
आत्मा ही अपनी सम्पूर्ण मलिनता
मुक्ति के साथ परमात्मा
के स्वरूप का
वरण करती है।

{1930}

ऐसा कोई विकास
नही होता जो सीधा
आसमान से गिरता हो। प्रत्येक
विकास धरती से शुरू होता है।
अविकास से आरम्भ होता है।

{1931}

विषमता के अंधरे मे
जब यह आत्मा भटकती
रहती है, तब इसकी एसी दीन–हीन
अवस्था दिखाई देती है
जैसे वह तेजहीन और
प्रभावहीन हो।

{1932}

आत्म नियन्त्रण की
स्थिति मे भी जब कमजोरी
के क्षण आते है और फिसलने का खतरा
पैदा हो जाता है, तब भी सामाजिक
नियन्त्रण ही मनुष्य के स्वार्थ को आक्रामक
बनने से रोक सकता है।

{1933}

सत्पुरुषार्थ करने
पर भी जो कार्य –
सिद्ध नही होता है,
उसका कारण
अन्तराय कर्म होता है।

{1934}

साध्य जब
निन्तर सम्मुख रहे
और चरण उसी दिशा मे
बढते रहे तो देर सबेर
ही सही साध्य की
उपलब्धि होकर रहेगी।

{1935}

लोभ की
ऊपर की मात्रा हटा
दीजिये—फिर लाभ ही
लाभ है। लोभ काटे
तो लाभ मिलेगा।

{1936}

जिस मार्ग
पर चलकर इन
कर्मरूपी शत्रुओ से लडा
जाता है, वही कर्मण्यता
का मार्ग कहलाता है।

{1937}

कोई भी दर्शन कितना
ही श्रेष्ठ क्यो न हो – किन्तु
यदि उससे उसके आचरण की
सजीव प्रेरणा नही जागती हैं तो
उस दर्शन की श्रेष्ठता भी तब
तक उपयोगी नही बन सकेगी।

{1938}

जब ज्ञान अपने
तेजस्वी स्वरूप को
कर्मठ क्रिया मे प्रकट
करता है तभी तो विचार मुक्ति
की सबल पृष्ठभूमि का
भी निर्माण किया
जा सकता है।

{1939}

जिसने
अपना छोडा है, उसे
सदा एव सर्वत्र लोगो
ने अपने सिर पर
उठाया है।

{1940}

जहाँ त्याग
है, वहाँ विषमता
पास में भी फटक नही
सकती। जितना लोभ है
उतना ही क्षोभ है।

{1941}

समता वृत्ति के इतिहास
पर भी यदि एक दृष्टि डालें तो विदित
होगा कि समतामय जीवन के व्यवहार रूप
मे अपनाने के बीच मे व्यक्तिगत एवं
समाजगत बाधाओं का आरपार नही रहता।

{1942}

सावद्य की निवृति के साथ
ही समता को मजबूत बनाकर
मन को वे निर्देश व आदेश दिये
जाय कि अब मुझे कम से कम इस अडतालीस
मिनिट की सामायिक
साधना मे इधर–उधर भटकना नही
है, निश्चित उपस्थित रहना है।

{1943}

समता का
स्वरूप जितना ऊपर उठता
है, आत्मा का स्वरूप
उतना ही समुज्जवल
होता जाता है।

{1944}

समतामयी आत्म
शक्तियॉ न स्वयं उस आत्मा
के विकास को प्रदर्शित करती है,
बल्कि समाज को समुच्चय रूप मे भी
विकास की ओर प्रेरित बनाती है।

{1945}

यह जन्म यदि अपने
समूचे रूप में उपर उठ
जाता है तो फिर आने वाले जन्म
स्वत ही उठ जायेगे –
परमात्म पद की ओर आगे बढेगे
यह सुनिश्चित है।

{1946}

जो जाना है और
जिसे जानकर अच्छा
समझता है उसको अगर कार्य रूप
नही दिया तो वह जानना
महत्वपूर्ण एव सार्थक
नही बन सकता है।

{1947}

समता की
दार्शनिक पृष्ठभूमि तभी
सार्थक मानी जायेगी तब वह
व्यवहार के थपेडो मे भी अपने आप
को अपरूप न बनाकर अपनी
उपयोगिता प्रमाणित
करती रहे।

{1948}

सामायिक का निषेधात्मक
पक्ष बाह्य रूप से तो साध लिया
जाता है – सावध योगो का त्याग
कर। पर विधि पक्ष समता –साधना को
क्रियावन्वित रूप देना ही हमारा
मूल उद्देश्य होना चाहिये।

{1949}

अनाचारित ज्ञान
और अज्ञानूपर्ण
क्रिया दोनो जीवन के
वास्तविक उत्थान के लिये
निरर्थक है।

{1950}

जहॉ तक
विषमता बढती रहेगी–
स्वार्थ सर्वोपरी बना रहेगा और
ऐसी मन स्थिति मे परहित का
भाव ही नही उठ सकता है।

{1951}

आत्म–दर्शन की
मूलगत भावना ही यह
होनी चाहिये कि वह अपने
निजी स्वार्थों के सकुचित
घेरो को तोड दे।

{1952}

आत्मीयता–स्नेह
समूचे विश्व को
बाध लेती है।

{1953}

समाज मे जिस वर्ग
के स्वार्थ किसी तरह निहित
हो जाते हैं – वह वर्ग अपने स्वार्थों
की रक्षा के अन्धेपन मे सदैव विषमता का
प्रसार करता रहा है और सचमुच
यही वर्ग समता का कट्टर
शत्रु बन जाता है।

{1954}

समता पहले
सन्तुलन को पनपाती
है तो उसका विकसित रूप
स्वहित के त्याग मे
प्रस्फुटित होता है।

{1955}

छोटे–बडे
प्रत्येक जीवन मे
आरम्भ से ही स्वहित
की सज्ञा का उदय
हो जाता है।

{1956}

जितना
अपने ही स्वार्थों का
ख्याल है, उतना
ही विषमता को
गले लगाना है।

{1957}

अपना स्वार्थ है तो
सब है दूसरो के हित की
ओर दृष्टि तक न मुडे । ऐसी
प्रवृति गहन विषमता को जन्म देती
है और समता की जडो को
मूल से ही काटती है।

{1958}

अपना हित भी आदमी
देखें किन्तु उसी लगन से दूसरो
के हित के लिये भी वह तत्पर रहे। अपने
और दूसरो के हितों को इतना सन्तुलित बना
दे कि कही उनके बीच टकराव का मौका न
आवें। यही समता की दिशा है।

{1959}

लोकोपकारी
वही बन सकता
हे जो अपने स्वार्थों
को तिलांजली दे
देता है।

{1960}

यदि मनुष्य की
स्वार्थ वृति पर उसका
स्वेच्छिक एवं सामाजिक नियत्रण
उपयुक्त मात्रा मे स्थापित न हो तो
वह सचमुच मे भेडिया
हो सकता है।

{1961}

अगर मनुष्य को
अपने ही स्वार्थ पूरे करने
की खुली छुट हो तो कहा नही जा
सकता कि वह इस स्वार्थ के पीछे
अपने–आपको कितना अन्यायी
अत्याचारी एवं
निर्दयी न बना ले।

{1962}

स्वार्थ को व्यक्ति
एवं समाज के सुनियत्रंण
की बोतल मे रहने दे तो इस दैत्य
का आकार बहुत छोटा भी रहेगा और
खतरनाक भी नही होगा।

{1963}

स्वार्थ समस्त,
वायुमण्डल मे इस तरह
छाया हुआ है कि जैसे जो भी सांस
लेता है– स्वार्थ का असर कम–ज्यादा
उस पर पड ही जाता है।

{1964}

जब यह लगता है अपनाया
हुआ साधन साध्य तक पहुँचाने
मे अक्षम बनता जा रहा है तो तुरन्त साधन
मे यथोचित परिवर्तन कर लेने मे कोइ
संकोच नही होगा । तब
साध्य की तरफ ही सजग
दृष्टि बनी रहेगी।

{1965}

अच्छा और
भला काम किया
जाय, जिससे शुभ
फल मिले।

{1966}

समाज मे राजनीति,
अर्थनीति, परम्पराओ एव
प्रक्रियाओ का गठन इस रूप मे
किया जाय कि वह गहन
नियंत्रक भी हो तथा
प्रेरक भी हो।

{1967}

परहित के
लिये स्वहित का
बलिदान कर देना
महान् पुरुषो का
लक्षण है।

{1968}

शरीर मे
रहा हुआ सबसे
बडा शत्रु प्रमाद
होता है।

{1969}

शास्त्रीय शब्दो को याद
कर लेना एक बात है और
उसके अर्थ मे अवगाहन करते
हुये अपनी आचरण भूमि को
सम्यक् बनाना, आत्म गुणो मे अपने
आपको रमण कराना दूसरी बात है।

{1970}

जो एक बार
आत्म-नियत्रण के
महत्व को समझ जाता
है, वह फिर आत्म-विकास के
सच्चे मार्ग को भी
ढूढ लेता है।

{1971}

विषमता नये-नये
जटिल रूपो मे ढलती
हुई सामाजिक जीवन को
पग-पग पर काटती
जा रही है।

{1972}

जहाँ चौर्य्य
वृति है, वहाँ
अवश्य कायरता
मिलेगी।

{1973}

आपकी आत्मा ऐसी
वीर बने कि पैसो से, भौतिकता
से, आसक्ति छोड सवेग की स्थिति
से मोक्ष प्राप्ति के लिए तीव्र अभिलाषी
बनकर आध्यात्मिकता की ओर
अग्रसर हो जाय।

{1974}

वैज्ञानिक बाहर की
प्रयोग शाला मे भौतिक तत्त्वो
के ही प्रयोग अनुसंधान करते है।
आपको आध्यात्मिक प्रयोग शाला
मे बैठकर अभौतिक तत्त्वो के
प्रयोग अनुसंधान करने है।

{1975}

आत्मा के
मेल रहित होने
का अर्थ ही
परमात्म–स्वरूप
तक पहुंचना है।

{1976}

जितना परार्थ का
भाव दृढ बनेगा, उतने
ही अंशो मे समता के समरस
मे आत्मा आनन्दमग्न
बनती जायेगी।

{1977}

राजनीति, अर्थ, एवं
अन्य पारम्परिक सम्बन्धों
को जब सामाजिक नियन्त्रण मे
व्यवस्थित रूप से ले लेगे तो इन क्षेत्रो
मे व्यक्तिगत उद्दण्डता को
रोकी जा सकेगी।

{1978}

अत्यधिक संग्रह के
कारण अनेक प्रंसगो में
व्यक्ति को जन आक्रोश का शिकार
होना पडता है। उसकी जिन्दगी
और धन सम्पति
सदा संकट मे रहती है।

{1979}

जैसे सुख दु ख
की अनुभूतियो का अनुभव
मैं कर रहा हूँ वैसे ही सभी
संसारी आत्माये भी सुख दु·ख की
अनुभूति करती
रहती हैं।

{1980}

इन्द्रियों की आसक्ति
में रत रहने वाली, मौतिक
तत्त्वों को ही महत्वपूर्ण समझकर
चलने वाली आत्मायें कभी भी
अपने आत्मिक स्वरूप
को निखार नही पाती है।

{1981}

आदर्श
समता, कर्मण्यता
के कठोर मार्ग पर चल
कर ही प्राप्त
की जा सकती
है।

{1982}

संसारी व्यक्ति
धन सम्प्रदा को ऋण रूप,
ग्रहण रूप मानता है परन्तु
वह धन उसके लिये
त्राण रूप नही होता।

{1983}

हमारे भीतर भी
महावीरत्व छिपा हुआ
है, किन्तु उसे सद्–प्रयत्नो से
सयम निष्ठ आचरण से
उजागर करना है।

{1984}

विचार मजबूत
तो
काम मजबूत।

{1985}

परिवर्तन की प्रक्रिया मे ऐसी
समीक्षा यह जानने के लिए जरूरी
होती है कि किसी भी रूढि के विषय मे
सामान्य जन का अज्ञान कितना है तो किसी
विशिष्ट वर्ग का मायाचार कितना? इसी जानकारी
के आधार पर प्राणहीन रूढि के विरूद्ध सफल
अभियान चलाया जा सकता है और क्रियाशील
विद्रोह जगाया जा सकता है।

{1986}

परिग्रह अनर्थो
का मूल है अशान्ति
का कारण है, दु ख रूप
है, बन्धन रूप एवं पाप
का कारण है, दुर्गति
का हेतु है।

{1987}

माता का वीरत्व
भी बालक को विश्व विजयी
बना सकता है। क्योकि
माता के सस्कारो का
प्रभाव सतति पर पडता है।

{1988}

जो
आत्म–सुख
की आवाज है,
वह समता का
पाथेय है।

{1989}

आतिशबाजी का हिसक कार्य
तो किसी भी ऐसी आवश्यकता से
जुडा हुआ नही है जो अनिवार्य हो। इसके
विपरीत यह हिसक शौक तो भौंडे और पीडादायक
मनोरजन का निन्दनीय प्रतीक मात्र है। परिणामो
के साथ सोचे तो ऐसे निरर्थक मनोरजन को
अपनाना या अपनाये रखना हास्यास्पद
बुद्धि का ही परिचय देता है।

{1990}

मुनष्य की चेतना ओर जागृति सदा शिथिल और सुषुप्त नही वनी रहती हे ओर विकृतियो की अति देखकर फिर उनमे नया दोर आता है। वर्तमान समय को वारीकी से देखे तो आपको प्रतीत होगा कि समाज मे प्रचलित सभी कुरीतियो के विरूद्ध इस समय मे प्रवल प्रतिरोध जागृत है। आवश्यकता है प्रतिरोध को सही दिशा देने की अैर उसके बाद रीतियो मे शुभ भावनाओ की नई प्राण प्रतिष्ठा करने की। इस ओर समाज का रचनात्मक दृष्टिकोण वनना चाहिये।

{1991}

स्वहित-परहित मे सन्तुलन वृति का जन्म ही समता की दिशा को उजागर करता हे।

{1992}

मानव अपने आपके भीतर जो आनद की सृष्टि रही हुयी है उसी को समता पूर्वक देखने का प्रयास करने लग जाय तो उसे आनद प्राप्त हो सकता है।

{1993}

साधना करने वालों को सवसे पहले व्यवहारिक जीवन को जीने के लिये अपना ध्यान व्यवहारिक कार्यो मे केन्द्रित करना होता है।

{1994}

मन की सैकंडो वृतियां है अत. समीक्षण ध्यान साधक को मन के शुभ-अशुभ विचारो को जानने एव समझने का प्रयास करना है।

{1995}

दु.खो मे घबराये नही व सुखो मे फूले नही । ऐसी समत्व साधना ही परमात्मा का स्वरूप प्राप्त करा सकती है।

{1996}

जीवन को दिव्य एवं भव्य बनाना मानव का प्रथम कर्त्तव्य है। उच्च आदर्श के अनुरूप विचार एव आचार नितान्त आवश्यक है। मानसिक पवित्र भूमिका पर ही जीवन की दिव्य एव भव्य फसल् अकुरित, पल्लवित, पुष्पित एव फलित होती हे। आन्तरिक धरातल पर जैसी भी जीवन की अवस्था बनाना चाहे, बन सकती है, इसमे कोई संदेह नही।

{1997}

पहला सुनियत्रण तो स्वयं आत्मा का अपने उपर हो यही वास्तविक नियत्रण भी है।

{1998}

पारिवारिक-
दायित्वो के निर्वहन
मे भी कम से कम हिसा
झूठ आदि अशुभ प्रवृतियो
का सहारा ले।

{1999}

श्रद्धा भाव के
साथ किया गया
प्रभुस्मरण हमारे सम्यक्
दर्शन को शुद्ध
बनाने वाला होता है।

{2000}

मनुष्यो
की आत्मा के
लिये मोह निकृष्टतम
विष है।

{2001}

उच्च भावना के साथ
यथाशक्ति भी दिया हुआ दान महान्
पुण्य का कारण बनता है। दान देने से लाभ ही
लाभ होता है इहलोक मे भी और परलोक मे भी।
इसलिये मुक्तहस्त से दान देने की सद्वृत्ति का
विकास कीजिये और समाज के चहुँमुखी विकास मे
अपना सहयोग दीजिये।

{2002}

हे मन !
सम्यक् ज्ञान के
आलोक मे मुझे यह
भान हो गया कि तु
तो मेरा अनुचर
नौकर है।

{2003}

अर्न्तयात्रा-
ध्यान साधना के
प्रारम्भ मे ही हमे सकल्प
को सशक्त एवं सुदृढ
बनाना होता है।

{2004}

धन का
परिग्रह कभी भी
व्यक्ति को सुखी नही
बना सकता।

{2005}

मानव जीवन मे महत्तम एक दान
होता है सर्वस्व दान। अपने पास जो कुछ
है, उस सब का मोह त्याग देना ओर उसका
दान कर देना अति विशिष्ट बात होती है।
विशिष्टता का वह उच्चतम शिखर होता है जब
इस शरीर और जीवन का भी श्रेष्ठतम प्रयोजन
हेतु बलिदान दे दिया जाता है। सर्वस्व दान
की शुभ भावना अतुलनीय होती है।

{2006}

यदि ससार सागर में बार-बार डूबना उतराना नही है और पार पहुँच कर मुक्त स्थली मे विचरण करना है तो राग से विराग की ओर बढना ही होगा क्योकि राग छूटने से ही आत्म भाव जागेगा और त्याग की वृत्ति जन्म लेगी। प्रत्याख्यान से प्रारम्भ होने वाली इसी त्याग वृत्ति की उत्कृष्ट कोटि मे पहुँच कर स्व-पर का कल्याण सम्पन्न किया जा सकेगा।

{2007}

वंधन की निर्मात्री आत्मा है तो वंधन को तोडने वाली भी आत्मा है।

{2008}

बोलने के साथ विवेक का जागरण हो जाय तो वह दो टुटे हुये दिलो को जोडने वाला बनता है।

{2009}

दु.खप्रद लगने वाली घटनाऐ समता के सहारे सुख प्रद बन जाया करती है। व्यक्ति के विचारों का यह चमत्कार है।

{2010}

राग-द्वेष, मोह-माया,छल-कपट के सभी आवरण टूट जाने के बाद उस चैतन्य के वचन अन्तर को छूने वाले बन जाते है।

{2011}

मशीन के कल पुर्जो की तरह इन्द्रियो व योगों के कलपुर्जो के घिसने के साथ-साथ नया प्रोडक्शन अर्थात् आत्म विकास का माल भी तैयार करते रहे।

{2012}

दान किसी भी प्रकार का हो, तथ्य यह है कि उसके साथ हार्दिकता का सयोग अनिवार्य है। हृदय की श्रद्धा हो या करूणा, भावना हो या संवेदना-तभी उदारता भी होती है, अन्यथा कोरा दान कल्याण की बजाय कई बार किसी न किसी रूप मे कदाचार का कारण हो जाता है। वह दान न होकर दान का दम्भ मात्र रह जाता है। इसलिये सच्चे दान के लिये धन के साथ हृदय का सुन्दर संगम होना ही चाहिये।

{2013}

क्रोध मान माया लोभ ये भव भवान्तरो के मूल को सिचन करने वाले है।

{2014}

मोह, कपट
अथवा यश कीर्ति के
रंग से रंगीन होकर निकलने
वाले वचनो का प्रभाव
जैसा चाहिये
वेसा नही पडता।

{2015}

क्रोध कषाय
रूपी शत्रु का
दमनक्षमा भाव एवं
समता भाव से ही
हो सकेगा।

{2016}

परिपूर्ण समत्व
भाव का जागरण
हो जाने पर आत्मा
परिपूर्ण सामायिक
मे रहती है।

{2017}

जैसे बिखरी हुई सूर्य की
किरणो से अग्नि उत्पन्न नही होती, परन्तु
काँच को बीच में रखने से किरणें एकत्र हो जाती
है और उस काँच के नीचे रूई रखने से आग
उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह त्याग, तप से
इन्द्रियो और मन को एकत्र करने से आत्म
ज्योति प्रकट हो जाती है।

{2018}

भोजन, इन्द्रियो
की तृप्ति के लिये
नही वरन् ज्ञान दर्शन चारित्र
का सम्यक्
आराधन करने के लिये
किया जाय।

{2019}

स्वस्थ भावना के
प्रभाव मे ही विषमता चारों
ओर प्रसरित होती
हुयी
देखी जाती है।

{2020}

वचन
मानव और
पशु मे अन्तर
प्रकट करने वाले
होते है।

{2021}

साधु जीवन मे सम्पूर्ण मृषावाद
एवं एकान्तवाद का त्याग होता है
तो श्रावक का त्याग स्थूल होता है कि वह मोटा
झूठ न बोले, झूठी साक्षी न दे, झूठा लेख या
लेखा न लिखे, झूठा आरोप न लगावे,
स्त्री पुरुष का मर्म प्रकाशित
न करे, न्यास का विश्वास न खोये
तथा झूठा उपदेश न दें।

{2022}

वन्दना की क्रिया का प्रथम और प्रधान प्रयोजन यह है कि इस दुर्जेय अहकार पर अन्तिम विजय प्राप्त की जाय। विनय की आर्जवता और मार्दवता मे जब शरीर के अंग प्रत्यंग या इन्द्रियॉ और मन ही नही डूब जाते है, बल्कि आत्मा का एक एक प्रदेश मृदुल बन जाता है तब अहंकार मन की वृत्ति मे टिका हुआ रह जाय–यह सम्भव ही नही है। विनय का यह रूप वन्दना का प्राण होता है।

{2023}

मन मे यदि पवित्रता आ जाय तो आत्मा मे भी पवित्रता आ सकती है।

{2024}

काषायिक वृतियो का जब समग्र रूप से उन्मूलन हो जाता है तब चेतना की ज्ञानादि शक्तियां परिपूर्ण रूप से प्रकट हो जाती है।

{2025}

जितनी अधिक स्वार्थता बढेगी उतनी ही विषमता अधिक जटिल बनती जायेगी। — यह स्वभाविक प्रवृति है।

{2026}

क्रोध तेज धार वाली तलवार के समान है। क्रोध अस्थायी पागलपन है। क्रोधी के स्वयं का जीवन स्वयं के लिये भार स्वरूप बन जाता है।

{2027}

अन्तर से अन्तर की बात उच्चारणात्मक नही होती वरन् चिन्तानात्मक होती है। समभाव मे रमण करने वालों को उससे बढकर ससार का कोई सुख ही नजर नही आता।

{2028}

मूर्छा ही आत्मा की चेतना शक्ति को जड बनाकर उसे निर्वीर्य और निष्क्रिय बना देती है। चेतना शक्ति जितनी ज्यादा जड तत्त्वों के प्रति आकर्षित और आसक्त बनती है, उतनी ही ज्यादा उसकी जड़ग्रस्तता जटिल होती जाती है। जड़ के साथ सम्बद्ध होने पर जडग्रस्तता ही तो बढ़ेगी। यह बढती हुई जडग्रस्तता ही आत्मा को अपने स्वरूप से पतित बनाती रहती है।

{2029}

धर्म ही एक ऐसा तत्व है जो मानव एवं पशु को विभक्त करता है।

{2030}
पाच इन्द्रियो
के सुखो मे रमण
मानवीय जीवन को
अन्दर से खोखला
बना देता है।
{2030}
निरासक्त आत्म
साधना के द्वारा ही
परम स्वरूप को
प्राप्त किया जा सकता है।
{2032}
विनाशी
भोजन करके
अविनाशी आत्मा
की खोज करे।
{2033}
वर्तमान मे धर्म साधना और
आत्म विकास के सत्पुरुषार्थ का
सुफल तुरन्त वर्तमान मे पहले मिलता
है जीवन के श्रेष्ठ रूपान्तरण मे तो निश्चय ही
वैसे सत्कार्य से पुण्य कर्मो का बध होगा अथवा
पूर्वार्जित कर्मो की निर्जरा भी होगी जिसका
सुफल भविष्य मे भी मिलेगा।
{2034}
विषय भोग
क्षणिक समय के
लिये सुखदायी महसूस
हो सकते है, अन्तत
वो महादु ख देने वाले
ही बनते है।
{2035}
बाहरी सुख
सुखाभास है किन्तु
भीतर में जो सुख है
वह वास्तविक सुख है।
{2036}
प्रज्ञावान्
महानुभाव सत् कर्म
करने में प्रमाद नही
करते है।
{2037}
जब कोई व्यक्ति समझ–बूझ
के साथ अपने जीवन का उद्देश्य
निर्धारित कर लेता है तो सच्चाई के साथ वह
उस उद्देश्य को पा लेने का उत्साह भी अवश्य
दिखाता है। वह विवेकपूर्वक उन्ही साधनो को
अपनाता है जिनकी सहायता से उसे लगे कि
उसके उद्देश्य की सम्यक् पूर्ति हो सकेगी।

{2038}

त्याग यह भी होता है कि वर्तमान मे अपने पास जो कुछ है, उसे या उस मे से छोडा जाय तो त्याग भविष्य के लिये भी होता है कि अमुक पदार्थ अमुक सीमा तक ही रखा जाय तथा बाकी सब छोड दिया जाय। यही प्रत्याख्यान होता है कि अमुक मर्यादा रख कर सर्वत्याग लिया जाय अथवा ऐसा व्रत लिया जाय जिसके आचरण से त्याग की वृत्ति एवं प्रवृत्ति को बल मिलता हो।

{2039}

उत्थान दिशा का समीकरण मनुष्य रूप से मानव जीवन मे ही बनता है।

{2040}

सम्पूर्ण मानव जाति की दयनीय स्थिति मिटाने के लिये एक ही मार्ग है और वह है समता का आदर्श। इस आदर्श को उपस्थित करने के लिये व्यर्थ के भार स्वरूप रीति– रिवाजो को छोडना परिवार, समाज, राष्ट्र के समुचित विकास के लिये आवश्यक है।

{2041}

सामायिक व्रत वह अभ्यास है जिसके माध्यम से मन, वचन एवं काया के समस्त योग–व्यापार का निरोध किया जाता है तथा अन्त करण की भावनाओ को समभाव की दिशा मे सक्रिय बनाया जाता है।

{2042}

वास्तव मे एक समभावी सदा सुख का ही अनुभव करता रहता है और उसका समभाव जिस गति से अभिवृद्ध होता जाता है, उसी गति से उसकी सुख वृद्धि भी सम्पन्न बनती जाती है क्योंकि वह सुख आत्मा –नन्द मे रूपान्तरित होकर शाश्वत रूप धारण करता जाता है।

{2043}

वास्तविक आचरण से वास्तविक जीवन हस्तगत होता है। यानि जीवन का सच्चा मर्म प्राप्त होता है। सच्चे आचरण के अभाव मे जीवन की जानकारी केवल कला के तुल्य कही जा सकती है।

{2044}

आत्मा जब मिथ्यात्व के अंधकार से बाहर निकल कर सम्यक्त्व के प्रकाश में पग धरती है तो उसे स्व–स्वरूप का ज्ञान और परिचय होता है तथा यह भी विदित होता है कि सांसारिकता के बीज रूप राग और द्वेष से दूर होकर जब तक विराग की दिशा में कदम आगे नही बढाये जायेगे तब तक इस आत्मा का चरम कल्याण सभव नही हो सकेगा।

{2045}

प्रत्येक व्यक्ति का मानस ऐसा बने कि–मैं किसी को दु ख न दूं–मैं सबको सुख दू ।

{2046}

क्षमा से बढकर
अपेक्षा से कोई तप नही है।
आप अन्य कुछ भी नही कर सके
तो कम-से-कम क्षमा- वृत्ति का
अधिकाधिक अपने जीवन मे
विकास करने
का लक्ष्य बनावे।

{2047}

भगवान्
महावीर ने पदार्थो
को नही, उनके प्रति
आत्मभावों मे व्याप्त होने वाली
मोह-मूर्छा को
परिग्रह कहा है।

{2048}

जिसके जीवन
मे राग-द्वेष की वृत्तियां
उभर रही है, तो
उसका जीवन पशु से
भी बदतर है।

{2049}

आप साधना का परिपूर्ण स्वरूप
जो जीवन के लिए आवश्यक है,
वह नही अपना सकते तो कम से कम गृहस्थ
जीवन मे भी सही ढग से जीने के लिय मन
मस्तिष्क को सबसे पहले तीव्र रोष
अभिमान छल-छद्म, लोभ
आदि से हटाने का प्रयास करें।

{2050}

क्षमा अमृत
की धारा है जो क्रोध
के विष को समाप्त कर देती
है, अन्त करण को शाति
से आप्लावित
कर देती है।

{2051}

अध्यात्म जीवन
मे अपना चरण क्षेप
करो, यह मानकर चलो
कि हर आत्मा मे अनन्त
ज्ञान शक्ति है।

{2052}

साधना मे
जीवन समर्पित बने, तब
अशाति की स्थिति उसके
जीवन मे कभी भी
प्रवेश नही कर
सकेगी।

{2053}

मनोयोग से किये जाने
वाला कार्य अच्छा होगा और
साथ ही मन की साधना भी सधेगी और एक
दिन वह इस जीवन और पर जीवन दोनो
को पवित्र बनाने मे
भी सफल हो जायेगी।

{2054}

महान् है वह तो महान् हो ही चुका है लेकिन जो लघु है, उसे महान् बनना है तो ऐसी कौन सी प्रत्यक्ष विधि हो सकती है जिससे वह महानता के निकट पहुँच जाय? ऐसी कोइ विधि हो तो उस विधि की ही महिमा विशेष रूप से होगी जो कि उस लघु को अति संक्षिप्त मार्ग से महानता के समीप पहुँचा दे। ऐसी महिमामयी वह विधि है–नमस्कार की विधि।

{2055}

शिशु जीवन को सोम्य बनाने के लिये माता–पिता के सुन्दर कर्तव्य ही बच्चों में संस्कार का रूप लेते है।

{2056}

दुनिया का सर्वश्रेष्ठ मत्र नवकार है। पर यह ध्यान रखना है कि अन्दर में यदि विषय–कषाय की आग जलती रहे, और ऊपर से मंत्र का जाप करते रहे, तो उससे कभी शाति नही मिल सकेगी।

{2057}

बालक के जीवन पर एक सुशिक्षिता माता जो प्रभाव डाल सकती है, वहां सो मास्टरो का प्रयास भी उसमे असफल रहेगा। माता का वीरत्व बालक को विश्व–विजयी बना सकता है।

{2058}

किसी भी विषय का परिर्वतन करने मे मस्तिष्क का अर्थात् विचारो का परिवर्तन होना नितान्त आवश्यक है। विचार बदलने पर उच्चार (वाणी) सहज ही बदल जाता है। इनमे तीव्रता आने से आचार मे परिवर्तन लाने मे कठिनाई नही आती।

{2059}

मस्तिष्क का परिवर्तन केवल आर्डर से नही होता, वह होता है हिताहित प्राप्ति–परिहार के सही विज्ञान से। यह विज्ञान केवल भौतिक नही, अपितु भौतिकता पर नियंत्रण की क्षमता रखने वाला आध्यात्मिक विज्ञान है।

{2060}

ज्यो–ज्यो विकारो से मुक्ति मिलती जायगी अर्थात् विकार जीवन मे से निकलते जाएँगे, त्यो–त्यो गुणधारण की प्रक्रिया भी साथ–साथ चलती जायगी। किसी भी स्थान मे रिक्तता नही रहती है। अन्धकार हटता है तो प्रकाश आता ही है। विकार बाहर निकलेगे तो गुण भीतर मे प्रवेश करेगे। तब गुणधारण की प्रक्रिया भी सतत रूप से सक्रिय हो जायगी।

{2061}

जीवन दीप की ज्योति प्रज्वलित रखने के लिये संस्कार स्नेह (तेल) का कार्य करता है।

{2062}

फल की लालसा गिराव का बीज है। साधना की क्रिया निष्फल नही जाती। धैर्य –पूर्वक सदा बढते रहना ही साधक का परम कर्तव्य होना चाहिए।

{2063}

तपश्चर्या शरीर से ममत्व हटाने पर ही हो सकती है। जब तक शरीर पर मूर्छा भाव है, तब तक तपश्चर्या मे अपना कदम आगे नही बढा सकोगे।

{2064}

सस्कार बीज है जीवन वृक्ष को पल्लवित करने के लिये।

{2065}

मस्तिष्क की अनेक गुत्थियॉ हैं। उनको सुलझाना भी अत्यावश्यक है। एक भी गुत्थि को सुलझाना अति कठिन–सा लगता है। लेकिन सुलझाने की चाबी मिल जाती है, तो फिर अधिक कठिनता नहीं लगती है और वह चाबी भी स्वानुभाव के द्वारा प्राप्त होती है तो अन्य सभी तरह की समस्याएँ यथाशीघ्र सुलझ जाती है।

{2066}

जीवन बाह्य व्यवहारो मे उलझ गया है। सर्वत्र दृश्य पदार्थों का आकर्षण जीवनी शक्ति को विभक्त कर रहा है। शक्ति की विराटता इन दृश्य पदार्थों मे अवरूद्ध हो रही है।

{2067}

सम्यक्त्व विहीन तपस्या का कुछ भी महत्व नही है। और समभाव की सर्जना के बिना सम्यक्त्व की स्थिति जीवन मे नही रह पाती है।

{2068}

विराट एव व्यापक भावना विवेक पूर्वक बनाने से साधना का क्षेत्र सुगम बन जाता है।

{2069}

शारीरिक विज्ञान एव विचारो का परस्पर प्रगाढ सबध है। इस सबंध को सही पद्धति से विदित किया जाय तथा दृढ निष्ठा के साथ तदनुरूप आचरण की जाय तो इच्छित शारीरिक, आदि अनेक उपलब्धियॉ प्राप्त की जा सकती है।

{2070}

समता का आदर्श ही वह
सजीवनी ओषधि हे जो आज के
पतनशील, परिवार, समाज ओर राष्ट्र मे नव जीवन
फूँक सकती है तथा प्रगतिशील आधारो पर इन
इकाइयो का नव निर्माण किया जा सकता हे।
व्यक्ति-व्यक्ति के अन्त करण मे समता का आदर्श
जागना चाहिए, तभी उसकी सामूहिक
विकासशीलता सभी सार्वजनिक क्षेत्रो
मे मुखरित हो सकेगी।

{2071}

क्रोध के आवेश
मे कभी-कभी मनुष्य
के ज्ञान तन्तु भी फट जाते
हे,जिससे वह लकवा जैसी
भयंकर मरणांतक
विमारियो का शिकार
हो जाता हे।

{2072}

साधना से हतोत्साह
होने पर ही विराम की भावना
बनती है। साधना मे थकान नही आती
है, क्योकि साधनों की
विधिया परिवर्तित होती रहती है।
इससे साधना की शक्ति तरोताजा
एव बलवती बनी रहती है।

{2073}

विचारो के उतार-चढाव
के प्रसग पर निर्धारित लक्ष्य
बिन्दु पर सुस्थिर रहना ही विशेष
महत्व की वात हे। उसी से
दृढता की स्थिति स्थाईत्व
को प्राप्त होती हे।

{2074}

प्रत्येक व्यक्ति स्वय की
योग्यता एवं तदनुरूप शक्ति का
गोपन न करे। यथायोग्य, यथास्थान
अपने आपको नियुक्त करने मे
किंचित् भी प्रमाद आलस्य न करे।
अपना कार्य सबके लिये, सबका
कार्य अपने लिये समझे।

{2075}

अर्थानुसंधान के साथ
जीवन निर्माण संबंधि सक्षिप्त
सूत्र की निष्पत्ति सदा-सर्वदा, सर्वज्ञ
सर्वदर्शीय, समपरिपूर्ण केन्द्रमयोऽहम्,
सर्वशक्ति सन्नियंत्रण केन्द्रमयोऽहम्,
सुरक्षा केन्द्रमयोऽहम्। एतद् सूत्रत्रयम्
सुविधि पूर्वक साधनियम्।

{2076}

धनुष बाण लिये निशाना साधने
को तत्पर योद्धाओ से ऊपर घूमती हुई
धातु की चिडिया के दिखाई देने के बारे मे पूछा गया
तो अलग अलग लोगो ने अलग-अलग सार -हीन से
उत्तर दिये किन्तु अर्जुन ने इतना ही कहा कि उसे उस
चिडिया की सिर्फ दाहिनी ऑख ही दिखाई दे रही है,
ओर कुछ नही और उसका लक्ष्य -वेध सफल रहा।
किसी भी सगठन की सफलता उसके लक्ष्य के प्रति
सबकी एकाग्रता एव एकनिष्ठा
पर निर्भर करती है।

{2077}

गलती होने
के बाद गलती को
गलती मानकर क्षमा माग
लेना श्रेष्ठ मानव
का काम है।

{2078}
क्रोध के आवेग
से मन की कोमलता
नष्ट हो जाती है और वह कठोर
बन जाता है। पर यदि मन का
वह आवेग सवेग मे बदल जाय तो
वही आत्मा अपना ससार
परिमित कर लेती है।
{2079}
अपने स्वरूप को
जानने के लिये हमेशा
स्वाध्याय के साथ-साथ
स्व का अध्ययन भी
करना चाहिए।
{2080}
सामायिक
मेरी जीवन
यात्रा का प्रथम
चरण है।
{2081}
विद्यमान क्षण को महत्त्व
देनाजीवन को सार्थक बनाना
है। प्रत्येक समय मे निर्माणात्मक
पवित्र विचारो के साथ भावो की प्रबलता ही
उज्जवल भविष्य का निर्माण करती है।
अशुद्ध विचारो का प्रवेश मन मे
नही होने देना ही बुद्धिमता
पूर्ण एवं श्रेयस्कर है।
{2082}
मोह का पॉइजन
आपकी आत्मा-शक्तियो
पर छाया हुआ है, अत जो भी
क्रिया करे, वह सभी
आत्म-स्वरूप की अवाप्ति
के लिये ही हो।
{2083}
शाश्वत सुख
ओर शांति पाने के लिए
आवश्यकता है-वास्तविक
धर्म को जीवन मे सयोजित कर
आत्यंतिक और एकान्त
मगल करने की ।
{2084}
जब तक सयम
के महत्व को नही
समझोगें, तब तक अपने
जीवन को सफल
नही बना सकोगे।
{2085}
किसी भी स्थान या देश
मे अधिक समय रहना योग्य
नही रहता। अधिक रहने से अवज्ञा होना
संभावित है। विरल रूप से आते-जाते रहने से
प्रेम-भाव की अभिवृद्धि बनती
है। यही श्रेयस्कर रहता है। इसी
मे इसान की प्रतिष्ठा हे।

{2086}

सामायिक का साधक चाहे गृहस्थ जीवन बिता रहा हो अथवा साधु जीवन मे चल रहा हो—यह सामायिक ऐसी आधारभूत साधना सिद्ध होती है जो, एक साधे, सब साधे, की उक्ति को चरितार्थ करती है। एक सामायिक की भी भावपूर्ण साधना सफल बन जाय तो उससे तीर्थंकर नाम गौत्र तक का बध हो सकता है। यह सामायिक अपनी साधना के स्तर पर श्रावक को श्रमण के तुल्य बनाती है तो श्रमण को अरिहंत और सिद्ध पद तक पहुँचाती है।

{2087}

सम्यक् दर्शन जीवन की एक ऐसी पवित्र भूमिका है कि जिस पर आसीन होकर उर्द्धगामी बनने का स्वर्णीम अवसर समूह उपलब्ध हो सकता है।

{2088}

जीवन को साफ और स्वच्छ बनाने के लिये, सम्यक् दर्शन के लक्षणो को समझपूर्वक जीवन मे उतारने के लिये हृदय पट को खोलकर वितराग वाणी सुनी जाय, अवश्य ही जीवन में परिवर्तन आयेगा।

{2089}

जो—जो समय व्यतीत हो चुका है वह पुन आने वाला नहीं है। जो व्यक्ति धर्म कर लेता है वह अपनी व्यतीत हो रही दिन और रात्रियों को सफल बना लेता है, जो व्यक्ति अधर्म करता है वह व्यक्ति उन्हे खो देता है।

{2090}

जब तक बुढापा न आवे। शरीर मे किसी तरह की व्याधि न आवे। इन्द्रियॉ क्षीण न हो, तब तक धर्म का आचरण कर लो। अगर शरीर मे रोग भी आ गया तो फिर साधना सही ढंग से नही हो सकेगी।

{2091}

दूसरो के गुणो को बतलाने से स्वयं के गुणों का विकास होता है। दूसरो के अवगुणों को प्रकट किया जायेगा तो स्वयं मे अवगुणो की वृद्धि होगी।

{2092}

जब यश एवं कीर्ति का आवरण इंसान के मन—मस्तिष्क पर छा जाता है, तब उसको अपने कर्तव्य का एव लक्ष्य का भान नही रहता। उसको अक्षरी ज्ञान में प्रवीण होने पर भी ज्ञानियों की श्रेणी में नही गिना जा सकता। वह समाज एव मानवता के नाम पर किये जाने वाले कार्य मे भी अपनी उसी वासना का पोषण करेगा।

{2093}

गुणी पुरुषों के विद्यमान गुणों का कथन करने से सद्गुणो की अभिवृद्धि होती है।

{2094}

कामना हर
सामान्य मनुष्य करता है, पर
उसकी सभी भावना पूर्ण नही
होती, किन्तु अध्यात्म पथ
पथिक की हर भावना
पूर्ण हो जाती है।

{2095}

आयुष्य एक ऐसा
तत्व है जो निरन्तर
अर्थात् क्षण-क्षण में कुछ
भी विलम्ब किये बिना
समाप्त हो रहा है।

{2096}

प्रवाह को
रोका नही जा
सकता मोडा जा
सकता है।

{2097}

राग-द्वेष रूप परिणिति का
शमन करने का प्रयत्न हर समय
रहना नितान्त आवश्यक है। जागतिक वस्तुएँ
यथास्थान, यथास्वरूप मे विद्यमान रहती है। उनका
वस्तु स्वरूप की दृष्टि से अवलोकन करना यथास्थान,
यथायोग्य समझना ही श्रेयस्कर है।
उन पर राग अथवा द्वेष
का उद्वेग लाना योग्य नही।

{2098}

जो वीतराग
उपदेश को जीवन मे
ले लेता है और उस ज्ञान के
अनुसार अपने जीवन को बना
लेता है, उसके जीवन मे फिर
कोई कमी नही
रह पाती है।

{2099}

शिष्य की गुरु
के प्रति इतनी समर्पणा होनी
चाहिये, कि वह गुरु के
ऑखो के सकेत मात्र
से समझ जाय।

{2100}

जिस कार्य
का जो समय हो,
वही कार्य उस समय
करना योग्य है।

{2101}

क्रोध-मान-माया और लोभ
का जब तक सम्यक् निग्रह
का प्रयत्न नही किया, तब तक सारी
क्रियाएँ संसार वर्धक ही होगी। पर
सवेग की प्रवृत्ति जीवन मे आ जाये तो
अनन्तानुवन्धि आदि अतिशय
संसारवर्धक कषाय का निग्रह सरलता से
किया जा सकता है।

{2102}

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र या अवयव मे हर समय उत्साह एव उमग की लहर होनी चाहिए। जीवन एक वहती पवित्र गगा के समान है। उसमे सभी वस्तुए आकर मिलती है। गगा सभी वस्तुओ को स्वच्छ एव शीतल वना देती हे। वैसे ही जीवन-गगा मे जो भी वस्तुए प्रविष्ट हो अथवा सयुक्त हो, वे सभी यथायोग शात एव पवित्र वन जाये, अर्थात् उन वस्तुओ के निमित राग-द्वेष न हो, यही उनके पवित्रपन की अवस्था हे।

{2103}

समय को पहिचानने वाला ही पंडित होता हे। जो अवसर को नही जानता वह सही माने मे पडित नही कहला सकता।

{2104}

मनुष्य जन्म, आर्य भूमि, संत-समागम और वीतराग-वाणी का श्रवण जिसे उपलब्ध होता है उसका मनुष्य जीवन अन्त पुण्यवानी के उदय का शुभ फल एव अर्न्तराय कर्म का क्षयोपशम समझना चाहिये।

{2105}

जो व्यक्ति राग-द्वेष को मन्द करता हुआ नेतिकता के साथ निर्लोभ-वृत्ति से चलता है, उसके पास भोतिक सम्पत्ति चाहे कितनी भी कम क्यो न हो, वह चैन से रह सकता है।

{2106}

सुख का मूल स्त्रोत अध्यात्मिकता है। जो भी व्यक्ति आध्यात्मिकता मे प्रवेश कर परिपूर्णत. दृष्टि को समीक्षण मय बनाता हुआ आत्मालक्ष्यी बनता है, वह निश्चय ही परम सुख को प्राप्त करता है।

{2107}

यदि रास्ते मे कोई कॉच का टुकडा पडा है तो जौहरी उसे उठाता नही पर असुचि मे पडे अमूल्य हीरे के टुकडे उठाने मे वह कतराता भी नही, इसी प्रकार आप भी अपनी दृष्टि को गुणग्राही बनाये।

{2108}

प्रात काल एक प्रसंग से संतो को शिक्षा देते हुए कहना पडा कि संयमविषयक प्रक्रिया यत्नपूर्वक परिमार्जन, परिस्थापन, प्रतिलेखन, आदि सयमी जीवन मे दत्तचित्त संत मुझे प्रिय लगते है। भले ही वह मेरी सेवा न करे। मेरी सच्ची सेवा सयमी जीवन पूर्वक सच्ची आत्मा साधना मे समझता हूँ।

{2109}

जब सयम जीवन के अन्तरग मे आता है तो उसके मन, वचन और काया मे भी संयम आ जाता है।

{2110}

वन्दना नही करने
वाले पर क्रोधित न हो
और वन्दन करने वाले पर अभिमान
न करे। इस प्रकार का वर्तन करने
वाला साधक ही श्रमण धर्म
का शुद्ध
पालन कर सकता है।

{2111}

आत्माओं को,
शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने
के लिये मन को समझना एवं
उसे आत्मा के तत्र मे करना
आवश्यक है।

{2112}

दूसरो को
लाभ देने के पहले स्वय
के जीवन को सुरक्षित
रखना
आवश्यक है।

{2113}

जब तक मनुष्य की दृष्टि
भौतिक तत्वो को देखने मे ही रहेगी,
वहा तक जीवन का रूपान्तरण नही हो सकता।
जिसका आन्तरिक जीवन उस मानसिक क्रिया
के साथ प्रतिक्रिया को समझ ले तो
उसका रूपान्तरण
हुए बिना नही रहता।

{2114}

यदि एक मुहूर्त्त
भी समीक्षण ध्यान साधना
मे सही रूप मे लगाया गया
तो वह आपके सारे जीवन को
सुख की सुरभि से
सुरभित कर देगा।

{2115}

जब तब माता-पिता
के जीवन मे परिष्कार
नही आयेगा, तब तक
पारिवारिक जीवन सात्विक
नही बन सकता।

{2116}

जो अनुशासन
पालना करता है
वही अनुशासन दे
सकता हे।

{2117}

कोई भी किसी भी रूप मे
अपने आप को बनाना चाहे, पर वह
यदि अपने जीवन के बहुमूल्य क्षण उसी मे
लगता है तो वह वेसा ही बन जाता है। वैसी
ही जो व्यक्ति आध्यात्मिक साधना मे अपने
जीवन के बहुमूल्य क्षणो को लगा देता हे
तो एक दिन वह उसमे सफलता
प्राप्त कर ही लेता है।

{2118}

यदि तुम्हे जन्म लेने की इच्छा न हो, सदा–सदा के लिये आनन्दमय स्थिति को प्राप्त करना हो तो अन्य को जन्म मत दो, जो दूसरो को जन्म देता है, वह स्वयं जन्म ग्रहण करता है, तथा जो अन्यों को मारता है (आसक्ति पूर्व) कसाय पूर्वक तो वह अत्यधिक जन्म–मरण की परम्परा को बढ़ाता है।

{2119}

सच्ची साधना में प्रवेश करने के लिये सबसे पहले मस्तिष्क से अभिमान, क्रोध आदि वैभाविक वृत्तियो को निकालना आवश्य है।

{2120}

ध्यान साधना चारित्र का प्राण है, इसमे जो दत्तचित्त हो जाता है, उसके भीतर के नयन खुल जाते हैं, पर उसकी साधना करने वाला चाहे साधु हो या श्रावक, सभी को बहुत कम समय मिलता है।

{2121}

जब तक जीवन में तृष्णा है, उसके रहते सतोष आ नही सकता। मियान में अन्य वस्तु है तो तलवार नही समा सकती, और तलवार है तो अन्य वस्तु नही समा सकती।

{2122}

परिपूर्ण अहिसक बन कर आत्मा को जागृत बनावे तथा प्राणी मात्र को अपना मित्र बनाकर चलेगें तभी हमारे जीवन मे परमात्म दशा की परम ज्योति जल सकेगी।

{2123}

जो आत्मा सच्ची जिज्ञासा भावना से जिनवाणी को सुनती है, वह निश्चिय ही उसे जीवन मे उतारने मे भी समर्थ हो जाती है। ऐसी आत्मा का रूप परमात्म रूप में अभिव्यक्त हो जाता है।

{2124}

साधना का अर्थ मन, वचन, काया को साधना और आत्मा को पवित्र बनाना है। इन तीनो को साधने पर ही आत्मा पवित्र बनती है और इन तीनों को साधना का जो सेन्टर है, वह मस्तिष्क है पर उसमे पहले से जो कचरा भरा है, उसे अलग कर दें, अन्यथा नई वस्तु वहाँ नही बैठ सकेगी।

{2125}

मानव शरीर अथवा अन्य शरीरों के संचालन की जो यह चेतना है–उसे ही तो आत्मा कहा गया है।

{2126}

जब तक व्यक्ति
के मस्तिष्क में वैभाविक विषय एव
मोह ममत्व का रंग भरा रहेगा,
तक तक शांति की सच्ची
जिज्ञासा भी उत्पन्न
नही हो सकेगी।

{2127}

स्वयं के लिये बिना
भेद-भाव के सब कुछ करना
और अन्यो के लिये यथा स्थान वैसा न
करके भेदभाव लाना विषभाव
है, राग-द्वेष आदि का स्वरूप है।
अहिंसा नही बल्कि हिंसा
का प्रच्छन्न रूप है।

{2128}

"मै" का
साक्षात्कार ही
सत्य का साक्षात्कार है।
ईश्वर का साक्षात्कार है।

{2129}

जीवन के किसी भी क्षेत्र मे
सफलता प्राप्त करने के लिये समय
का मूल्यांकन करना आवश्यक है। जिस
प्रकार बूद-बूंद करके घट भर जाता है वैसे ही
एक-एक समय का मूल्यांकन करने वाला
एक दिन महान् कार्यो को सिद्ध करने
मे सफल हो जाता है।

{2130}

आज के लोगो
के हाथ मे झडा नही है केवल
डंडा ही रह गया है, वह डडे को
ही लेकर चल रहे हे।
वास्तविक आदर्श
को तो भूलते चले
जा रहे हैं।

{2131}

सच्चे आनन्द की
वास्तविकता को जॉच-
परखने और सच्चे आनन्द का
रहस्य जानने की मनोवृत्ति बहुत
कम लोगो
मे पाई जाती है।

{2132}

"मै" की
अनुभूति की दिशा
मे आगे बढने के लिये
पहले आत्म-तत्त्व को
जानना अनिवार्य है।

{2133}

जो व्यक्ति सशय रखता
है, उसका समाधान नही करता
है तो नीतिकार भी कहते है कि उस आत्मा का
कल्याण नही होता। जो भी आत्मा कर्तव्यनिष्ठ
बनती हुई, अपनी भ्रान्तियो को हटाकर,
विचारो को परिष्कृत करती हुई आगे बढेगी
तो उसका कल्याण होगा।

{2134}

अन्तगड—दशाग सूत्र, कल्पसूत्र आदि का वाचन पर्यूषण पर्व के आठ दिनो मे किया जाता है। जिसमे, उन महान् आत्माओ ने अपनी अन्तिम अवस्था मे किसी प्रकार समभाव की साधना करते हुए अपना जीवन सार्थक बनाया तथा पडित मरण को प्राप्त कर कर्मों का अत करते हुए अक्षय—अव्यावाध सुखो के स्वामी बने। यह जान कर सत् पुरुषार्थ शील बन सके।

{2135}

आत्मा के लिये शरीर धारण करना वस्त्र परिवर्तन के समान माना गया है।

{2136}

जिस प्रकार चिन्तन करने के लिये व्यक्ति सोचता है कि बाहरी कोलाहल का शांत होना आवश्यक है, वैसे ही आत्मशांति पाने के लिये अन्तरग में राग—द्वेष का कोलाहल शांत होना आवश्यक है।

{2137}

जीवन मे योग की साधना सही तरीके से की जाय तो जीवन में सम्यक्दृष्टि भाव की साधना भी कर सकता है, जो गहरे ममत्व मे पड जाता है, वह सम्यक्दृष्टि भाव से गिर जाता है।

{2138}

जब शरीर मे रोग बढ जाते है तो स्वय के भीतर मे जो अन्तरयामी है उसका भी मनुष्य शांति से चिंतन नही कर पाता। वह यदि एक रोज का उपवास कर लेता है तो सारी बीमारी नष्ट हो जाती है।

{2139}

एकान्त तनाव सम्पूर्ण शक्ति को एक ही साथ समाप्त कर देता है। अत पुन उठने का अवकाश उस जीवन मे नही रहता। सर्वथा तनाव—शून्य अवस्था भी जीवन—निर्माण मे असमर्थ रहती है।

{2140}

जो मकान बाहर से स्वच्छ एव चाक् चाक्य दिखने वाला हो पर अन्दर से भयकर दुर्गन्ध से भरा हो तो ऐसे मकान को कोई भी सभ्य व्यक्ति पसंद नही करेगा। इसी प्रकार केवल बाहरी कागजी स्वतत्रता तो आ जाय पर भीतरी स्वतंत्रता न आवे तो वह वास्तविक स्वतंत्रता नही होगी।

{2141}

आत्मा यह अमर तत्त्व शरीर के रूप मे बार—बार मरता है और बार—बार जन्म लेता है।

{2142}

मानव-जीवन स्वय या
माता-पिताओ के विचारो का
प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। जिस
भी विषय के विचार दृढ श्रद्धा के साथ बनते
है, उनका प्रभाव शरीर पर अवश्य पडता है
तथा उनके अनुरूप संरचना से भी चिरकाल मे
उन्ही विचारो का प्रतिबिम्ब फलित होता है।

{2143}

आनन्द की
आकाक्षा से ही जब
मनुष्य के मन मे उल्लास छा
जाता है तो कल्पना करे कि
आनन्द का अनुभव कितना
उल्लासकारी बन कर उसे
आत्मविभोर
बना देगा।

{2144}

आज प्रात काल सेठिया कोटडी
की ऊपरी छत पर ७ ३० से ८ ३० के बीच
घूमते समय वस्तु-सत्य की सच्ची अनुभूति की
जागृति हुई। भूत, भविष्य के मध्य वर्तमान दिन का वर्तमान
चिन्तनक्षण अति ही महत्वपूर्ण है। उसी की सावधानी ध्रौव्य
पर्याय के साथ अत्यधिक उज्ज्वल पवित्रतम कार्य मे दत्ता[illegible]न
होना ही श्रेष्ठ सार्थक समय है। उसी मे सर्वज्ञता के स्वरूप
की अभिव्यक्ति एक अवसर है।

{2145}

आत्म-दर्शन
मनुष्य को ज्ञान, दर्शन
एव चरित्र की त्रिधारा
मे अवगाहन कराते हुए
आनन्द पथ पर अग्रसर
बनायेगा।

{2146}

प्रथम सवेदना से सम्बन्धित
परिपक्व ज्ञान द्वारा जो कुछ भी
धारणा, स्मृति आदि के रूप मे ज्ञान
मात्रा की वृद्धि होती है, उससे अनुभव ज्ञान के
रूप मे मूल एव स्थाई भावो का प्रसग अनेकानेक
रूपो मे उभरने लगता है। मनोवेज्ञानिक भाषा मे
ज्ञात मस्तिष्क - पूर्वक अज्ञात मस्तिष्क-सम्बन्धि
सम्पूर्ण विषय आ जाता है।

{2147}

समग्र शक्तियों का सम्पूर्णरूपेण
प्रार्दुभाव, प्रकटीकरण, विकास, समवर्धन आदि
हुआ होता हे ओर होगा। वह सम्पूर्णरूपेण मेरे मे हो
रहा है एव अवश्य ही होकर रहेगा। समस्त जीवन श्रेष्ठ
समता को प्राप्त होगा। इसमे किचिदपि सदेह को अवकाश
नही हे। इस प्रकार का चितन, मनन, नीदिध्यासन, प्रतिदिन,
प्रतिघडी, प्रतिमिनिट, प्रतिसेकण्ड, प्रतिसमय निरन्तर वना रहने से
जीवन की दिव्यता, भव्यता के
यथा शीघ्र पल्लवित-पुष्पित-फलित होने मे विलम्व
नही हो सकेगा। बशर्ते इस प्रकार की विधि
मे किचिदिप विस्खलना न हो।

मानव अपने से भिन्न को अपना मानने
मे सकोच करता है। और तो दूर, स्वयं के कटुम्ब,
परिजनो को भी कभी पर समझ बैठता है। यहां तक की
शत्रु तक मान लेता है । इसका कारण स्पष्ट है कि उस मानव ने अपने
मन मे एक बात जमा ली होती है कि जो मेरे विचारो व व्यवहारो से
प्रतिकूल है, वह मेरा नही एवं जो मेरे विचारो एव व्यवहारो से अनुकूल है,
वह मेरा है। यही कसौटी या माप-दण्ड बना लेता है। यह परिपूर्ण एवं सही
ज्ञान के अभाव मे बनता है। पर सम्यक् परिपूर्ण ज्ञानी सर्व मानव को ही
नही, अपितु समग्र प्राणी वर्ग को आत्मीय भावना से जानता एवं देखने का
बाह्य साधन समान होने पर ही आन्तरिक
भावो मे समत्व का नेत्र होने से बाह्य साधना भी
समत्व साधना वाले बन जाते है।

{2148}

{2149}

विज्ञानपूर्वक दृढ सकल्पो का बहुत बडा महत्व है। इनकी तुलना मे अन्य कोई तत्त्व आ नही सकता। जीवन की यदि कोई बहुत बडी निधि है, तो वह विज्ञानमय विचार का अत्यन्त दृढतम सकल्प है। इसी के सहारे जीवन जिया जाता है, निर्वाह किया जाता है तथा परिवर्तन, परिवर्धन, सक्रमण, सवर्धन, हास, कमजोरी, निर्बलता, वृद्धत्व, मृत्यु आदि अवस्थाए बनती बिगडती रहती है।

{2150}

शाश्वत आनन्द की इच्छा रखते हुये भी अधिकतर लोग क्षणिक आनन्द के प्रलोभन मे पडकर दु ख की गलियो मे भटक जाते है।

{2151}

जीवन की विशेषता शक्तिसचय मे है। शक्ति के दो रूप है बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य शक्ति भौतिक सत्ता और शक्ति के रूप मे है। आभ्यन्तर शक्ति आध्यात्मिक सत्ता और शक्ति के रूप मे है। बाह्य शक्ति के सचय मे आभ्यन्तर शक्ति बिखरती है। यह कार्य अनादिकाल से चल रहा है। इससे अनेक जीवन बने और बिगडे। ऐसी प्रवृत्ति मे कोई विशेषता जेसी बात नही है। यह तो प्राय सभी प्राणी न्यूनाधिक मात्रा मे करते रहते है।

{2152}

जड निष्क्रिय होता है किन्तु चैतन्य जब उसमे मिल जाता हे तो वह क्रियाशील हो जाता हे।

{2153}

साधना के क्षणो मे जीवन-निर्माण विषयक तीन विशिष्ट सूत्र निष्पन्न हुए -

(१) सर्वदा, सर्वत्र, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सम्परिपूर्ण केन्द्रमयोऽहम्।

(२) सर्वदा, सर्वत्र, सर्वशक्ति सन्नियत्रण केन्द्रमयोऽहम्।

(३) सर्वदा, सर्वत्र, सुरक्षा केन्द्रमयोऽहम्।

{2154}

विश्व मे सभी जीवो को रहने
का अधिकार हे । यह विश्व ही उनका
घर है। ससार कि जितनी भी जीवनोपयोगी
वस्तुएँ हे, वे यथास्थान, यथायोग्य सभी की भागीदारी
की है। कम हॉ, तो समवितरण के साथ व्यवस्था योग्य हे। अधिक हों
तो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र उसका
दुरूपयोग न करे, अपितु सदुपयोग से प्राणी-वर्ग को
शाति पहुँचावे। श्रम शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक तीनो प्रकार के
आवश्यक है। जो जिस श्रम की क्षमता वाला हो,उसको उसी श्रम के
विषय मे विशेष विवेक रखने
की आवश्यकता है। श्रम एवं योग्यतानुसार
उसके लिए सोचना उचित ठहरता हे।

मानव भी इस विराट विश्व का
दिव्य पुष्प है। इसको भी अपने-आपमे
पवित्र गुणो की सुगन्धि निरन्तर भरते रहना चाहिए।
किसी भी समय कैसी भी अवस्था क्यो न हो, प्रतिकूल
से प्रतिकूल प्रसग पर भी सद्विचारों को अपने से एक समय के लिए
भी विलग न होने दे। प्रतिकूल विचारो को समभाव के धरातल पर
बिखेर कर जो जिस रूप मे ज्ञात हो, उसको वस्तुस्वरूप की दृष्टि से
उसी रूप मे अवलोकन करे। पर राग-द्वेष के रग को अपने विचारो
पर न चढने दे, ताकि स्वय के पवित्र विचारों की सौरभ को किसी
भी प्रकार की क्षति नही पहुँचे। यही मानव रूप
दिव्य फूल की सफलता रूप की कुंजी है।

{2155}

{2156}

जब ''मै'' जगता है तो
वह इतना विराट् बन जाता है
कि सारा बाह्य - सारा जगत् उसमे
समा जाता है - अर्थात् यह ''मै'' अपने को
विभाजित कर सबमे हिलमिल जाता है - सबको
अपना लेता है और यही ''मै'' उच्चस्थ अवस्था
होती है तो समतामय जीवन का चरम
विकास भी होता है।

{2157}

आत्मा अमर
तत्त्व है। इसी रूप
मे पहचानने पर देह कष्टो
की अनुभूति कम हो जाती
है। तब वह परमानंद में
लीन
बन जाती है।

{2158}

सब शारीरिक व्याधियो का मूल
मस्तिष्क है। वही से जिसको प्रश्रय मिलता
हे, वही शरीर के अन्दर प्रवेश पाकर अपना स्थान
बना लेता हे। अन्य तत्त्वो का वायु - मण्डल के माध्यम
से श्वास, प्रश्वास, खान-पान, रोम आदि छिद्रो से शरीर
मे प्रविष्ट होना सम्भावित है, पर उनको शारीरिक तत्त्वों
के साथ प्रश्रय ज्ञात, अज्ञात अथवा लापरवाही से मस्तिष्क
से ही मिल पाता हे। तभी वह भीतर मे अपना स्थान
बनाता है। आभ्यन्तर अवयव जब तक अवकाश नही
देते तब तक भीतर मे जड नही जमती।

{2159}

संसार के
सारे क्रिया-कलाप
एवं ससार स्वय का
क्रम, जन्म-मरण
के चक्र पर
चलता है।

{2160}

अहिसा-जीवन मे
से हिसा को निकल जाने
पर जो परिपूर्ण स्वरूप अवशेष रहता
हे वह हे स्वय के प्रतिकूल व्यवहार
के प्रति नही करते हुए स्वय के समान अन्य
को जानना-मानना। इस
विवेक के साथ जो व्यवहार हे,
वह विधिरूप अहिसा हे।

{2161}

दृढ संकल्पपूर्ण विचारो का प्रभाव जीवन में
महत्वपूर्ण घटको पर पडता हे, जिससे जीवन मे
आमूलचूल परिवर्तन भी आ सकता हे। वेज्ञानिक खोज के
अनुसार आनुवशिक संस्कारों को वहन करने वाले जीन्स पर
दृढ सकल्पशक्ति पूर्वक किये गये विचारों का भी प्रभाव पडता
है, जिससे पूर्व के संस्कार परिवर्तित होकर अन्य संस्कार वन जाते हे।
सकल्प से रोगादिक की निवृत्ति भी सभावित हे। जेसे संकल्पपूर्वक पुरुषार्थ
किया जाय वेसी ही जीवनी शक्ति का
सर्जन बन पाता है । वैज्ञानिक क्षेत्र मे जीन्स के परिवर्तन के लिए इन्जेक्शन
आदि की परिकल्पना चल रही है। किन्तु इस विषय मे रोगादि की निवृत्ति में
तो परिवर्तन संभव हे। वह भी
पूर्व निदानपूर्वक योग्य विधि से प्रयुक्त हो तभी। वरना अन्य
कई खतरे सभावित है। इसके अतिरिक्त अन्य विषय मे पूरी सफलता मिलनी
अशक्य-सी हे। यह विषय वेज्ञानिको एवं
गहरे चिन्तको का हे, प्रत्येक व्यक्ति का नही।

वैज्ञानिको, जिसमे आध्यात्मिक एवं भोतिक दोनो का
समावेश हो जाता है, मन मे जिस भी विषय की तीव्रता,
उत्साह एवं जोश की अवस्था वनती है, उस वक्त वे अपने
विचारो मे दृढ संकल्प-शक्ति का समावेश कर लेते है। परिणाम
स्वरूप जिस भी विषय की खोज करना चाहते हे, उस विषय में
प्रबल पुरुषार्थ के साथ संलग्न हो जाते है, ओर उस विषय मे सिद्धि प्राप्त कर
लेते है। डॉक्टर खुराना ने जिन जीन्स की खोज की, वे मानव के नही अपितु
बैक्टिरिया के थे। फिर भी भौतिक, विज्ञान मे
एक मार्ग बना। आनुवशिक सस्कारो के परिवर्तन की बाते भी भौतिक, वैज्ञानिक
जगत मे प्रारम्भ हुई। अन्य भी कई विकल्पनाएं समुपस्थित होने लगी। पर
परिवर्तन के वास्तविक मूल को अभी तक प्राप्त नही कर पाये, न उसकी ओर
उनका ध्यान ही केन्द्रित हो पाया। यह
खोज परीक्षण नली की दृष्टि से भले ही नई है, पर प्राकृतिक दृष्टि से नई नही
है। इस विषय म्रे शास्त्रीय अनुसंधान की दृष्टि से चितन
किया जाय, तो आश्चर्य को कोई अवकाश नही होगा।

{2162}

{2163}

व्यक्ति जब समता
सिद्धान्त दर्शन से जीवन की
भूमिका का निर्माण करता हुआ जीवन
दर्शन व आत्म दर्शन को पार करके
परमात्म दर्शन को प्राप्त हो जाता हे
तब उसे शाति का चरम
परिणाम प्राप्त होता है।

{2164}

ससारी आत्माओ
का ''मै'' इतना सकुचित
रहता है कि उसे खोजना,
जगाना और कर्मनिष्ठ
बनाना एक भागीरथ
प्रयत्न से कम नही।

{2165}

यह अमूल्य जीवन अमूल्य
वास्तविक स्वरू‌प के बिना नाशवानपदार्थो
मे आसक्त बना हुआ व्यर्थ ही जा रहा है। इसका
आन्तरिक ज्ञान हुए बिना कुछ भी नही बन सकता। अत
जीवन की वास्तविक सफलता इसी मे है कि मानसिक
समस्त विकारो से परे, जो वास्तविक स्वरूप रहा हुआ
है, उसको व्यक्त किया जाय एव विश्व के समस्त
दृश्यो से जरा भी विचलित न होते हुए
दृढ सकल्प के साथ चला जाय।

{2166}

कर्मो का
आत्मा के लिये
एक बधन हो जाता है
जो शरीर के छूट जाने
पर भी आत्मा से
नही छूटता।

{2167}

कायिक, वाचिक,
मानसिक एव अनुभूति-मूलक
जीवन स्तरो से भी अत्यधिक
गहनता मे पहुँचने पर वास्तविक
स्वरूप उपलब्ध होगा। वह भी कम?
जब सही लक्ष्य को समुख लेकर
विधिवत् क्रमिक गमन होगा।
अन्यथा भटकन होगी।

{2168}

तालु के ऊपरी भाग के ग्रन्थिस्थान की
चन्द्र की उपमा दी जाती है। उसमे से निकलने
वाले रस को अमृत की उपमा दी जाती है। वह जठराग्नि
मे पहुँचता है। खाना खाने के बाद बनने वाले रस मे मिलने
से उस रस की रासयनिक प्रक्रिया मे परिवर्तन आता है,
परिणाम-स्वरूप शारीरिक तत्त्वो पर असर पडता है। अमृतोपम
रस जीवन-विचारो से प्रभावित तत्त्व है। यदि विचारो मे क्रूरता की प्रधानता है,
तो वह रस जठर मे पहुँचाते ही अपनी अमृतोपमता को खो देगा और भस्म हो
क्रूर - घातक रस के रूप मे उदररस में मिलने से उदर में बनने वाला रस भी
उसके अनुरूप शारीरिक अवयवों के लिये अहितकर बन जाता है। यदि
सौम्यादि पवित्र विचारो से प्रभावित है तो अमृतोपम जठर से उदररस की
रासायनिक प्रक्रिया से अपने अनुरूप परिवर्तन के
साथ शारीरिक अवयवो के लिए हितावह होगा।

मनुष्य मुख्य तौर पर दो तरह के पये
जाते हैं। एक विद्वान्, अन्य अविद्वान्। विद्वान् के
भी दो भेद किये जा सकते है-एक कच्चे मस्तिष्क
वाले तो दूसरे परिपक्व मस्तिष्क वाले। अपरिपक्व पुरुष
स्थिर नही होते। विद्वान् होने पर भी इधर-उधर के विचारो
के प्रवाह मे बहते रहते हैं। स्थिर लक्ष्य नही होने से, मन
मे भी स्थिरता नही बन पाती। किसी ने कुछ कहा, तो
उसकी मानने मे तत्पर हो गये। परिपक्व-मस्तिष्क मानव
गृहीत लक्ष्य पर स्थिर रहता है। कितने ही विचारो के
ऑधी-तूफान आये, पर वह उनमे से भी अपने लक्ष्य
की पुष्टि कर पायेगा तथा अन्य को भी अपने
अनुरूप ढालने की कोशिश करेगा। यह बात
विद्वान् मानवो मे भी पाई जाती है।

{2169}

{2170}

जब आत्मा मानव
शरीर अथवा अन्य शरीर
को धारण करती हे तो वह एक
नये जीवन के रूप मे ससार के रगमच
पर आती है। तब उस जीवन मे जिस
प्रकार के क्रिया-कलाप होते है
वैसे-वैसे कर्म उसके साथ
सलग्न होते है।

{2171}

शुभ या
अशुभ जिस
प्रकार के कर्म होते
है,उनका इस या आगमी
जीवन मे आत्मा को फल
भुगताना
होता है।

{2172}

वृत्तियो को बॉधना या दबाना
भी अधिक समय तक शक्य नही।
यह कार्य कुछ ही समय तक हो सकता है
पर स्थायित्व की अवस्था इसमे भी नही बन पाती। वैसी
अवस्था मे भी इष्टफल की सिद्धि वास्तविक स्थायित्व को
प्राप्त नही कर सकती। अत वृत्तियो का सशोधन कर कौनसी वृत्ति का केसे
परिमार्जन करना इस ध्यान के आने पर वे परिष्कृत की जा सकती है।
वृत्तियो के साथ
संयुक्त मैल को धोकर सम्परित्याग करने मे
उपरोक्त कला भी जीवन मे आनी
नितान्त आवश्यक है।

{2173}

शुभ कर्मो के
फलस्वरूप अच्छा
जीवन ओर उसमे अच्छे सयोग
मिलते है तो
अशुभ कर्मो का फल अशुभ
परिस्थितियो के
रूप मे मिलता है।

{2174}

कर्म जड होते हुए
भी सलग्न होने मे उसी
प्रकार सक्रिय बनते है। जिस प्रकार
तेल मर्दन कर लेने पर बालू रेत पर
सो जाने से रेत के कण उस शरीर
के साथ स्वय चिपक जाने
मे सक्रिय होते है।

{2175}

ध्यान की जीवन मे अनिवार्य
आवश्यकता हे। उसके विना एक क्षण
भी व्यतीत नही होता। पानी की शीत एव
प्यास शात करने स्वरूप स्वभाव, आग का उष्णता
तथा प्रकाश स्वभाव, तारे ओर चन्द्र का ज्योत्सना
स्वभाव, सूर्य का भास्कर स्वभाव, आकश का अवकाश स्वरूप एवं
आत्मा का ज्ञानादि गुण स्वभाव असाधारण
रूप से विद्यमान हे। इन असाधारण स्वरूपो के
विना उपरोक्त वस्तुऍ रह नही सकती। पदार्थ के
असाधारण स्वरूप की जितनी आवश्यकता
हे, उतनी ही प्राणीवर्ग के लिये
ध्यान की आवश्यकता हे।

स्वयं का उत्तरदायित्व स्वयं पर हे,
दूसरो पर नही। दूसरे सहायक बन सकते हे।
लेकिन कब ? जबकि स्वयं अपने कर्त्तव्य पालन मे
तत्पर होता हे। मूल स्वय बनता हे, तो खाद-पानी, आदि
सहायक हो सकते है। मूल स्वरूप मे स्वयं नही हे, तो अन्य कितने ही
सुन्दर एवं सुव्यवस्थित सहायक हो, वे काम नही
कर सकते। उसी प्रकार मूल है। पर अन्य योग्य सहायक नही हे, तो मूल
कुछ सीमा तक ही कुछ कर पायेगा। आगे नही
है, तो मूल कुछ सीमा तक ही कुछ कर पायेगा। आगे
नही। प्रारम्भ मे तो अन्य की किसी-न-किसी रूप मे
आवश्यकता रहती है, फिर स्वयं की समर्थता इतनी
बढ जाय तो अन्य सहायक गोण हो सकते हे।
यही अवस्था जीवन, आत्मा बुद्धि आदि के
विषय मे देखी जा सकती हे।

{2176}

{2177}

मानसिक विचार
कभी-कभी भले बनकर
भी उपस्थित होते है पर वे वस्तुत
भले नही होते है। वे भले की पोशाक
लेकर भला दिखाने के लिए आते है,
पर उनकी सच्ची विज्ञप्ति न होने से
अच्छे मान लिये जाते है। अन्तत
वे धोखा देते है।

{2178}

जड और
चेतन दोनो के
स्वभाव विपरीत है जो एक
दूसरे को एक
दूसरे की दिशा मे
खीचते है।

{2179}

एक गैर परमाणु के साथ गायक
के ज्ञान के, दो, दस जीव सख्यात, असख्यात,
अनन्त, अनन्तानन्त पर्याय बनते है। वह भी एक वर्ण
वर्ग के साथ। वैसे ही रस, गन्ध, स्पर्श वर्ग का भी
विज्ञान समझना चाहिए। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाशस्ति,
जीवास्तिकाय आदि ज्ञेय पदार्थो के निमित्त मे ज्ञायक के
विज्ञान-सम्बन्धी पाच वर्गीकरण के रूप मे अग बन जाते
है। जीवास्तिकाय की अवस्था तो ज्ञेय तथा ज्ञायक उभय
रूप मे बन जाती है। दोनो अवस्थाए वास्तविक
रूप मे जीवतत्त्व के स्वभाव रूप मे है।

जब आत्मा
की ज्ञान दशा
सुषुप्त होती है-कर्मठता
जागती नही है तो उसकी
अपनी असली
अनुभूति भी शिथिल
बनी रहती है।

{2180}

सर्वाङ्गिण समता
प्राप्ति के लक्ष्य के साथ
भी यही तथ्य जुडा हुआ है।
आवश्यकता हे कि लक्ष्य के
अनुसार सही दिशा मे जीवन
को मोडा जाय तथा ज्ञान व
आस्थापूर्ण आचरण से
आगे बढा जाय।

{2181}

{2182}

जीवन की कला जल्दी मस्तिष्क मे
प्रवेश नही कर पाती। उसको प्रवेश कराने के
लिये निरन्तर प्रयास अपेक्षित हे। अभ्यास के रूप में
नियमित समय पर प्रयत्न होने चाहिए। समय की नियमितता
नितान्त आवश्यक है। समय की अनियमितता के कारण
जीवन–कोशिकाएं नियमित कार्य नही कर पाती। एक कार्य
में अनियमितता के कारण अस्त–व्यस्तता बनती है, तो उसका असर अन्य
कार्यों पर भी पडता है। वे भी नियमित रूप से नही बन पाते। इस प्रकार से
भी कार्यों के अनियमित बन जाने से स्वास्थ्य पर भी घातक प्रभाव होता है।
साथ ही मस्तिष्क
भी व्यवस्थित नही रह पाता। मस्तिष्क की सुव्यवस्था
के बिना जीवन–कला व्यवस्थित नही बनती एवं
उसके बिना जीवन ही व्यर्थ हो जाता है।

मन के तीन स्तर है– जघन्य, मध्यम
तथा उत्कृष्ट। जघन्य स्तर की भावना इति
कमजोर तथा कच्ची होती है। जघन्य भावना मे
जब कुछ परिपक्वता बढती है एवं मध्यम स्तर तक
पहुँच जाती है तब वचन में भी परिणित हो सकती है। जब
मध्यम भावना मे भी अत्यधिक तीव्रता बढती है, तब उत्कृष्ट
की सीमा को छूती है। वैसी दशा मे काया मे भी परिणित
होने लगती है। उसमें भी अति तीव्र वेग बढता है, तब
कायादि समग्र शरीर के अवयवो मे उसकी चमक व्याप्त
हो जाती है। वही अवस्था सही परिपक्व–अवस्था
कही जा सकती है। उसी मे वचन व
काया का प्रभाव पूरा बहता है।

{2183}

{2184}

विषमताजन्य
परिस्थितियो मे डोलायमान
रहते हुये वह बाह्य वातावरण
से इतना प्रभाविक बनता है कि अंतर
मे झाकने की उसे भावना नही होती
और अन्तर मे नही झाके तो इस
''मै'' को कैसे देखे या उसकी
अनुभूति केसे ले ?

{2185}

जिसके आश्रय
से ये शरीर है वह
''मै'' है आत्मा है।

आत्मा शरीर
रूपी इजन का
ड्राइवर है।

{2186}

जीवन की आन्तरिक धरा पर चलना
सरल नही है। वहा पर चलना जिसने सीख लिया,
उसने जीवन की सफलता पा ली, ऐसा कहा जा सकता है। जिसने
आतरिक धरा पर चलना नही सीखा, और अन्य कितनी कुछ भी उपलब्धि
यॉ प्राप्त कर ली हो, उसके लिये ऐसा नही कहा जा सकता कि उसने
जीवन की सफलता पाई है, क्योकि आतरिक गति के बिना बाह्य गति
सिर्फ मकान को बाहर से पोतना और अन्दर मे गन्दगी भरी रखने के
समान है। यदि बाह्य गति आन्तरिक गति पूर्वक बने, तो दोनो
जीवन के वास्तविक पंख बन सकते है।

{2187}

''मै'' शरीर
मे बैठा है, फिर
भी शरीर से अलग से
और शरीर से अलग है, और
शरीर के ऊपर है, क्योकि यह
''मै'' नही
तो शरीर नही।

{2188}

प्रत्येक मानव
अपने आपको ''मै''
ही तो कहता है, किन्तु
वह अपने इस ''मे'' को गलत-
गलत जगहो पर आरोपित करता
हुआ उसकी वास्तविकता से
विस्मृत बना रहता है।

{2189}

एकत्रित समस्त शक्तियो को सम्मुख
रखने पर सब शक्तियॉ सध जाती है। विभिन्नाश्रित
सर्व शक्तियॉ नही सध सकती। क्योकि अपूर्ण साधन अवस्था
मे साधन-शक्ति सीमित होती है। सीमित शक्ति अनेक केन्द्रो को पकडने में
असमर्थ रहती है। विभिन्न विभागो मे विभक्त हो जाने से एक तक भी नही पहुँच
पाती, फलस्वरूप कुछ भी सध नही पाता। बल्कि उस अपूर्ण साधना-शक्ति का
ही हास हो जाता है, फिर तो कुछ भी सभल नही पाता। यदि अनेकाश्रित उसी
अपूर्ण शक्ति को एक ही केन्द्र से सही तरीके से सम्बन्धित कर दिया जाय, तो
वही शक्ति असीम पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। फिर भी विभिन्न अनेकानेक
केन्द्रो को भी भली-भॉति जाना, देखा जा सकता है।
ऐसा होने पर भी शक्ति का हास नही हो पायेगा, कारण कि अब वह असीम,
पूर्ण हो चुकी है। अत अपूर्ण अवस्था की शक्ति को व्यवस्थित रूप से पहले
अनेकाश्रित एक केन्द्र से
सम्बन्धित करना नितान्त आवश्यक है।

भाव मन की शक्ति को पहचानने
के लिये भगवान के साथ रहने वाले विकारो
को दूर करना परम आवश्यक है। वे विकार वास्तविक
स्वरूप को नही समझने, भय, असत्य, अवह्मचर्य, नाशवान
पदार्थो पर मूर्च्छा, यश-कीर्ति, आदि अनेक प्रकार के होते है।
वे उस मानसिक शक्ति के सही स्वरूप को समझने मे बाधक बन जाया
करते है। यही कारण है कि मानव का जीवन
अस्त-व्यस्त बना हुआ है। इसी अस्त-व्यस्त दशा मे मानव
अपने जीवन पर नियत्रण नही रख पाता। बिना नियत्रण के
विश्व के विभिन्न पैतरो को समझ नही पाता तथा
उनमे होने वाली हलचल, आवाजे, अनेक तरह
के दृश्य, वास्तविक स्वरूप की पहचान एव
उसकी प्राप्ति नही होती है।

{2190}

{2191}

वे अच्छे-अच्छे
ज्ञानी और कर्मठ
लोग भी भटक जाते है,
जो आत्म-दर्शन की अवहेलना
करते है और उन्हे सब कुछ
करने के बावजूद भी अपने
ही ''मै'' की अनुभूति
नही होती।

{2192}

शाति
प्राप्ति के
लिये जीवन मे
समता भावना
को अगीकार
करना होगा।

{2193}

वश-परम्परा से किसी का मन मजबूत है,
तो समझना चाहिए, उसकी कोशिकाएँ भी व्यवस्थित,
सुस्थिर एव दृढ है। उनमे सहसा परिवर्तन नही लाया जा
सकता। उनमे परिवर्तन लाने के लिए विशिष्ट अभ्यास एव विशिष्ट विज्ञान की
आवश्यकता रहती है। क्योकि परिवर्तन मन मे आता है, फिर कोशिकाओ मे।
मन मे यदि परिवर्तन नही आया, तो कोशिकाओ पर कुछ भी असर होने वाला
नही है। क्योकि उनकी चाबी मन के पास है। अत अपेक्षाकृत दृढ मन पर
असर लाने के प्रयत्न दोनो तरह के हो सकते है। अच्छे और बुरे। अच्छे
से अच्छा और बुरे से बुरा प्रभाव पडता है।

{2194}

चैतन्य का
स्वभाव ज्ञान एव
शक्ति रूप है एव
उसका अस्तित्त्व
अजरामर है तो जड
ज्ञान शून्य एव निर्जीव
होता है और नश्वर
भी होला है।

{2195}

जीवन मे जब
मूर्छा, अज्ञान और पतन
समाया रहता है तब उसका
''मै'' इतना कुछ बन जाता है कि
न तो वह खुद ही जगता है
न जगाने का काम भी
कर सकता है।

{2196}

मानव-मन प्रायः अपनी अवस्था को नही समझ पा रहा हे कि मे क्या कर सकता हूॅ ओर क्या नही कर सकता हूॅ। मन की दो दशाऍ हे - एक द्रव्यमन की, दूसरी भावमन की। द्रव्यमन (मेटर) द्रव्यों की प्रधानता से निर्मित ह। भावमन शाश्वत शक्ति के पर्यायस्वरूप हे अर्थात् उसे अमर शक्ति का एक प्रकार कह सकते हे। भावमन की प्रेरणा से द्रव्यमन की हलचल संकल्प-विकल्प आदि प्रक्रिया बना करती हे। द्रव्यमन स्वयं यानी भावमन विना स्वयं को या स्वयं के विषय को क्या कर सकता हे, क्या नही कर सकता हे, इत्यादि कुछ भी नही समझ सकता, क्योकि एतद्-विषयक क्षमता उसमे नही रह पाती। यह विषय मुख्यतः भावमन का हे। भावमन ही इस विषय मे भली-भॉति सोच सकता हे, पर प्रारम्भ मे उसे भी द्रव्यमन की शक्ति भी उपयोग में लेनी पडती ह क्योंकि प्रारम्भ मे वह भी
एक दृष्टि से अपंग रहता है। अत भावमन की प्रधानता से ही द्रव्यमन कार्यकारी होती हे।

वेज्ञानिक खोज के अनुसार कोशिकाएं, क्रोमोसोम, जीन आदि शरीररचना के महत्वपूर्ण अंगो - स्कन्धो के पर्यायवाची नाम कहे जा सकते हें। इनकी एक के अन्दर एक गहन रचना बन जाती है। सामान्य विकास में ही जनसम्पर्क अधिक विकसित हो जाने पर विकासमान के पूर्व विकास की न्यूनता एवं भावी विकास मे अवरूद्धता स्वाभाविक-सी हे। क्योकि न्यून स्तरीय दृष्टिकोण बन जाता है, उसमें विकास का शिथिल होना अधिक सम्भव है तथा अभिमान की मात्रा बढ जाना भी सम्भवित हे। सोचने की गति बदल जाती हे। वह सोचने लगता है कि मेरे समकक्ष
अन्य कोई है ही नही। दुनिया की अधिक बुद्धि मेरे पास हे। अन्य सब जगत मे मेरे से न्यून है। इस प्रकार का सोचना ही भावी विकास को अवरूद्ध बनाना हे।

{2197}

{2198}

यह स्पष्ट सत्य है कि जिसका
आकार मन मे बसाया जाता है, वह
आदमी भी एक दिन उसी रूप मे बन सकता
हैं। जिस प्रकार दर्पण के सामने जेसा बिम्ब होगा वैसा ही
उसमे प्रतिबिम्ब पडता है। यदि सामने राक्षस का बिम्ब
होगा तो दर्पण मे भी राक्षस का ही प्रतिबिम्ब पडेगा। इसी
प्रकार जिस व्यक्ति का मन जिसके प्रति सर्वथा रूप से
अनुरक्त होता है तो उससे उस व्यक्ति की आत्मा
प्रभावित हुए बिना नही रहती है।

{2199}

जो दूसरो
का व्यवहार मुझे
अपने लिए अच्छा
नही लगता है, वैसा व्यवहार
मे अन्यो
के साथ कभी
नही करू।

{2200}

मानव जीवन कितना महत्वपूर्ण है,
इस विषय मे प्राय बहुत कम सोचा जाता है।
यही कारण है कि इससे वास्तविक कार्य नही बन
पाता ओर अति ही स्वल्प समय मे इसे विशीर्णप्राय
बना दिया जाता है। विर्शाण बनाने वाला अन्य कोई नही,
स्वय शरीर का अधिष्ठता ही है। क्योकि वह अपनी
शक्ति को भूला हुआ किकर्तव्यविमूढ बन रहा हे। सभी
ओर से शोरगुल की आवाजे टकरा रही है। विविध
विचार उसके सामने आ रहे हे। उनका समन्वय नही
कर पाने से जटिल समस्या मे उलझ रहा हे।
इससे उपराम पाना आवश्यक हे।

{2201}

चेतना जब तक
है, शरीर को जीवित
कहा जाता है ओर जब तक
वह जीवित है तब तक जीवन
है तथा
जीवन की समाप्ति का
नाम ही मृत्यु है।

{2202}

जिस प्रकार क्रोध करने वाला
व्यक्ति जिस पर क्रोध कर रहा हे,
गुस्स मे उबल कर अनर्गल बोल रहा है। वह
व्यक्ति उस सामने वाले व्यक्ति के क्रोध को शात
भाव से सहन कर लेता है, तो उसका तो कुछ
नही बिगडता, बल्कि उसके तो शक्ति संचित
होती हे। पर क्रोध करने वाले व्यक्ति की
शारीरिक, मानसिक ओर आध्यात्मिक सभी
तरह से हानि होती हे।

{2203}

जब तक शुद्ध विचारों में विचारो
का प्रवाह व्यय होता रहेगा, तब तक
विश्वविलोकनीय दिव्य विचारो का सचय नही हो
पायेगा। क्योकि विचारप्रवाह के कई रूप है-एक विचार
व्यर्थ के कार्यो मे लगता हैं-इसने यह बोला, उसने यह
बोला, इसमें मेरा अपमान हुआ, इसने मेरा सत्कार किया, यह मेरा
हित करने वाला है, यह अहित करने वाला है, इत्यादि निष्कारण
विचारो की ऑधी मे उडता रहता है। न वस्तुस्वरूप को समझता है,
न तथ्य का विज्ञान प्राप्त
करता है। ऐसी अवस्था मे बहुमूल्य विचार शक्ति व्यर्थ मे
खर्च हो जाने से वास्तविक कार्य के लिये शक्ति अवशेष
नही रह पाती, उस शक्ति के अभाव मे जीवन व्यर्थ
ही इधर-उधर के प्रवाह मे बह जाता है।

मानव की कोशिकाएँ विचित्र सस्कारो
से युक्त बनी हुई हैं। समय-समय पर
उनमे विभिन्न-विचित्र सस्कारो का परिवर्तन, बनना-
बिगडना, आदि प्रक्रिया भी चालु रहती है। कमजोर मन
इन पर पूरा नियंत्रण नही कर पाता, पूरा नियंत्रण नही बनने
से कोशिकाओ के यथेष्ठ परिवर्तन मे अन्तर नही आता और
उनके अनियत्रित परिवर्तन होते रहने से किसी भी अभीष्ट
कार्य मे इच्छित फल की उपलब्धि नही हो पाती। इच्छित
फल के अभाव मे मानसिक हीनभाव एवं मानसिक वृत्तियों के
बिखरे रहने की दशा प्राय. चालू रहती हैं। इससे मानव-जीवन की महत्वपूर्ण
विशिष्ट शक्तियां व्यर्थ ही अस्त-व्यस्त बन कर नष्ट हो जाती है। इस प्रकार
आत्मा के माध्यम की दुर्दशा
होने से आत्मा न स्वय की उपलब्धि कर पाती
और न अन्य की ही समझ पाती है।

{2204}

{2205}

सुख से जीने के लिये
सबसे पहले अपने विचारो को
परिष्कृत करने की नितान्त आवश्यकता
है। जब पानी की टकी मे रहने वाला पानी
फिल्टर होगा, तभी नलो के माध्यम से आने
वाला पानी भी साफ-स्वच्छ आयेगा। यदि टकी
का पानी साफ नही है तो नलो मे आने वाले
पानी मे तो स्वच्छता आ ही नही सकती।

{2206}

यह जीव
ससार मे इसलिए
है कि अजीव के साथ
बध कर जिस प्रकार
के कार्य यह करता है उसके
फल का भुगतान भी इसको
करना पडता है।

{2207}

समय और परिस्थिति के अनुसार इन्सान
परिवर्तित होता है। उसके सामने वैसा वातावरण
होता है, वह उसी के अनुकूल अपने विचारो को ढालता है
और प्रतिकूल वातावरण को भी समयानुसार बदलने की चेष्टा करता है। वह
उसको परिवर्तित कर सकता है, किन्तु सवर्था
नष्ट नही कर पाता। यह सब मध्यम श्रेणी के विचारको की परिस्थिति है।
मगर जो वस्तुत सत्यशोधक एव विवेकशील पुरुष है, वह स्वयं पवित्र
अन्त करण को सामने रखकर निर्लिप्त विशाल दृष्टि से नवीन वातावरण
तैयार करता है। वह किसी प्रवाह
या उत्तेजित वातावरण मे नही बहता, किन्तु
निश्चल धैर्य के साथ आगे बढता है।

{2208}

आत्मा अपने
कर्म के अनुसार
पुन-पुन नया शरीर
धारण करती है अथवा
कर्मविमुक्ति हो जाने
पर मोक्षगामी
बनती है।

{2209}

जब आत्मा अपने
स्वरूप को क्षायिक सम्यक्त्व
के साथ जान लेती हे, और एक
बार भी उसे आत्मशक्ति की अनुभूति
हो जाती है, आत्मरस मे वह अवगाहन कर
लेती है, तब वह तीन काल मे
भी अपने आत्मिक स्वरूप को
भूल नही सकती है।

{2210}

आन्तरिक मानस की स्थिति प्रतिक्षण
परिवर्तनशील कही जा सकती हैं, क्योकि प्रतिक्षण
परिवर्तनशील विषय सामने आता रहता है ओर विषय के
परिवर्तन से विषयी भी परिवर्तन-स्वभाव वाला बनता रहता है।
इससे दीर्घकाल तक आन्तरिक अवस्था भी स्थायित्व को प्राप्त
नही हो पाती। यह भी एक कारण है कि परिवर्तनशील जीवन
को एक ही रूप मे दीर्घ काल तक रोका नही जा सकता। हॉ,
रूपान्तरण के माध्यम से सुदीर्घकाल तक बनाया जा सकता है। पर वह
कला सही रूप मे आन्तरिक मानस में आनी चाहिए।
विचारो के केन्द्र की किरणे अन्तर-मानस में व्याप्त रहती है,
उन्ही की बदौलत परिवर्तनशील आन्तरिक मानस की समग्र
हलचल व्यवस्थित रूप से सक्रिय रहती है। रूपान्तरिक होने
पर भी प्राय सादृश्य अवस्था परिलक्षित होती है।
इससे कभी भ्रमित भी बना जा सकता है।

बह्मचर्य के वास्तविक परमार्थ को यदि
सन्मुख रखा जाय, तो जीवन का नक्शा कुछ
और ही बन सकता है। शरीर से निकलने वाला वीर्यप्रवाह
निष्कारण नही होता। उसमे कारण अनेक हो सकते हैं। पर
मुख्य कारा दो होते है। एक विचार और दूसरा वय यानी शरीर की
अवस्था-विशेष। इन दोनों मे भी विचारो की ही प्रमुखता मानी जा सकती है।
क्योकि विचारो के भी संक्षिप्त मे दो रूप रहते है,
जिनको ज्ञात और अज्ञात के नाम से पुकारा जा सकता है। उनमे से, यानी
ज्ञात और अज्ञात विचारधाराओ में से, किसी भी अवस्था मे अब्रह्मचर्य की
ओर मुडने पर वीर्य पदार्थ के स्खलित होने का प्रसंग प्राय बनता हे। यद्यपि
विचारो के मोड मे अनेकानेक कारण है, पर उनमे भी शरीर के अवयवो की
एक अवस्था विशेष को प्रबल कारण कहा जा सकता हे। जिससे
विचारो का मोड प्राय बन जाया करता हे।

{2211}

{2212}

आत्मिक गुणो का विकास भी अति आवश्यक है। सयमानुरजित धैर्य और साहस से अपने जीवन मे जो मनुष्य गतिशील है,उसका जीवन निरन्तर सुसफल बनता जाता है। और वीतरागदेव की आज्ञा का अन्तरग स्थिति के साथ परिपूर्ण समर्पणा के साथ पालन करने का आत्म पुरुषार्थ जागृत होकर अन्त मे परमात्म, स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

{2213}

जीवन मे शुभ विचार आने पर ही कार्य तदनुकूल बन सकता है। शुभ विचार के लिए स्वाध्याय आवश्यक है।

{2214}

किसी भी वस्तु की विशेषता उसकी विपुलता मे एव वर्णता मे नही, किन्तु उसके विशिष्ट महत्व पर निर्भर है। वह विशिष्ट महत्व बाहर से नही आता। वह तो आन्तरिक शक्तियो से ही विकसित होकर पल्लवित होता है। एतदर्थ उन शक्तियो को सम्यक्रीति से विकसित करने हेतु सत्कार पूर्वक दृढ सकल्प के साथ अभ्यास मे लग जाना चाहिए। अभ्यास नियत समय के साथ प्रारम्भ करके उत्साहपूर्वक बढना इसमे निरन्तर ही आदत बन जाय वैसा प्रयास करना इति आवश्यक है। अन्य सब विषय गौण बनने पर ही यह विषय अधिक स्फुट हो सकता है।

{2215}

आत्मानुभूति की जागरणा का रहस्य इस वस्तुस्थिति को समझने मे रहा हुआ है कि एजिन ड्राइवर को चलाए या ड्राइवर एजिन को चलाये।

{2216}

अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित होकर चले, चाहे कितना भी आपदाए आ जाये तो भी अपने लक्ष्य से विचलित न हो, तीर्थकर भगवन्तो की आज्ञाओ मे विना किसी प्रकार की शका के परिपूर्ण रूपेण समर्पणा बनाए रखे ओर तदनुरुप हमारी जीवनचर्या को गतिशील वनाये रखे तो इस सम्यक्त्व के प्रथम आचार ''निशकित'' से एक न एक दिन अपनी सम्पूर्ण आत्म ऋद्धि को प्रकट कर सकने मे समक्ष वन जायेगे।

{2217}

किसी भी वास्तविक प्रयास के
फल-स्वरूप मानव यदि अन्त· स्थल पर
पहुँच जाता है और वहां कि सत्वसंपन्न शक्ति
को भली-भॉति पहचान लेता है, तो उसकी सब वृत्तियो
मे परिवर्तन आ जाता है। उसकी दृष्टि, उसका बोलना,
सूनना, मनन करना आदि अन्य प्राणियों से विलक्षण
होगे। आन्तरिक सत्व-सम्पन्न व्यक्ति अमूल्य शक्ति का
जनसाधारण की तरह अपव्यय नही होने देगा। वह उसका
सत्यप्रयोग भी दिव्य एवं भव्य, विशाल तथा व्यापक वास्तविक
जीवन-निर्माण को सम्मूख रखकर उसके अनुपात से
करेगा, जिससे समग्र जीवन उसी सत्व-सम्पन्न
शक्ति के रूप में परिणत कर पायेगा।

जब आज के वैज्ञानिक मन की
कोशिश से हजारो मिल दूर रहले वाले
व्यक्ति को प्रभावित कर सकते है तो क्या उस
शक्ति से आत्मा प्रभावित नही होती ? बल्कि यो
कहना चाहिए कि दूसरा व्यक्ति बाद मे प्रभावित होगा,
पहले उसकी खुद की आत्मा प्रभावित होगी। जिस
मालिक के लिये नौकर फूल तौडकर ले जा रहा है, वह
मालिक तो फूल को हाथ मे आने पर ही सूंग सकेगा,
पर उसके पहले वह नौकर सुगन्ध को ले लेता
है। वैसे ही हमारे विचारो से सबसे पहले
हम ही प्रभावित होते है।

{2218}

{2219}

वर्तमान का समय ही
अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योकि
अतीत का समय बीत चुका है,
इसलिये उसका कोई अस्तित्व नही रह गया हे
और भविष्य का समय अभी
आया नही है और वह अपने लिए इस
रूप में आएगा भी या नही,
यह भी निश्चित नही है।

{2220}

शरीर का आत्मा
का अनुशासन हो या
वह शरीर के अनुशासन
मे दबी रहे? अनुशासन का
झगडा इसलिए है कि जड
और चेतन दोनो मिलकर भी
सही दिशा मे अपना-अपना
स्वभाव
नही छोडते।

{2221}

इसी स्व-पर ज्ञाता शक्ति की
उपस्थिति मे वृत्तितत्त्व के माध्यम से यथास्थान,
यथायोग्य अनेकानेक व्यवस्थित अकन बनते है।
उनकी अवधि भी अनेकानेक तरह की बनती रहती है।
उनमे वर्तमान अवस्था से सम्बन्धित स्थिति मे वे अकन
आविर्भाव-तिरोभाव को प्राप्त होते रहते है तथा दीर्घकाल
की स्थिति के अकन का दीर्घकाल की अवस्था मे
यथायोग्य रूप मे अनुकूल अवसर पाकर आविर्भाव
-तिरोभाव होता रहता है। अत· ये अकन प्राय
उसी अपूर्ण विकसित स्व-पर-ज्ञाता शक्ति
के सहचर रहते है।

{2222}

वर्तमान युग
मे सतोष की
सीमाएँ टूट गयी है
और वितृष्णा व्यापक
हो रही है।

{2223}

जो आत्मा वर्तमान समय
को पहचान कर अपने जीवन को
शुभ कार्यो मे नियोजित कर देती है तो उसका जीवन
सफल बन जाता है, अतीत मे चाहे जो कुछ
अन्याय-अनीति, अधर्म आदि कार्य किये हो, किन्तु
जब उसकी आत्मा उन सव कुद को हेय समझकर
उन्हे छोडकर अहिंसक कार्यो मे लग जाती हे, अपने
वर्तमान जीवन को सजा-सवार लेती है तो उसका
भविष्य का जीवन भी सज-संवर जाता हे।

{2224}

वीतराग देव ने जो सिद्धान्त व
समाधान दिये है उन सिद्धान्तो को जीवन
मे रमाकर प्रत्येक मनुष्य यदि अपने जीवन
की समस्याओ का हल करे तो उसकी सारी समस्याए
हल हो सकती हैं। वह अतीव शांति का अनुभव कर
सकता है। जो अंशाति की अनुभूतियॉ वह कर रहा है,
उसका निर्माता वह स्वयं है। वह यदि स्वय के निजी स्वरूप
को सम्यक् रूप से समझ लेता है तो उसको
ज्ञात हो सकता है कि दुनियां मे सुख–दु ख
उत्पन्न करने वाला कोई दूसरा नही है। वह
स्वयं ही स्वयं के सुख–दु ख का कर्त्ता
है। दूसरे तो निमित्त मात्र हैं।

जो मनुष्य अपना सुन्दर
आचरण रखता है। उसकी प्रतिष्ठा
ऐसी जम जाती है कि जिससे वर्तमान
मे किसी प्रकार की कोई कष्ट की स्थिति
जीवन में नही आ सकती भले ही प्रारम्भिक
अवस्था मे उसे कष्टो से सघर्ष भी करना पडे,
पर अपनी सत्यनिष्ठा पर जो दृढ रहता है वह
कष्ट से अपने अशुभ कर्मों को निर्जरित कर
समुज्ज्वल भविष्य के कगार पर आकर खडा
हो जाता है, उससे स्वय का जीवन तो
सौम्य बनता ही है, अन्यो पर भी
उसका प्रभाव पडता है।

{2225}

{2226}

यह आत्मा आज से नही,
कल से नही, इस जन्म से पर
जन्म से नही पर अनंतानत जन्मो से
अपने स्वभाव को भूलकर विभाव मे
जकडी, कर्मो से परतत्र हो, जीती चली
आ रही है। उसे स्वभाव मे लाने के लिये, कर्मो
को तोडने के लिये सवत्सरी पर्व का सही ढग से
ज्ञान प्राप्त कर आचरण
मे सम्यक् मोड लाना होगा।

{2227}

जो अर्न्तदृष्टि
मे शून्य रहकर
केवल बाह्य दृष्टि मे भटकता
है, वह विषमता
को ही अधिक
बढाता है।

{2228}

जीवन की प्रत्येक कडी को सुलझाना
अत्यावश्यक है। वे कडिया सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर
भी है, और स्थूल-से-स्थूल भी। दोनो या सब का
परस्पर सबध और वह भी किसका कहा तक, पहले
किसको किसनेस विलग करना, फिर किनका किनके साथ
मेल करके किस समस्या को कैसे हल करना, उसके पश्चात्
सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर आदि तत्त्वो पर पहुँचकर भी निर्लिप्त
रहते हुए अभीष्ट स्थिति को प्राप्त करना, आदि विषयक
विज्ञान के साथ-साथ उन कडियों के कार्य रूप मे
परिणित होने पर वस्तु स्थिति की वास्तविक
दिशा का भान बन सकता है।

शुभ लक्ष्य को
लेकर किये गए कार्य
का परिणाम भी यदि
हानिकारक आता हे
तो समझो कि ये भी
अच्छे के लिए है।

{2229}

कर्मवाद के आधार
पर प्रेरणा मिलती हे कि
जीवन मे अच्छे कार्य किये जाय,
श्रेष्ठ विचार एव वृत्तियां अपनाई जाय
तथा इस ''मै'' को पहिचान कर
इसे कर्मो के बन्धन से
मुक्त किया जाय।

{2230}

{2231}

समाधि का तात्पर्य है-जहां मलिन
विचार राग-द्वेष से परिपूरित जो वृत्तिया है,
उससे परे हटकर शान्त-दान्त बन जाना, यही सच्ची
समाधि है, साधना जीवन में कितनी हुई और कितनी नही हुई, इसका
रिजल्ट अन्तिम समय में आता है, हमारे सुकृत्यो
की परछाया अन्तिम समय मे आती है, यदि अन्तिम समय की साधना सुधर
जाती है, तो भव्यात्मा के अनेक जन्म-मरण की स्थिति समाप्त हो सकती है।
बहुत जल्दी मोक्ष प्राप्ति का प्रसंग बन सकता है। अन्तिम समय को सुधारने
के लिए पहले से संथारा को संलेखित करना अति-आवश्यक है। सलेखना
के साथ सथारा की स्थिति जीवन मे आती है तभी वह संथारा देहातीत
अवस्था को प्राप्त हो, आत्मरमण के सम्मुख आ
सकता है और वह आत्मा सच्चे अर्थो में
पंडित की पदवी प्राप्त करती है।

शास्त्र श्रवण के माध्यम से अपनी
आत्मा को पवित्र बनाने के लिये मन
को अपने अण्डर-वश मे करना होगा। जिस
प्रकार कार का ड्राइवर कार को, मालिक की
आज्ञा के अनुसार चलाता है उसी प्रकार इस शरीर
रूपी कार का मालिक यदि आत्मा है तो उसका ड्राइवर
मन है। मन को आत्मा के स्वामित्व मे चलना होता
है। यदि आत्मा अपने स्वामित्व को न समझे ओर
मन को वश मे नही रखती हे तो वह मन
स्वच्छद रूप से भागता हुआ, एक्सीडेट
की तरह उस आत्मा को भव-परपरा
के अंधकूप मे पटक देता हे।

{2232}

{2233}

जिस प्रका पानी किसी व्यक्ति
विशेष का न होकर सम्पूर्ण प्राणी वर्ग
के लिये होता है, वह सभी की प्यास बुझाता है,
उसी प्रकार वीतराग वाणी भी सभी भव्यआत्माओ
की अन्तर की आत्मिक प्यास बुझाने मे समर्थ है।
किन्तु आज के मानव इस वाणी को उपेक्षित कर
एक बहुत बडी भूल कर रहे है, इस भूल के कारण
ही वे आज तक संसार मे भटकते आ रहे है। इस
भूल को हटाने के लिए सम्यक्
दर्शन की अत्यन्त आवश्कता है।

{2234}

नौकरो के
मन मे मालिक के
प्रति अनुराग पैदा
करने के लिए मालिक का
नौकर के प्रति
अनुराग पहले
आवश्यक है।

{2235}

इन दिनो पर्यूषण मे तो सभी को
यहा दया पालकर सामायिक का भव्य प्रसग
उपस्थित होना चाहिये। देखिये, अ भा साधुमार्गी सघ के
अध्यक्ष चुन्नीलाल मेहता आए है, पर सामायिक नही की हे। अरे ! मैं इनको
क्या कहू ? आप जो दूर बैठने वाले खुले मुह बैठे है, उन सभी को मेरा
कहना है कि आप सभी सामायिक करके साधना मे आगे बढे। सामायिक का
भव्य प्रसंग उपस्थिति करे ताकि आने वाले जैनेतर भाई-बहिनो पर प्रभु
महावीर के शासन का एक अनूठा प्रभाव पड सके।
मेहताजी गुरुदेव का सकेत पाकर अगले दिन
से सामायिक मे बैठ गये।

{2236}

जुआ, मास,
शराब, चोरी, शिकार
परस्त्रीगमन, वेश्यागमन
का त्याग करने वाला
व्यक्ति ही ''जेनी''
हो सकता हे।

{2237}

साधक यह भी अभ्यास करले
कि इस वक्त निर्जन एकान्त स्थान हे,
पर साधनावस्था का प्रसगउपस्थित होगा। उस प्रसगो पर
समीक्षण ध्यान का प्रयोग किस विधि से हो ? जिससे कि
यह समीक्षण दृष्टि परिमित समय मे ही न रहकर
जन-समुदाय के वीच मे भी प्रयोगात्मक रूप से जीवन मे
साकारता धारण करती रहे। जिससे व्यक्ति व्यावहारिक
क्षेत्र मे भी अपना मानसिक सतुलन कायम रख सके। यही
नही, वह प्रतिकूल व्यवहार को भी प्रतिकूलता
के रूप में न देख कर समभावपूर्वक
देखने की अभ्यासी वन जाए।

{2238}

पाप मन से पेदा होता है ओर
भावना मे तीव्रता आती हे तो वाणी से
कहने लग जाता है । फिर वाणी तक ही सीमित
नही रहता, मन मे इतना पक्का विचार हो जाता है
कि - मुझे अब शत्रु को खत्म कर देना है। तब वह
काया मे परिणत होने योग्य बन जायेगा। पाप का फल
पाप करने से पहले भी मिल सकता है, और पाप करने के
बाद भविष्य मे भी। भविष्य मे कुछ साल बाद भी मिलता
है। पाप के फल के पहले मिलने से यहॉ यही तात्पर्य हे
कि मानसिक परिणाम दूषित हुए ओर द्वेष बढा। दुश्मन को
खत्म करने की भावना तीव्र हुई और जब मारने के
लिये पहुॅचता है उस समय उसके दुश्मन को
भी ज्ञात हो गया कि यह पुरुष मुझे
मारने के लिए आ रहा है।

स्वच्छ मानसिक तंत्र और पवित्र
आध्यात्मिक वृत्तियो के स्वास्थ्य को सन्मुख
रखते हुए साधक समीक्षण दृष्टि से उस मूर्ख
शब्द को उसी कैप्सूल के रूप मे कल्पित करके उसके
भीतर की विकृतियो को मूर्ख शब्द की प्रतिक्रिया पॉइजन
के रूप मे देखे ओर उसका प्रवेश भीतर मे न होने दे।
उसके कर्णगोचर होते ही समभाव के साथ उस पर प्रशस्त
चिन्तन प्रारम्भ कर दे। उसी दृष्टि से अनुचिन्तन करे कि यह
मूर्ख शब्द रूप एन्टीबॉयटिक कैप्सूल मेरे मानसिक तत्र मे
पहुॅच कर बिखरा तो मानसिक तंत्र की जितनी स्वच्छता हे,
वह सम्पूर्णतया विकृत हो जायेगी। नियत्रण क्षत-विक्षत होगा।
मानसिक अशान्ति एव तनाव के साथ-साथ उस
जाति के उत्कृष्ट विष के तुल्य विद्वेष रूप
पॉइजन भीतर पैदा होगा।

{2239}

{2240}

आज चारो ओर सौन्दर्य प्रसाधनो का प्रकोप फैला
हुआ है । तभी तो शहर, गॉव, अमीर, गरीब, छोटे-बडे,
सब तक यह रोग भीषण रूप लिए हुए है जिसके दुष्परिणाम
मे शर्मनाक दुर्घटनाऍं घट रही है, क्रूर और घृणित अपराध हा रहे है तथा मानवी मूल्यो का चिन्तनीय ह्रास हो रहा है। क्या ऐसे प्रकोप को आप सब मिलकर मिटाना नही चाहेगे ? सिर्फ सारी वस्तुस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन मनन की और इस प्रकोप को मिटा देने के कठिन संकल्प की आवश्यकता है । इसके लिए आप प्रारम्भ मे क्या कदम उठावे-उसके कुछ सुझाव दे रहा हूॅ -

(१) अहिसा प्रेमी बहिने और भाई प्रतिज्ञा करे कि वे अनिवार्य अवसरो के अलावा स्वर्ण या रत्नाभूषणो तथा असंख्य जीवो की घात से बने सिल्क आदि के भडकीले परिधानो का उपयोग नही करेगे। सोना, चॉदी और रत्न षड्काय के कितने जीवो की घात के बाद प्राप्त होते है - यह आप जाने तथा यह भी समझे कि आप इस तरह ऐसी बेशकीमती चीजो का उपयोग करके मानवता विरूद्ध कार्य करते है तथा अपने जीवन को खतरे मे डालते है ।

(२) यह भी प्रतिज्ञा ले कि सौभाग्य सूचक चिन्हो को छोडकर अन्य लिपिस्टिक, स्नो, पाउण्डर, क्रीम आदि हजारो तरह के सौन्दर्य प्रसाधनो मे से किसी का भी कभी प्रयोग नही करेगे। हिसक सौन्दर्य प्रसाधनो को तो कतई काम मे न ले ।

(३) इन प्रतिज्ञाओ के साथ यह सकल्प ले कि यथाशक्ति धन ओर समय बचाकर इस तरह के अभियानो मे लगावे तथा स्वय अपनी अपनी जगहो पर अभियान छेडे कि कीमती वस्त्राभूषणो तथा सौन्दर्य प्रसाधनो का उपयोग बन्द किया जाय। ये वस्तुत शरीर मोह को घटाने तथा सादगी अपनाने के अभियान होगे।

इस प्रकार के अन्य अनेक उपाय हो सकते हे किन्तु मूल उद्देश्य यह हे कि यह घातक फैशनपरस्ती खत्म की जाय तथा प्राणियो के खेन से अपने मुॅह रगना वद हो । यदि वेशभूषा, रहन-सहन
और व्यवहार मे सादगी अपना ली जाय तो समूचा
सामाजिक वातावरण ही बदल सकता हे ।

{2241}

मानसिक वृत्ति की समग्र धाराएँ यदि अब्रह्मचर्य की
ओर जरा भी न झुकें और वास्तविक निर्धारित कार्य मे निरन्तर
सलग्न बन जायें तो यह सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता हे कि द्रव्यवीर्यरूप
धातु की परिस्खना नही हो पाती । क्योकि द्रव्यवीर्यरूप
धातु की परिस्खलना भाववीर्यरूप आन्तरिक-आभ्यन्तरी शक्ति पर निर्भर है ।
भावरूप आभ्यन्तरीय शक्ति अपने समग्र परिवार के साथ जिस भी कार्य मे
निमग्न होगी, उसी के कार्य की साधिकारूप अन्य भौतिक शक्ति में द्रव्यवीर्यरूप
धातु व्याप्त होती रहेगी। यानी भावरूप आभ्यन्तरीय वीर्यशक्ति से द्रव्यरूप वीर्य
नामक धातु को परिवर्तित, परिवर्धित, संक्रमित, रूपान्तरित आदि अनेक
अवस्थाओ मे सस्थापित किया जा सकता है । वशर्ते कि इस प्रकार की सही
विधि समग्र पहलुओ से ज्ञात कर सही दृढतर अत्यन्त विश्वसनीय संकल्पूर्वक
निरन्तर अभ्यास मे लाई जाय। यह कार्य मानवीय जीवन की सही दिशा की
निर्मल परिस्थिति मे शक्य किया जा सकता है ।
अशक्य स्थिति की कल्पना निराधार है ।

सर्व प्राणियो की गति एक-सी नही होती, न
एक-सी गति बनाई जा सकती है जिसको जितना
साधन-सामर्थ्य सामग्री के रूप मे उपलब्ध होता है वह
उतना कार्य-सम्पादन कर सकता है । गति का अर्थ सिर्फ शरीर
से चलना मात्र नही है, वरन् शरीरिक, मानसिक, वाचिक, आत्मिक व आध
यात्मिक आदि समग्र परिस्पन्द विकास के रूप में है। समग्र समर्थ सामग्री की
विश्व मे कमी नही है, लेकिन कमी हे सही विधि के सज्ञथ दृढतम् विश्वास कि ।
उस विश्वास का सही सम्पादन हर प्राणी में हर वक्त एक साथ नही बन पाता ।
अतः एक साथ सब प्राणियो की एक-सी गति नही हो पाती । जिनकी भी गति
जितनी मात्रा मे बने, वह यथा शक्ति, यथावकाश, यथासम्भव, सयोग की पवित्र
भावना रखे लेकिन अन्य प्राणियो की न्यूनाधिक गति देखकर स्वय की अवस्था मे
जरा भी विषमता का प्रवेश न होने दे। इसका पूरा ध्यान रखना तथा अन्य सव
विषयो को तटस्थ भाव से
गौण बना कर मुख्य रूप से स्वयं को सही विधि पूर्वक
निर्माण-कार्य मे संलग्न करना नितान्त आवश्यक हे ।

{2242}

भाषा का सुसस्कारो से विभूषित होना इसी कारण अनिवार्य माना गया है कि वह सदा सत्य से अनुरंजित रहे । यही भाषा का विवेक है । भाषा विवेक को विकसित बनाने के कुछ उपाय इस प्रकार हो सकते है -

(१) कम से कम बोला जाय और जितना अति आवश्यक हो उतना ही बोला जाय । इससे वाणीशक्ति का सचय भी होगा ।

(२) बोलने से पहले दो क्षण सोचकर बोला जाय कि उसे क्या बोलना है और किस विधि से बोलना है । भाषा-विवेक को सतत जागृत रखने का यह कारगर उपाय है ।

(३) मौन रखने की प्रवृत्ति का विकास किया जाय, जिससे विचार एवं आचार शक्तियो को सन्तुलित बनाने का अवसर मिल सके ।

(४) किसी को कटु, तुच्छ या कष्टकारी वचन न बोले जायें। यह विचार सामने रखा जाय कि कोई दूसरा उसे ऐसा ही कटु, तुच्छ या कष्टकारी वचन बोले तो उसके दिल पर कैसी गुजरेगी ।

(५) एक-एक वचन जो किसी को भी बोला जाय या भाषा का प्रयोग किया जाय, वह झूठे दोषारोपण से युक्त कभी नही होना चाहिये और न ही किसी के रहस्य या गोपनीय तथ्य का उसमे पर्दाफाश हो।

(६) भाषा-विवेक की कसौटी इसमे हे कि जो कुछ बोला जाय, वह सदा मिष्ट हो । वचनो मे दरिद्रता क्यो ? बोलने मे तो पेसा-टका लगता नही है, फिर उसमे कजूसी क्यो की जाय ? वाणी मे मिठास घुला हुआ रहे-यह तो पूरी सरलता से किया जा सकता है।

(७) जो कुछ बोला जाय, वह मिष्ट तो हो, किन्तु इष्ट और हितकारी भी हो, भाषा का प्रयोग करते समय प्रत्येक शब्द ऐसा हो ही तथा उसका उच्चारण भी इसी तरह किया जाय कि वह सामने वाले को मिष्ट, इष्ट तथा हितकारी प्रतीत हो ।

{2244}

प्रत्येक प्राणी का स्वभाव विभिन्न पाया जाता हे । एक
जीव जिह्वा से उच्चरित शब्दो के वातावरण मे रहना प्रसन्न
करता है । अन्य शाब्दिक कोलाहल से दूर रहना प्रसन्न करता हे, पर यदि वह
आन्तरिक साधनारत है, तो आन्तरिक कोलाहल सुनने लग जाता है। आन्तरिक
कोलाहल तो बाह्य कोलाहल से भी अधिक जटिलता को लिये हुए होता हे। उस
अवस्था मे बाह्य तो कुछ भी सुनाई नही देता और आन्तरिक श्रवणधारा प्रवाह से
निरन्तर सुनाई देने लगती है। ऐसी दशा मे साधक अत्यधिक विचक्षण हो, तब तो
उस आन्तरिक निरन्तर श्रवण के ऊपर उठकर निष्कर्ष निकाल पायेगा। वरना
उसी मे उलझ जायेगा । तुष्टि के बजाय अतुष्टि होगी और उद्वग्नि बन
जायेगा । जब भी पुन शाब्दिक कोलाहल मे लौटेगा तब अति नीख शाति का
अनुभव होगा । क्योकि शाब्दिक कोलाहल निरन्तर एक-सी ध्वनि मे नही होता,
पर इस बाह्य वातावरण में भी वास्तविक शांति तो प्राय नही के तुल्य रहती हे।
इसमे प्राय सारी दुनिया गोता खा रही है तथा आन्तरिक
तथ्य को सही रूप मे समझना अशक्य-सा बना हुआ है।

विचारो की दुनियां विचारो को विदित नही कर
पा रही है। विचार ही जीवन का मूल स्त्रोत है। इन्ही के
आधार पर जीवन का निर्माण या संहार बनना या बिगडना होता
है। विचारो की जडो मे से ही अमृत या जहर बनता है । इस विराट् विश्व मे
विचारो का विभिन्न वैचित्र विभिन्न रूपो, प्रकारो, कार्य- कलापो आदि के रूप मे
परिलक्षित हो रहा है । पर आश्चर्य इस बात का है कि मूल तथ्यो को समझा
नही जा रहा है । ऊपरी - ऊपरी परत को ही सब कुछ समझ लिया गया है।
उसी के ऊपर प्राय समस्त मानव वर्ग तैर रहा है ओर मान रहा है कि सब पा
लिया गया हैं। पर वस्तुस्थिति यही तक सीमित नही है। यह तो एक छोर है,
कुछ अश है । अन्य सभी अश रहस्यमय गुफा की तह मे सन्निहित है। उनकी
तरफ दृष्टि नही जाने से जीवन की उलझने बडती जा रही हे । जो भी यह
बोलते है कि हम सुलझ गये वे प्राय· अधिक उलझे हुए हे । जीवन की
वास्तविक गुत्थी सुलझे
बिना उलझने समाप्त नही हो सकती । अत मूल स्त्रोत
के रहस्य की ओर बढना नितान्त आवश्यक है ।

{2245}

{2246}

मानव अपनी स्थिति को नही समझने के कारण
व्यर्थ की बातो मे अपनी मानसिक शक्ति लगाता रहता
है और व्यर्थ की कल्पना से रात-दिन सोचा करता है कि
वह व्यक्ति मेरा है, मेरी पार्टी का है, मै उसको अपना बना लूँ, उसके
साथ मित्रता कर लूँ, और जो मेरा नही है उसकी उपेक्षा कर दूँ, क्योकि
वह मेरे काम मे नही आता है । अमुक काम तो आता है, पर अन्दर मे
निन्दा करता है । मेरी जड काटता है । मेरी प्रसन्नता को बर्दास्त नही
करता । अत उससे संबध प्रकट मे न तोड कर उदासीन हो जाना
ठीक रहेगा, आदि न मालूम किस-किस को लेकर इतना क्या सोचता है,
जिसको वह स्वय भी नही समझ पाता । और इस प्रकार कि कल्पना से
वह अपनी शक्ति को बर्बाद करके चल बसता है । कुछ भी,
(सजृनात्मक) कार्य नही कर पाता । यह माननव मन कि बडी
कमजोरियो मे से एक है इसको समाप्त करने के लिये मन मे शुद्ध
सकल्प की नितान्त आवश्यकता है । इसके लिये अपने विचारो को साफ
करने की पद्धति अपनानी चाहिये। वह यह है कि प्रात कालीन किसी भी
नियत समय मे आलस्य को दूर हटाकर एकान्त स्थान मे सर्वथा प्रकार
से परिपूर्ण सिद्ध प्राप्त आत्मा को नमन कर लक्ष्य स्थिर किया जाय और
सर्वथा प्रकार से सभी पापकारी तथा क्षुद्र प्रवृत्तियो का कुछ समय पर्यन्त-
परित्याग के दृढ सकल्प पूर्वक आचरण मे परिणत अवस्था बनाई जाये,
ताकि उन प्रवृत्तियो से ऊपर उठने की क्षमता प्राप्त की जा सके ।
तदन्तर वास्तविक स्थिति को दृष्टि से विचार किया जाय कि मै जो कुछ
भी सोच रहा हूँ, कर रहा हूँ, उसमे कितना
व्यर्थ तथा कितना किस समय तक काम मे आने वाला हे।
इस विषय का भली-भॉति विचार करने पर जीवन की
महान् विशालता का अनुभव होने लगेगा और
जीवन-विज्ञान की कला बढेगी ।

{2247}

सदा पवित्र विचारो का सिलसिला उच्चतम,
प्रगाढ श्रद्धा के साथ चलते रहने पर जीवन की
अवस्था उसके अनुरूप ढल जाती है । जीवन मे श्रद्धा मूलाधार
है। श्रद्धा के मूल पर जीवन की भव्य मजिल बनी हुई है। एक दृष्टि से
जीवन-वृक्ष का मूल ही श्रद्धा है । जैसा-जैसा विचार प्रवाह श्रद्धा पूर्वक बनता है,
वैसा-वैसा उसके जीवन-निर्माण का कार्य बनने लगता है । विचार श्रद्धा के
सज्ञथ है, तो उसका जीवन कम से कम उत्तम मनुष्य रूप से बन सकता है ।
अमध्यम अवस्था को श्रद्धापूर्ण विचारो से देवरूप जीवन की दशा बन जाती
है । उत्कृष्ट श्रद्धा पूर्वक विचारो का प्रवाह निरन्तर वर्धमान गतिमय चरम सीमा
पर पहुँचने पर उत्कृष्ट जीवन की परम पवित्र दशा का निर्माण कर देता है ।
कम से कम और उत्कृष्ट के मध्य सुश्रद्धा पूर्वक विचार भी भिन्न-भिन्न रूप मे
पाये जाते है। तदनुसार जीवन स्वरूप
भी वैसा ही बनता जाता है । अत. अपेक्षाकृत मध्यम
जीवन अनेक तरह का बन जाता है ।

निकृष्ट श्रद्धा का परिणाम अति भयकर होता
है । उससे मानव जीवन दानव जीवन के तुल्य या
पशु जीवन के तुल्य बन जाया करता है। मिथ्याअधकार
से परिपूर्ण मानव अपने आप को कहा ले जाकर पटकता है,
इसकी कल्पना भी साधारण मनुष्य के लिये दु शक्य सी है । श्रद्धा के अनुरूप
ही उसका लक्ष्य बनता है। लक्ष्य ऊपर का भी बनता है और नीचे का भी ।
अधम श्रद्धावान् का लक्ष्य प्राय नीचा ही बनता है। लक्ष्य के अनुरूप ही चिन्तन,
मनन, निदिध्यासन बनता जाता है। जैसा-जैसा निदिध्यासन बनता जायेगा,
वैसा-वैसा उसके जीवन का परिणाम बनता जायेगा। ऊपर से व्यक्ति कितना ही
उन्नत ज्ञात होता हो, लेकिन लक्ष्य उन्नत नही होने से वह नीचे की ओर ही
जाता है। इस जन्म की अवस्था तो पूर्व जीवन का परिणाम है, लेकिन इस
जीवन का परिणाम भावी जीवन बनता है। वह इस जीवन मे भी बन सकता है
और अन्य जीवन मे भी ।
अत· मानव को श्रद्धा सृजन के क्षेत्र मे अति ही
सावधान रहने की आवश्यकता है ।

{2248}

शारीरिक अवस्था को व्यस्थित

रखना भी आत्म-शक्ति पर निर्भर है । यद्यपि

पौद्‌गलिक कार्यपदार्थ के अन्दर विचित्र स्वभाव बनता

है, तथा उस स्वभाव का समय पर परिपाक भी होता है।

उस परिपाक के फलस्वरूप विचार आदि अवस्थाओ पर असर

भी हो सकता है। लेकिन उस वक्त या उस परिपाक के पूर्व ही विचारो का पुट दिया जाय, तो पदार्थो के पूर्व रहस्यमय परिवर्तन आ सकता है। जिस भी अवस्था के विचार परिपक्व होगे, उसी अवस्था मे पदार्थो का परिवर्तन किया जा सकता है। अर्थात् इस विराट् विश्व मे आत्मीय शक्ति सर्वोपरि है । उसका मोड सही दिशा की ओर हो, तो समग्र वायुमण्डल मे इच्छानुसार परिवर्तन लाया जा सकता है। इस शक्ति का सही अनुभवकर्ता स्वय के शरीर मे व्याप्त वीर्य नाम के धातु को स्खलित नही होने देकर अन्य शक्ति मे परिवर्तन कर देगा। स्खलित होने देना या नही, इसका नियत्रण आत्मीय शक्ति पर निर्भर है। आत्मीय विशेष शक्ति के जागृत नही होने तक ही अन्य शक्तियॉ

अपना देश अपना कार्य कर गुजरती है ओर वे

विभिन्न प्रकार की हो जाने से विभन्नता

पैदा कर देती है । यही अवस्था प्राय

प्राणी-वर्ग मे चल रही हे ।

{2250}

मानसिक विकारो को
समझे बिना उनका निवारण होना
अशक्यसा है। उनको समझने का कार्य
भी सहज नही है, क्योकि इन विकारो का
अति सूक्ष्म-से-सूक्ष्म एव अति स्थूल-से-स्थूल
जाल प्राय· सर्वत्र व्याप्त है । स्वय आत्मा भी उससे आच्छदित -आवृत्त
है तथा उनका रग इतना फैला
हुआ है जिससे किकर्तयविमूढ-सी दशा बन जाया
करती है । ऐसी अवस्था मे भावमन अपने आप को पहचानने मे भी
असमर्थ-सा बन रहा है। मै क्या हूँ?
मेरा अस्तित्व किसके साथ है ? मै किसके आधार
पर कार्य कर पा रहा हूँ ? किस अवस्था से मै कैसे अपनी वास्तविक
दशा को पहचान पाऊँ ? इस प्रकार इसके साथ अनेक जटिल प्रश्न
उत्पन्न हो जाते है।

इन प्रश्नो का हल भी अवश्य बन जाता है। इनका
सही हल आये बिना जीवन सम्बन्धी तमाम समस्याओ
का हल सम्भव नही है। सभी समस्याएँ मानसिक
विकारो से बनी हुई है । अतः उनकी जानकारी
करने के लिए सतत् जाग्रत बन कर सही
दृढ सकल्पपूर्वक निरन्तर अभ्यास प्रारम्भ
करना ही श्रेयस्कर है। और वह भी
सत्कारपूर्वक बनना आवश्यक है।

{2251}

मानव–जीवन मे सर्व शक्ति
सम्पन्न बनने के साधन बीज रूप मे
विद्यमान रहते हैं। विल पॉवर (आत्मशक्ति)
के अनुपात से विकसित होने का चान्स रहता
है। आत्म शक्ति का मोड दृढत्तर आन्तरिक लक्ष्य
के अनुकूल प्राय बन जाया करता है। आन्तरिक
शक्तियॉ जिस कार्य के लिए अत्यन्त तन्मयता के
साथ संयुक्त बन जाती है, प्राय शरीर के महत्वपूर्ण
अंग भी अपने–अपने स्थान पर रहते हुए,उसी कार्य के
सम्पादन मे सहयोगी बनते हैं। उस वक्त शारीरिक रस–ग्रन्थियॉ
अपने–अपने स्थान में उसके अनुरूप
रस–संचय में संलग्न बनती हैं। उस रस के स्रावसे
भोजन आदि की अवस्था मे रासायनिक प्रक्रिया बनती
रहती है, जो कि शरीर की विभिन्न अवस्थाओ मे
रसादि रूप मे जो धातुओ की अवस्था परिगणित है,
उनमे विल पॉवर के अनुरूप कार्य–साधिका की शक्ति
उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार व्यवस्था निरन्तर रूप से बढती रहे,
तो धीरे–धीरे मानव शरीर मे सर्व शक्ति समूह का अवस्थान व्यक्त
होते हुए बीज–वृक्ष का रूप धारण कर सकता है। यानि किसी भी
शक्ति के लिये परमुखापेक्षी न रह कर स्वय वही अन्यो
को शक्ति–प्रदान–विधि के रूप में विधाता
साबित हो सकता है। अत. मानव–जीवन
मे सही शक्तियो को सावधानी के साथ
विकसित करने की आवश्यकता है।

शक्ति-सचय के पहले
शक्ति-परिक्षण आवश्यक हे।
शक्ति-परिक्षण का तात्पर्य शक्ति
पहिचानने से है। रत्नसचय के पूर्व
रत्न-पहचान-रूप परिक्षण आवश्यक बन जाता
है। पत्थर और रत्न दोनो का ज्ञान तब तक नही
बनेगा तब तक व्यक्ति रत्नसचय भी नही कर पायेगा।
आध्यात्मिक शक्ति-रत्न से भी अतिशय महत्वशाली है। उसकी
पहचान अन्तर मे ही हो सकती है। अन्तर मे
पत्थर के समान कई वृत्तियॉ भी विद्यमान है। उनका विज्ञान भी
आवश्यक है। अन्तर मे रहने वाली अनेक वृत्तियॉ आन्तरिक शक्तियो
की तरह प्रतिभाषित होती
है। लेकिन उनका निखालस रूप ज्ञात नही हो पाता।
वे अन्यान्य विषयो के रगो से ओत-प्रोत रहती है। उन रगो की चमक
शक्ति की वास्तविकता को छिपा देती
है। जैसे कॉच की चमक युक्त पत्थर रत्न का आभास कराते रहते
है, वैसे ही आन्तरिक शक्तियो की अवस्था बनी रहती है। अन्तर मे
रहने वाली तमाम अवस्था
का सूक्ष्मता से अवलोकन होने पर उनकी
विभिन्न चमक तथा असली और नकली
दशाओ की सही तरीके से पहचान
हो सकती और आध्यात्मिक शक्ति
सचयो का कार्य अतीव
सुलभ बन सकता है।

शारीरिक उतार--चढाव को देख
कर मन मे उतार--चढाव लाना योग्य
है। मन की महत्वपूर्ण शक्ति का अकन शरीर
के धरातल पर ही नही होना चाहिए। शरीर का
मन पर असर अवश्य पडता है पर मन का भी तो
असर शरीर पर पडता है। शरीर और मन के असर की तुलना की
जाय, तो मन का असर अधिक एवं महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। आस–पास
के वायुमण्डल से मन प्रभावित होता रहा है तथा साधरण व्यक्तियो का
मन वातावरण के अनुरूप अपने को बनाने की कोशिश करता है एएवं
तदनुरूप बनकर दृढसकल्पी बन जाता है। वैसी अवस्था में शरीर की
दशा भी उसी के अनुरूप बन जाया करती है। जगल मे रहने वाली
चिडिया वैसी ही वर्ण वाली बन जाया करती है, जिन घनी वनस्पतियो
मे वे चिडियाएँ रहती है। उनका रंग लगभग वनस्पति के रग का बन
जाया करता है। उस जंगल मे
बैठी हुई चिडिया एकाएक मालूम नही होगी। जब वे
उडेगी तब ज्ञान होगा कि चिडियाएँ है। इससे यह
भली–भाँति सिद्ध हो जाता है कि मन के ऊपर
वातावरण का असर तथा मन का शरीर पर
महत्वपूर्ण असर पडता है। किन्तु
विशिष्ट मन विलक्षण होता है।

आन्तरिक वृत्तियॉ अत्यधिक जटिल,
दुर्गम व दु साध्य है। उन पर नियंत्रण के
लिए सावधानीपूर्वक विवेक के साथ तप, जप,
साधना की नितान्त आवश्यकता है। जीवन से सम्बन्धित
समस्त बाह्य वैभव से छूटना यथासम्भव आवश्यक है। साधनावस्था
मे सहायक अन्न, वस्त्रादि के अतिरिक्त सभी वस्तुऍ परित्यक्त करने पर आगे
के तपादि कार्य सफलतापूर्वक किया जा सकते है। जिस भी बाह्य वैभव का
त्याग हो, वह आन्तरिक भावनापूर्वक हो, ताकि आन्तरिक वृत्तियों को पहचानने
में अधिक सुविधा रह सके। बाह्य वैभव का त्याग भी काफी हद तक आन्तरिक
कचरे को साफ रखता है। यह तो सबसे पहले अत्यावश्यक कदम है। इसका
त्याग किये बिना एतद्विषयक आन्तरिक विकृतियॉ हल्की नही बन सकती।
आन्तरिक वृत्तियॉ जितनी हल्की होगी, उतनी ही ऊपर उभरेगी। जो वस्तु गूढ
ग्रन्थि को तोडकर हल्की बनती है, वह वस्तु ऊपर तैरने लगती है। तैरती हुई
वस्तु शीघ्र ही पहचानी जा सकती है एवं पकडकर निकाली भी जा सकती है।
वैसे ही आन्तरिक विकार बाह्य वैभव की पकड के साथ भारी एव अत्यधिक
गहनता मे होते हैं। बाह्य वैभव का यथासम्भव, यथाशक्ति त्याग कर देने पर
आन्तरिक विकार की अति
हल्के हो सकते हैं। जब हल्के बनकर तैरने की
अवस्था मे आयेगे, तब पहचानने मे शीघ्र आयेंगे
तथा पकडकर नियत्रण मे भी लिए जा सकेगे।
वैसी दशा में आन्तरिक वृत्तियॉ सरल,
सुगम्य, सुसाध्य बन जाती है।

आज जीवन मे अहिसा के व्यवहार पर अधिक बल
दिया जाना चाहिये। आचरण मे जहाँ-जहाँ हिसा का असर
दिखाई देता हो, उस असर को मिटाने के लिये अहिसा के व्यवहार
को प्रभावशाली बनाया जाय। अधिकाश व्यक्ति सीधे तौर पर हिसा से जुडे हुए
नही होते है फिर भी उनके कई ऐसे कार्य हो सकते हैं जिनसे व्यक्त या अव्यक्त
रूप से हिसा पैदा होती या बढती हो। अत उन कार्यो के प्रति सावधानी दिलाई
जाय ताकि जीवन का समग्र आचरण अहिसा की शीतलता से आप्लावित हो सके।

इस दृष्टि से यहाँ कुछ उपाय सुझाये जा रहे है, जिन्हे अपनाया जाना चाहिये-

१ सप्त कुव्यसनो का त्याग करके आचारण मे अहिसा का समावेश किया जाना चाहिए, क्योकि इन कुव्यसनो के सेवन से हिसा का फैलाव होता है तथा पापपूर्ण प्रवृत्तियाँ जटिल बनती है।

२ परिवार ओर समाज के सचालन मे ऐसे सहयोग के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये जिससे व्यवसाय-व्यापार सम्बन्धी द्रव्य हिसा तथा पारस्परिक एकता सबधी भाव हिसा कम हो और सरकार की वृत्ति सशक्त बने।

३ राष्ट्रीय एकता के प्रति समर्पित रहना चाहिये तथा विघटनकारी व उग्रवादी हिसक प्रवृत्तियो से देर रहते हुए पारस्परिक सगठन और प्रेम भाव को विकसित करने मे सहायक बनना चाहिये।

४ देश-विदेशो मे शाकाहार को प्रोत्साहित करने के प्रयत्न किये जाने चाहिये और मांसाहारियो को समझाया जाना चाहिये कि हिसा करके भी उन्हे वे तत्त्व नही मिलेगे जो पोषक तत्त्व शाकाहार से प्राप्त होते है।

५ नई पीढी के अहिसक निर्माण के उद्देश्य से बालक-बालिकाओ मे नेतिक एव आध्यात्मिक सुसंस्कारो का बीजारोपण किया जाना चाहिए तथा उनकी वेसी ही शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

६ आत्म समानला एवं आत्म स्वाधीनता की प्रेरणाओ का प्रसार किया जाना चाहिये ताकि उसके आधार पर अहिसा के विधि पक्ष का अधिकाधिक विस्तार हो।

७ इस जीवन व्यवहार की अपनी अन्त प्रेरणा की ज्योति निरन्तर जलती रहे-अपने निज के आचरण के आदर्श से तो अपनी कर्मठता की निष्ठा से भी। अपने नित्य प्रति की दिनचर्या से अहिसा की ही झलक मिले-

इसका भी पूरा ध्यान रखा जाय जेसे रात्रि भोजन न करे,
उत्तेजक भोजन न ले आदि।

{2256}
गरीबो
को जो खूब
सताते। दुःख अपना
वे सदा
बढाते।
{2257}
दीनों
की जो मजाक
उड़ावे वे दीनता अपनी
बुलावें
{2258}
साधु
होकर स्वाद न
जीते वे अमृत को
कभी न
पीते
{2259}
साधु
होकर हिंसा
करते वे साधुता नहीं
स्वांग को
रचते।

{2260}
जाति
पांति का भेद
न रखना। गुण कर्म
की वृत्ति
रखना।
{2261}
सच्ची
मित्रता करना
चाहो। स्वार्थ कभी
नही उसमें
लाओ।
{2262}
खून
के रिश्ते कभी
न तोडो। चाहे तुम
कितने भी
झगड़ों।
{2263}
लोहे
को लोहा ही
काटे देखों भाई
को भाई
मारे।

{2264}
बहिनों
की जो नही
रक्षा करते। वे भक्षक
नही सुख से
रहते।
{2265}
पशु-पक्षी
भी प्रेम से रहते।
क्या मानव तुम नहीं
समझते।
{2266}
अनुकम्पा
का स्त्रोत बहाओ।
कर्म कीच को बहा ले
जाओ।
{2267}
ज्ञान
का दीपक अपना
जलाओ। अज्ञ अंधेरा
भगाओ।

{2268}
रोग
अपना मिटाना
चाहो, तो मरीजों
का तुम रोग
मिटाओं।
{2259}
सम्मान
यदि तुम
पाना चाहो। अपमान
करने की वृत्ति
हटाओ।
{2270}
दहेज
समाज की वह
ज्वाला है जल गई
उसमें कई बाला
है।
{2271}
दहेज
के लोभी
समझ न पाते कीडी न
मार मानव
मरवाते।

{2272}
प्रत्यक्ष-
परोक्ष में दहेज
जो मांगे नैतिकता
उसे छोड के
भागे।
{2273}
बन्धन
मुक्ति पाना
चाहो। बगुला
भक्तिछोड के
आओ।
{2274}
धर्म-
ध्वाजा फहराना
चाहो तप-संयम
में रमते
जाओ।
{2275}
संगठन
में शक्ति भारी
यक्ष राक्षस की
शक्ति हरी।

{2276}
किसी
जीव को नही
सताना सुख शांति
सदा ही
पाना।
{2277}
प्रभु
भक्ति में मन
को लगाना। पापों
से सदा मुक्ति
पाना।
{2278}
बीडी
जर्दा कभी न
खाना। सत्संगत
में रोजाना
आना।
{2279}
मांस
मदिरा जो खाता
है महा नरकों में वह
जाता है।

{2280}
परनारी
को बहिन जो
समझे। इज्जत उसकी
किभी न
बिगडे।
{2281}
भाई-भाई
में प्रेम जो रखते
कभी नही वे दुःख
से मरते।
{2282}
कितना
भी छुपा लो पाप
पर होगा एक दिन सही
इन्साफ।
{2283}
अफीम
बोने से नही
गन्ना मिलता। दुःख
देने से सुख नही
मिलता।

{2284}
दिया
हुआ नहीं
खाली जाता रखा हुआ
नहीं काम में
आता।
{2285}
मानवता
की जो सेवा
करता। सच्चा मानव
वही कहाता।
{2286}
तेरा मेरा
भेद न रखना
मानव—मानव को एक
समझना।
{2287}
पैसे
देकर छूते खाना,
दारू पीकर इज्जत
गंवाना।

{2288}
शाकाहारी
नहीं अण्डा खावें।
मांस समझ उसे दूर
हटावें।
{2289}
दु:ख
दर्दो से हटना
चाहो। मांस कभी
नहीं मुंह में
खाओ।
{2290}
जग
में इज्जत
अपनी चाहों। दान
शील को खूब
कमाओ।
{2291}
प्रीति
भाजन बनना
चाहो। क्रोध कभी
नहीं मन में
लाओ।

{2292}
टेढ़ी
मेढी चाल न
चलना। सरल भाव
से मन को
रखना।
{2293}
कपटी
का कोई मित्र
न बनता। जो होता
नहीं वह भी
टिकता।
{2294}
मान–प्रतिष्ठा
अपनी चाहो। बडों
की इज्जत खूब
बढ़ाओं।
{2295}
देश
की रक्षा अपनी
रक्षा। देश की रक्षा
धर्म की
रक्षा।

{2296}
दु:ख
पराए मिटाओगें।
तो सुख शांति को
पाओगें।
{2297}
परिवार
में शांति लाना है।
तो सहनशीलता
अपनाना है।
{2298}
जीवन
का मूल्यांकन
कर लो। धर्म भाव
में उसको रंग
लो।
{2299}
बह्मचर्य
का पालन कर
लो। श्रेष्ठ तप है इसे
समझ लो।

{2300}
जीवन
को मर्यादित कर
लो। आत्म शक्ति को
उसमें वर
लो।
{2301}
क्रोध
प्रीति का विनाशक
है। सर्प जहर से भी
घातक है।
{2302}
सारे
सद्‌गुण नष्ट
हो जाते। अति लोभ
जब मन में
लाते।
{2303}
विषमता
को दूर भगाओ।
समता से मन को
रमाओ।

{2304}
जीवन
का सही
रूप सजाओ। हिंसा
चोरी जल्दी
हटाओ।
{2305}
चोर्य
कर्म नहीं सुख
को देता। जो होवें,
वह भी हर
लेता।
{2306}
उन्मुक्त
सेक्स दुःख
संवर्धक है। रोष कलह
का प्रवर्धक
है।
{2307}
जहाँ श्रृंगार
की अनुगामिता
है। वहाँ आधुनिकता
नहीं अधोगामिता
है।

{2308}
नेत्रों
में नही लाज–शर्म
है। ऐसी महिला
बेशर्म है।
{2309}
करनी
कथनी एक नहीं
है साधुता नहीं वहॉ
रही है।
{2310}
जहॉ
सुकृत्यों पर मांग
रही है। वहॉ सच्ची
सेवा नहीं रही
है।
{2311}
सुकृत्य
कर भूलते जाओ।
आगे से आगे बढ़ते
जाओ।

{2312}
नि:स्वार्थ
भाव से दिया गया
दान। स्वयं के सुख का
विस्तार करता
है।
{2313}
अगर तुम
धर्म नही कर सकते
हो। तो जो कर रहे हैं,
उसकी निन्दा मत
करो।
{2314}
क्रोध
की आग
क्षमा के पानी से बुझाई
जा सकती
है।
{2315}
स्वार्थो
से भरी मित्रता,
मित्रता न होकर शत्रुता
पर मित्रता का
आवरण
है।

{2316}
बिना
आचरण का ज्ञान।
गधे पर भार के
तुल्य है।
{2317}
आधुनिकता
के नाम पर अश्लील
आचरण दुःख
प्रदायी है।
{2318}
चिन्ता
चिता है, अतः
चिन्ता नही चिन्तन
करों।
{2319}
मन से
भी किसी के प्रति
अशुभ चिन्तन
हिंसा है।

{2320}
मृत्यु
को देखो,
न्दगी सफल हो
जाए।
{2321}
बह्मचर्य
सभी तपों में
उत्तम है। तो अबह्मचर्य
मोह महा पाप
है।
किसी
को अपना
ना है तो उसके
णों का कीर्तन
करो।
{2323}
निन्दालु,
इर्ष्यालु, झगडालु
कहीं भी प्रतिष्ठा
नही पाते।

{2324}
किसी को
अवगुणवाद करना।
स्वयं को अवगुणी
बनाना।
{2325}
देश
को संस्कारित
करने के लिए महिलाओं
को संस्कारित होना,
पहले आवश्यक
है।
{2326}
अनुकरण
करो, पर
अंधानुकरण
नहीं।
{2327}
सच्चा
धनवान वही
है, जो निर्धनों के
साथ सम्मानजनक
व्यवहार
करें।

{2328}
सच्चा
ज्ञानवान वहीं है,
जो अज्ञानियों को ज्ञानी
बनाने का प्रयास
करें।
{2329}
माता–पिता
की सेवा करना
धर्म का ही एक
अंग है।
{2330}
जो
माता–पिता का
अपमान करता है वह
कभी भी सम्मान
नहीं पाता।
{2331}
पत्नी,
पति की बराबरी
करके अपने दुःख को
आमंत्रित करती
है।

{2332}
राष्ट्र
की रक्षा से ही
धर्म की रक्षा
होगी।
{2333}
जिस
धर्म में अहिंसा
हो, वहीं धर्म मेरा
है।
{2334}
क्रोध
एवं अंहकार में
किये गए निर्णय सही
नही माने
जाते।
{2335}
सत्य कभी
कड़वा नही होता
और जो कड़वा होता
है, वह संपूर्ण सत्य
नहीं होता।

नौकरों
के साथ नौकर
सा व्यवहार न कर भाई
जैसा व्यवहार
करो।
{2336}
{2337}
संगठन
तभी टिकता है
जहां समर्पण हो। अपनी
बात का हठाग्रह
न हो।
{2338}
किसी
का दुर्गूण बताने
के लिए पहले उसके
सद्‌गुणों की प्रशंसा
करो।
{2339}
बिना
योग्यता के केवल
पद या उपाधि से
प्रतिष्ठा नही
टिकती।

मोह या
स्वार्थ के वशीभूत
किये गए निर्णय संगठन
को तोडने वाले
होते है।
{2340}
{2341}
चुनावी
प्रचार अब जनता
को, ज्यादा भरमा नही
सकता।
{2342}
जनता
को समझने से
पहले स्वयं को समझना
होगा।
{2343}
राजनीति
पर धर्म का नियंत्रण
आवश्यक है।

{2344}
राजनेता
धर्म नेता के पीछे
चले न कि राजनेताओं
के पीछे धर्म नेता
चले।
{2345}
इंसानियत
के बिना धर्म
क्रियाएं मात्र प्रदर्शन
है।
{2346}
अपना
ही नहीं अपने
परिवार की अपेक्षाओं
का आदर करना भी
सीखों।
{2347}
कम
बोलो, मधुर
बोलो पर सत्य
बोलो।

किसी पर कटाक्ष करना। कुटिलता का परिचायक है।
{2348}
{2349}
दर्शन करो, प्रदर्शन नहीं।
{2350}
प्रवचन का रस लो, पर निन्दा का नहीं।
{2351}
स्वाध्याय करो, पर अध्याय नहीं।

{2352}
प्रभु में
लीन बनों, इन्द्रियों
में नहीं, गुण गाओ,
पर स्वयं के
नहीं।
{2353}
मेरा
है, वह सत्य नहीं,
सत्य है वह मेरा
है।
{2354}
भ्रूण
हत्या महा पाप है
देश एवं समाज के लिए
घोर अभिषाप
है।
{2355}
चरित्र
का पतन ही
सबसे बडा पतन
है।

{2356}
सम्मान
करोगें, तो सम्मान
पाओगें।
{2357}
जैसा
तुम तुम्हारे लिए
चाहते हो, वैसा ही
दूसरों के लिए
करो।
{2358}
जैसा
कहोगें, वैसा
सुनोगें। जैसा करोगें
वैसा भरोगे।
{2359}
जन्म
लेना छोडना
है तो जन्म देना
छोडो।

{2360}
बिना
इन्सानियत के
धर्माचरण व्यर्थ
है।
{2361}
धर्म
की सुरक्षा के
लिए राष्ट्र की सुरक्षा
आवश्यक
है।
{2362}
शराब
पिना, पैसे देकर
पागल बनना
है।
{2363}
मांस खाना,
इंसान की प्रकृति
नहीं है मांस खाकर अपने
पेट को कब्रिस्तान
बनाना है।

{2364}
निर्माण
में जितना समय
लगता है, उतना विध्वंस
में नही।
{2365}
किसी
का घर नहीं बना
सकते। तो उसे उजाडो
भी मत।
{2366}
किसी
के दुर्गुण देखने
वाला इंसान स्वयं दुर्गुणी
बन जाता
है।
{2367}
किसी
की निन्दा करना
महापाप है।

{2368}
विश्व
शांति का एक मात्र
अमोघ उपाय है, समता
दर्शन।
{2369}
मानवता
की रक्षा करने
वाला इंसान ही महान्
बनता है।
{2370}
धन
के संग्रह में
सुख नहीं दान
में है।
{2371}
यदि
तुम किसी की
रक्षा करोगें तो एक दिन
तुम्हारी भी रक्षा
होगी।

{2372}
क्रोध
वह आग है, जिसमें
आदमी, स्वयं जलकर
भस्म हो जाता
है।
{2373}
अकडने
वाला इंसान,एक
न, एक दिन टूटता
ही है।
{2374}
इच्छाएं
अनन्त हैं,
उसकी पूर्ति संभव
नही।
{2375}
इच्छाओं
की पूर्ति में सुख
नही उसे निःशैफ करने
में सुख है।

{2376}
क्रोध
का जबाव
मुस्कारहट से
दो।
{2377}
किसी
से अपेक्षा रखना
ही दु:ख को आमंत्रित
करना है।
{2378}
मान
का जवाब,
विनम्रता शालीनता से
दो।
{2379}
पर नारी
पर कुदृष्टि डालना
भी घोरपाप है।

{2380}
चरित्र
भ्रष्ट नारी की आत्मा
सदा-सदा के लिए
मर(सी)जाती
है।
{2381}
सुघड
नारी से घर स्वर्ग
बन सकता है तो फूहड
नारी से घर नरक बन
जाता है।
{2382}
दृढ
संकल्प, साहस,
धैर्यता, सफलता की
निशान
है।
{2383}
जिसमें
जितनी सजावट
होगी उसमें उतनी ही
कृत्रिमतता होगी।

{2384}
आडम्बर
दम्भ का द्योतक
है।
{2385}
गलती
को गलती मानने
वाला इंसान ही एक
दिन महान् बनता
है।
{2386}
यदि
बच्चों को संस्कारित
करना है तो, पहले स्वयं
का संस्कारित बनना
होगा।
{2387}
व्यसन
ग्रस्त व्यक्ति द्वारा
संतान को व्यसन मुक्त
बनाने की कल्पना केवल
कल्पना ही है।

{2388}
विश्व में
विषमता आग है
तो समता पानी
है।
{2389}
वैर भाव
को लम्बे समय
तक रखने वाला, सही
अर्थों में इंसान नहीं
हो सकता।
{2390}
चेहरे
की सौम्यता
प्रसाधन का नही मन
की स्वस्थता पर
आधारित है।
{2391}
दहेज
मांगते वक्त यह
मत भूलो कि तुम्हारे
भी बेटी
है।

{2392}
दहेज
मांगने वाला
इंसान मानव नहीं
हैवान होता
है।
{2393}
शुभ लक्ष्य
को लेकर किये
गये कार्यो का परिणाम
भी यदि हानिकारक आता है तो
समझो कि ये भी
अच्छे के लिए
है।
{2394}
नौकरो
के मन मे मालिक
के प्रति अनुराग पैदा करने के
लिए मालिक का नौकर के
प्रति अनुराग पहले
आवश्यक है।
{2395}
जुआ,
मास, शराब, चोरी,
शिकार, परस्त्रीगमन,
वेश्यागमन,का त्याग करने वाला
व्यक्ति ही "जैनी" हो
सकता है।

आपने कभी गन्ना चूसा होगा। गन्ना चूसते समय आप रस--रस तो चूस लेते है, और निस्सार को फैक देते हे। ठीक इसी प्रकार शास्त्र मे हेय, ज्ञेय, उपादेय तीनो ही विषयो का प्रतिपादन होता है। आप ज्ञेय की जानकारी करे, हेय को निस्सार समझ कर छोड दे, और उपादेय रूपी मधुर रस को जीवन मे उतार ले, तो आपका जीवन अतीव मधुर बन सकता है।

{2396}

बच्चे को शैशव में ही उदारता, वीरता, विनम्रता, धार्मिकता के गुण उसे माता के दूध के साथ मिलते रहने चाहिये। माता चाहे तो अपने बालक को कर्ण या भामाशाह बना सकती है। बालक को महावीर या भरत बनाना भी माता के हाथ मे ही है और चूहे की खडखडाहट मे घर छोडकर भाग जाने वाला बुजदिल बनाना भी माता के हाथ मे है। ब्रह्मचर्य के प्रज्ञापुज से दीप्तिमान भीष्म भी उसे माता बना सकती है और रावण बनाना भी उसी के हाथ है। बालक के जीवन पर एक सुशिक्षिता माता जो प्रभाव डाल सकती है, वहा सौ मास्टरो का प्रयास भी उसमे असफल रहेगा। माता का वीरत्व बालक को विश्व विजयी बना सकता है।

{2397}

क्षमा से बढकर अपेक्षा से कोई तप नही हे। आप अन्य कुछ भी नही कर सकें तो कम--से--कम क्षमावृत्ति का अधिकाधिक अपने जीवन में विकास करने का लक्ष्य बनावे। क्रोध का निमित्त उपस्थित होने पर क्षमा के गुणो का चितन करने से क्रोध का निग्रह हो सकता है। क्षमा अमृत की धारा हे जो क्रोध के विष को समाप्त कर देती है।

{2398}

जिस प्रकार क्रोध करने वाला व्यक्ति जिस पर क्रोध कर रहा है, गुस्से में उबल कर अनर्गल बोल रहा है। वह व्यक्ति उस सामने वाले व्यक्ति के क्रोध को शांत भाव से सहन कर लेता है तो उसका तो कुछ नहीं बिगडता, बल्कि उसके तो शक्ति संचित होती है पर क्रोध करने वाले व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी तरफ से हानि होती है।

{2399}

यदि हम अच्छा अनुष्ठान कर रहे हैं तो भूतकाल मे वे पाप यदि निकाचित नही हैं तो वे पाप अच्छे अनुष्ठानों को करने से पुण्य मे परिवर्तित हो जाते है और भविष्य उज्ज्वल बन जाता है।

{2400}

साधु–साध्वियो का सयोग मिलने पर विशुद्ध भावो के साथ उन्हे प्रतिपालित भी करना चाहिये। कभी–कभी भावो की विशुद्धि नही होने पर महापुरुषो को बहराते–दान देने से भी आत्म शुद्धि नही होती और भावों की विशुद्धि होने पर बहराने का निमित्त न मिलने पर भी आत्म शुद्धि का प्रसंग बन जाता है।

{2401}

शास्त्रो मे द्रौपदी का कथन आया भी है और उसके पांच पति भी बतलाये है। इस पर कोई यह सोचते हों कि द्रौपदी ने पाच पति किये तो अच्छा किया है और वह सती कहलाती है तो हम भी ऐसा करे, तो वह सही नही होगा। द्रौपदी को पाच पति होने से सती नही कहा है अपितु पतिव्रत धर्म पर एकनिष्ठ होने से तथा दीक्षित होने से महासती कहा है। पाच का प्रसग उसके पूर्व कर्मोदय का परिणाम था, जो सभी के लिए ग्राह्य नही हो सकता। यह ज्ञेय विषय है, उपादेय नही।

{2402}

समर्पणा के लिए एक रूपक और ले सकते है। अपने घर मे जन्मे हुए लडके और लडकी इन दोनो मे घर का मालिक कौन होता है ? उत्तर होगा लडका। इसका कारण लड़की की पिता के प्रति एव घर के प्रति पूर्ण समर्पणा नही होती है और लडके की अपने पिता के और अपने घर के प्रति परिपूर्ण समर्पणा होती है। अत वह उस घर का मालिक बन जाता है। उसी प्रकार वीतराग देव के घर का मालिक यदि हमे बनना है तो परमपिता महाप्रभु की आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्ण समर्पणा होनी चाहिये।

{2403}

जब पति के प्रति एकनिष्ठा प्राप्त हो जाने पर गाधारी मे भी दुर्योधन को वज्रमय बनाने की शक्ति आ सकती है, तो जो भव्यात्मा परमपिता परमात्मा के प्रति अचल आस्था एव एकनिष्ठा रखती है उसमे कितनी शक्ति आ सकती हे। यह चिन्तन करिये। यह आस्था सम्यक्त्व से ही आ सकती है। दृढ सम्यक्त्वी के सामने मानव की तो बात जाने दो देवता भी झुक जाते है। उनकी शक्ति भी सम्यक्त्वी के सामने फीकी पड जाती है।

{2404}

पहली समर्पणा माता–पिता, दूसरी समर्पणा अध्यापक के प्रति, तीसरी समर्पणा वीतराग भगवान की आज्ञा के प्रति होनी चाहिये। यदि दो प्रकार की समर्पणा जीवन मे है पर वीतराग भगवान की आज्ञा के प्रति समर्पणा जब तक नही होती है, तब तक सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते है। जीवन का सही रूपेण विकास नही कर सकते है।

{2405}

स्याद्वाद को समझने के लिये रूपक सामने रखिये– जैसे जब बिलौना किया जाता है, तब एक रस्सी को खीचकर दूसरी रस्सी को ढीली छोडनी पडती है, पर उस ढीला छोडी हुई रस्सी को हाथ मे पकडे रहना पडता है, तभी मक्खन निकल सकता है। इसी प्रकार प्रभु महावीर के सिद्धान्त जो स्याद्वाद रूप हैं, अनेकान्तवाद को लिये हुए है, उनमे, जिसका जब कथन किया जाता है वह उस समय मुख्य रूप से रहता है और अन्य भी सभी उस समय उसमे विद्यमान रहते है, पर ढीली छोडी हुई रस्सी के समान गौण रूप मे। हर वस्तु में हर धर्म पृथक पृथक समय मे अलग–अलग रूप से कथित होते रहते हैं, पर सत्ता रूप से विद्यमान सभी धर्म उसमे एक साथ रह सकते है।

{2406}

जो आत्मा वर्तमान समय को पहचान कर अपने जीवन को शुभ कार्यों मे नियोजित कर देती है तो उसका जीवन सफल बन जाता है। अतीत मे चाहे जो कुछ अन्याय, अनीति, अधर्म आदि कार्य किये हो, किन्तु जब उसकी आत्मा उन सब कुछ को हेय समझकर उन्हे छोडकर अहिसक कार्यों मे लग जाती है, अपने वर्तमान जीवन को सजा–संवार लेती है तो उसका भविष्य का जीवन भी सज–सवर जाता है।

{2407}

मै जब पढता था, तब का एक प्रसग है—एक दिन मेरे सामने ऐसा जटिल प्रश्न आया, जिसका मै हल नही कर पा रहा था। तब मैने सहज ही उपवास किया। उपवास वाले दिन तो शरीर शिथिल बना रहा, पर पारणे के दिन एकाएक जटिल प्रश्न का समाधान हो गया। एक उपवास मे भी आत्मा इतनी निर्मल बन सकती तो फिर लम्बी तपश्चर्या के द्वारा कितना अधिक फल प्राप्त होता हे ? अत इस विषय मे कभी शका नही करनी चाहिये

{2408}

चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य का परस्पर किसी न किसी रूप मे धार्मिक सम्बन्ध रहा हुआ है। एक–दूसरे पर विचार–विमर्श, देने–लेने का प्रसंग भी यदा–कदा आ सकता है। उस समय एक–दूसरे के दिल को गुणो की ओर बढाने के लिए ऐसे शब्दो का प्रयोग करना चाहिये कि जिससे सुनने वाले का हृदय प्रसन्न हो जाय।

{2409}

आत्मा की शक्ति भी मन रूप पाइप के माध्यम से अगम क्षेत्र की यात्रा करती हुई परमात्मा तक पहुच सकती है। किन्तु उस पाइप लाइन के बीच मे बहुत बडे–बडे छेद कर दिये है, जिसके कारण आत्मा की शक्ति परमात्मा तक पहुंच ही नही पा रही है। वे छिद्र है इन्द्रियो की आसक्ति के।

{2410}

ध्यान साधना चारित्र का प्राण है। इसमे जो दत्तचित्त हो जाता है, उसके भीतर के नयन खुल जाते हैं, पर इसकी साधना करने वाला चाहे साधु हो या श्रावक, सभी को बहुत कम समय मिलता है। कारण कि मन एकाग्र करना पडता है। शुरू में कठिनाई अवश्य होती है, पर करते–करते यह हाइवे रोड के समान सुबोधगम्य बन जाती है। शुरू–शुरू में धैर्य की आवश्यकता है।

{2411}

एक चिकित्सक यह कहे कि मेरी दवाई से रोग मिटे या न मिटे पर दूसरी बीमारी हो सकती है। दूसरा कहे कि मिटने का चान्स तो है, पर दूसरा रोग भी लग सकता है। तीसरा कहे दवाई तो दे दें पर उससे रोग मिटे यह निश्चित नहीं, किन्तु दूसरी बीमारी नही हो सकती। चौथा कहे कि मेरी दवा से रोग तो मिट ही जायेगा और ताकत भी बढ जाएगी तो बताइये आप कौन से चिकित्सक की दवा लेगे ? उत्तर है, चौथे की। तो बन्धुओं, वीतराग देव ऐसे ही डॉक्टर थे। उन्होंने घनघातिक कर्मों का नाशकर जो सुन्दर औषध दी है, वह है चारित्र पालना में ध्यान योग की साधना। आप चारित्र के साथ ध्यान के प्राण को जोड़े।

{2412}

जैसे आपने अपने हाथों से किसी को रस्सी से बांधा है, वो एक दिन हाथों से ही उसकी रस्सी भी खोलेगा, पांवो से नही। ठीक इसी प्रकार मन, वचन, काया के द्वारा ही कर्म बंधे है। इन्ही के द्वारा वे नष्ट भी होंगे। मन, वचन, काया को सम्यक् करें। सही संशोधन करने वाला ही योगी होता है। गुफा में बैठने मात्र से योगी नही हो जाता।

{2413}

एक पागल बाजार मे सत्य बोलो, सत्य करो कहता हुआ चलता है तो कौन माने। क्योकि स्व के आचरण मे आयी हुई वस्तु ही अन्य पर प्रभाव डालती है। पागल मे वह स्थिति नही है।

{2414}

{2415}

बाह्य रूप से चारित्र पालन क्यो न गौतम स्वामी जैसा कर लिया जाय, पर मन मे समित अवस्था नहीं हे, वचन की प्रवृत्ति समित नही है, तो वह आचार मुक्तानुलक्ष्यी नही हो सकता।

जो समझ गया हू वही सत्य है, ऐसा न सोच कर जिस दृष्टि से यथातथ्य समझाते है, उसी दृष्टि से समझने का प्रयत्न करे तो सम्यक् रीति से समझ मे आ सकता है। हठाग्रही या अभवी को तीर्थंकर भी आ जाय तो भी नहीं समझा सकते हैं।

{2416}

{2417}

सच्चा धर्म बाहरी भौतिक तत्त्वो में नही है। यह तो यूनीफार्म हे। पहचान कराने वाले है। वास्तविक धर्म तो आत्मा मे है।

यह जैन दर्शन का स्पष्ट अभिमत है कि पुद्गल स्कन्ध जितने हल्के होते चले जाते हैं, उतनी उनमे गति बढती जाती है। जब वह एक परमाणु रूप में रह जाता है तो उसकी लोकान्त तक गति हो जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सजीव की तरह निर्जीव तत्त्व भी गति करता है। अत गति के दृश्यमान होने मात्र से गतिशील पदार्थ जीव है, यह नही माना जा सकता।

{2418}

वट वृक्ष आपने देखा होगा। उसका मूल बडा होता है और पत्तियां आदि हरी होती हैं। कोई मनुष्य उसकी पत्ती पकडकर चलता है और दूसरा जड को लेकर चलता है। जड को ग्रहण करने वाला तो फूल–पत्ती आदि सब कुछ पा लेता है, पर पत्ते को पडकर रहने वाले के हाथ कुछ नहीं आता। वह पत्ता भी एक दिन पकडकर झड जाता है। इस तरह वीतराग दशा को जीवन मे लाने का प्रयत्न करने वाली आत्मा सब कुछ पा सकती है, किन्तु जो आत्मा इन्द्रियो से विभिन्न सुख को पाने का प्रयत्न करती है, वह कुछ भी नही पा पाती है।

{2419}

कम से कम ५ वन्दन और अधिक से अधिक ९ बार वन्दन सुबह उठते ही करना चाहिए। वैसे इससे ज्यादा यथासमय किया जा सकता है। सुबह–सुबह वन्दना करने से जो नसें आपके चिन्तन में, योग–साधना मे, काम आने वाली हैं, वे सभी जागृत होकर स्फुरित हो जाती है।

{2420}

वर्तमान का युग क्रान्ति का युग है। आपके खून मे क्रान्ति करने का जोश है तो मै तो कहता हू कि क्रान्ति करिये। पर क्रान्ति कैसी होनी चाहिये। पहले इसे समझ लीजिये। महात्मा गांधी ने जो क्रान्ति की वह अहिसा से एव मर्यादित रहकर की थी। जिसका व्यापक प्रभाव पडा था। वैसी क्रान्ति व्रतो की सुरक्षा के लिए हो न कि उसे तोडने के लिए।

{2421}

यदि आप यह भावना लेकर आये है कि मेरा झूठा मुकदमा हे। अत मांगलिक सुन लूं। जिससे मेरा कार्य सफल हो जायेगा तो आप चिन्तामणि रत्न को प्राप्त करके भी उसका मुह मे चबाने की तरह दुरुपयोग कर रहे है। यदि आपने इस अमूल्य जीवन की साधना सही ढग से नही की तो आहार, निद्रा, भय और मैथुन के इस चक्र मे उलझकर पशुवत् अपने जीवन की अमूल्यता को गवा देगे। जेसे खाली हाथ आप यहां आये है, वैसे ही हाथ पसार कर यहा से प्रस्थान कर देगे।

{2422}

रात्रि का पिछला समय ध्यान योग साधना के लिए विशिष्ट है। प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर मे ध्यान, तृतीय प्रहर मे निन्द्रा एवं रात्रि के पिछले अर्थात् चतुर्थ प्रहर मे ध्यान, योग साधना आदि करना, यह प्रभु का निर्देश भी है। चौथे प्रहर मे जो प्रक्रिया होती है, वह मन को स्थिर करने के लिए विशेष उपयोगी होती है। चतुर्थ प्रहर योग साधना के लिए बहुत ही अच्छा समय हे।

{2423}

श्रुत का श्रवण करना एक बात है, श्रुति का पैदा होना दूसरी बात है। जब अंतर से श्रुति जागृत हो जाय तो फिर उसके हृदय में स्वभावत श्रद्धा, रुचि, पैदा हो जाती है। कई मनुष्यों में श्रद्धा का प्रसंग सुनकर भी आता है।

{2424}

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए समय का मूल्यांकन करना आवश्यक है। जिस प्रकार बूंद–बूंद करके घट भर जाता है वैसे ही एक–एक समय का मूल्यांकन करने वाला एक दिन महान् कार्यों को सिद्ध करने मे सफल हो जाता है।

{2425}

गर्भाधान के समय बहिन के मन मे हब्सी का चित्र आ जाने मात्र से उसका प्रभाव पडा कि बच्चा हबसी हो गया। जब बच्चे पर भी ऐसा प्रभाव पड सकता है तो फिर उन विचारों का स्वयं की आत्मा पर कैसा प्रभाव पडता होगा, यह विचार करने की बात है।

{2426}

जब तक पुरुष एवं नारी का जीवन विशुद्ध नही होगा, तब तक उनकी संतति का जीवन भी शुद्ध नही हो सकता। टकी मे यदि जहर मिला है तो नल से भी विष मिश्रित ही पानी आएगा।

{2427}

कई उपनगरो मे साधु जीवन के पूर्ण पालन की स्थिति नही होने से वहा भे नही गया। माटुंगा मे मैने सुना था कि वहा जगल का स्थान नहीं हे तो मेरी जाने की भावना कम हो गई थी क्योकि जहा सयम का पालन सुरक्षित रूप से न हो वहा जीवन को नही जाना चाहिए। दूसरो को लाभ देने से पहले स्वय के जीवन को सुरक्षित रखना आवश्यक है। इधर माटुगा के लोग अति आग्रह कर रहे थे तो मै एक दिन के लिए वहा जाने का विचार करके पहुचा ओर वहा जगल की गवेषणा की तो थोडी ही दूरी पर प्रासुक जगल मिल गया। मैने इस बात का जिक्र जिन लोगो के समक्ष किया तो उन्हे भी आश्चर्य हुआ कि यहा कहा जगल है ? हमने तो अब तक देखा ही नही ? मनसुखभाई और मासुखभाई तो बोले–हम भी आपके साथ चलकर जगल देख लेते हे ताकि पौषध में हम भी वहा जा सके। वे भी साथ चले और उन्होने भी जगल देखा तो आश्चर्यचकित हो गये। वैसे ही अधेरी आदि क्षेत्रो मे भी जगलादि की सुविधाए हे। कही–कही उपाश्रयो मे अकल्पनीय स्थिति नजर आई तो मैने वहां के प्रमुखो को सूचित किया कि हमे यहा नही कल्पता हे तो उन्होने तुरन्त कल्पनीय स्थिति बनाई। कान्दीवली, मलाड आदि अनेक स्थलो पर ऐसा हुआ भी है।

{2428}

ब्यावर का प्रसग है। मेरे सामने ही जो कान्फ्रेस के अध्यक्ष थे उनकी उपस्थिति में डा डी एस कोठारी जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक हे उनसे प्रश्न किया कि डाक्टर साहब ! बिजली सजीव है या निर्जीव। तब उन्होने कहा–हमारा विज्ञान निर्जीव–सजीव की परिभाषा से नही सोचता हे पर आप छाणा–कोयला की आग को, आकाश की विजली एवं भट्टी की आग को सचित्त मानते हो तो विजली निश्चित सचित्त हे अत वैज्ञानिक दृष्टि से भी विद्युत मे सजीवता स्पष्ट हो जाती हे।

{2429}

कई मेरे भाई गौ–रक्षा की बात भी करते है, तो मेरा भी कहना यही रहता है कि गौ–रक्षा होनी ही चाहिये, पर इसके साथ गौ से भी बढकर मानव की रक्षा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। आज मानवो की क्या हालत हो रही है, जरा इस ओर भी ध्यान दीजिये। दूर की बातें तो जाने दो, आपके बम्बई शहर में भी देख लीजिये कि कुछ लोगो के अलावा बहुल भाग झोंपडपट्टी में, दुर्गंध में श्वास लेता हुआ जी रहा है। कहीं–कहीं तो खाने के लिए रोटी और पहनने के लिए वस्त्र भी उनके पास नहीं हैं। अगर वास्तविक आजादी मे जीना चाहते हो तो जरा इस ओर ध्यान देना आपका अपना कर्त्तव्य हो जाता है। केवल मुंह से स्वतत्रता के गीत गा लेने से झंडा फहरा देने से स्वतंत्रता का सही रूप नहीं आ सकता। इसके लिये वस्तुत- मानवीय प्रेम जागृत करना होगा।

{2430}

भीड–भाड की दृष्टि से भी देखा जाय तो, यद्यपि घाटकोपर बम्बई का एक अग है, तथापि घाटकोपर में जितनी भीड–भाड नहीं दिखती है उससे ज्यादा भीड शोरगुल जयपुर, उदयपुर जैसे शहरो मे देखने को मिलती है। जगल की दृष्टि से भी पूरी सुविधा है। जब मै पूर्व में आया था तब भी यहां रहा था। उस समय ही मैने यहां जंगल देख लिया था। प्रासुक जगह मिल जाती है। परठने–परठाने के लिए भी थोडी दूरी पर स्थान मिल जाता है। साधु मर्यादा मे दोष लगे, ऐसा किंचित् भी कारण परिलक्षित नहीं होता। उपाश्रय की कल्पनीय–अकल्पनीय विधि जब आपको बतलाई गई तो आप सुज्ञो ने उसे भी कल्पनीय बना दिया। बोरीवली में भी जगलादि की पूरी सुविधा थी ही और यहा पर भी है। मै बम्बई के कई उपनगरो में भी गया।

{2431}

धोवन पानी तो घर–घर सहज रूप से बनता है। विवेक रखने वाला चाहिए। केवल राख का पानी ही आवश्यक नही है। चावल का पानी, दाल का धोया हुआ पानी, कठौती का धोया पानी, दाख का धोया पानी भी साधु के उपयोग मे आ सकता है। सत मुनिराज ऐसा पानी भी लाते हे।

{2432}

डॉक्टर बनने वाला विद्यार्थी अपना समय डॉक्टरी अध्ययन मे ही लगाता है, तो वह एक दिन सफल डॉक्टर बन सकता है। वकील बनने वाला व्यक्ति अपना समय वकालत मे ही लगाता हे तो वह एक दिन सफल वकील बन जाता है। कोई भी किसी भी रूप मे अपने आपको वनाना चाहे, पर वह यदि अपने जीवन के बहुमूल्य क्षण उसी मे लगाता हे तो वह वैसा ही बन जाता है। वैसे ही जो व्यक्ति आध्यात्मिक साधना मे अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणों को लगा देता है तो एक दिन वह उसमे सफलता प्राप्त कर ही लेता है।

{2433}

आज के व्यक्ति पांच इन्द्रियों के पोषण मे ही भटक रहे हे। कान, आख, नाक, जिह्वा चर्म आदि के विषयो को पाने मे ही सम्पूर्ण जीवन को समाप्त कर देते है। इस प्रकार बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ ही खो बैठते हे। जिस हीरे से सब कुछ भौतिक साधन पाये जा सकते हें उस हीरे को मुट्ठी भर चने मे बेचने वाले अज्ञानी व्यक्ति की तरह मानव जिस शरीर से मोक्ष सुख पा सकता है साधना के वल पर उसी शरीर को मुट्ठी भर चने की तरह भौतिक सुख पाने मे खर्च कर रहा हे।

{2434}

जैसे घडी अन्दर की मशीन से
चलती है अत उसकी अन्दर की
मशीन को ठीक रखना पडता है,
वैसे ही आपका शरीर भीतरी चैतन्य
देव के गुणो को सुरक्षित रखने का
प्रयास करना आवश्यक है।

{2435}

नारी शक्ति अगर केन्द्रित होकर सही दिशा मे आगे बढ़े तो व्यक्ति–व्यक्ति को बदलती हुई सारी दुनिया को बदल सकती है।

{2436}

सम्यकद्दष्टि जीव धर्मस्थान में सावद्य वस्तुओ का प्रयोग नही करते है। जहां सावद्य क्रिया होती है, वहां मन की साधना नही बनती।

{2437}

नकली हीरा क्यों न बहुत चमकता हो किन्तु उसकी प्राप्ति से मानव को दौलत की प्राप्ति नहीं होती है। ठीक उसी प्रकार भौतिक तत्त्वों को देख लेने या पा लेने से वास्तविक शान्ति की अनुभूति नहीं हो सकती।

{2438}

कृष्ण जी यह जानते थे कि मेरा भाई भगवान् की वाणी सुनकर साधु बन जायेगा, फिर भी वे उन्हे भगवान् के पास ले गये। उनका मोह कितना हल्का था। उन्हे समवशरण से उठाकर नहीं लाये वल्कि अपूर्व वात्सल्य दिखाकर दीक्षा की तेयारी करने लगे। आगे क्या कुछ घटना हुई, अतगड सूत्र के माध्यम से आपने सुना होगा। दीक्षा की दलाली से तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर लिया पर आज तो एक टूटी–फूटी हडिया मे भी मोह ममत्व की स्थिति नही छोडी जा सकती किन्तु कृष्ण महाराज सच्चे सम्यक्दृष्टि थे। उन्होने प्राणो से भी प्यारे नयनों के तारे राजकुमारो, कुमारियों एवं रानियो को दीक्षा की अनुमति देने मे जरा भी संकोच नही किया, पर आपकी प्राण प्यारी कदाचित् दीक्षा लेने की भावना रखती हो तो आप क्या कुछ करेगे ? {2439}

मेवाड (राजस्थान) मे गंगापुर नामक गाव मे होली के दिनो मे महेश्वरी समाज की एक बहन रास्ते पर चल रही थी। कुछ उद्दड युवको की टोली ने जाती हुई बहन को कहा कि–लो ठडाई पी लो। वह जान नही पाई। उस ठडाई मे भग मिली हुई थी। उसे ऐसा नशा आया कि कुछ भी भान नही रहा। वह बेमान हो गई। जब उसका सात वर्षीय बच्चा खेलता हुआ उसके पास आया, तो कुछ भान तो था नही एक लोहे की कील उठाई और पत्थर लेकर उस बच्चे के माथे पर ठोक दी। यह है नशे का परिणाम। {2440}

मनोविज्ञान की दृष्टि से चितन करे कि जो व्यक्ति दूसरे के मकान को गिराना चाहता है तो गिराने का नक्शा पहले अपने मन मे बनाता है तो अपने ही मस्तिष्क मे नाश के सस्कार पैदा करता है। एक व्यक्ति सोचता है कि मै बारुद इकट्ठा करके पडोसी के मकान को तहस–नहस कर डालूं। यह सोचकर पहले अपने घर मे बारुद इकट्ठा कर लिया और कभी जरा–सी असावधानी से उसमे कहीं से आग की छोटी–सी चिनगारी लग गयी तो किसका घर नष्ट होगा ? पहले स्वयं का। वैसे ही यह आत्मा दूसरो का घात करने से पहले स्वयं का घात करती है। उसके पहले कर्म बंध जाते हैं। {2441}

इन सब बातों को देखते हुए यह सुस्पष्ट हो जाता है कि बम्बई मे आकर यदि साधु चुस्त संयम का पालन करना चाहता है तो वह कर सकता है और यदि वही ढीला–शिथिल हो जाय तो उसका क्या उपाय है ? उसका दोष इसे नहीं दिया जा सकता।

{2442}

आप लोग धर्मस्थान मे धर्म करने के लिए आते है या अपने अभिमान का प्रदर्शन करने के लिए आते हैं ? यदि यहां आकर भी आपके मन मे यह भावना रह जाती है कि मैं इतना पैसे वाला हूं, संघ प्रमुख हू राजकीय अधिकारी हूं या और कुछ भावना लेकर यहा आते है, और आपको बैठने के लिए भी कुर्सी चाहिये। ऐसी भावना लेकर चलने वाले की फिर किस प्रकार आत्म–शुद्धि हो सकती है। उसमे परमात्मा को अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है ? इस रूप मे तो आप एक बार नही अनेक बार जन्म–जन्म तक भी धर्मस्थान पर आते रहें, साधना भी करे तो भी आत्म–शुद्धि नहीं मिलने वाली है।

{2443}

मैं तो स्पष्ट रूप से आह्वान करता हूं कि आप मेरे या इस शासन मे चलने वाले किसी भी साधु–साध्वी में किसी भी प्रकार का दोष देखें तो खुले रूप मे कहे, मै उससे नाराज नही होऊंगा, बल्कि और अधिक खुश होऊंगा। यदि साधु–साध्वी में दोष होगा तो उन्हे प्रायश्चित देकर शुद्धिकरण कर दिया जाएगा और यदि नही होगा तो आपकी भ्रान्ति का स्पष्टीकरण हो जाएगा। आप अपने मन में कोई बात नही रखे। साफ–साफ बतलाइये।

{2444}

{2445}

आयुर्वेद की दृष्टि से बता रहा हू कि जब शरीर मे रोग वढ जाते हे तो स्वय के भीतर मे जो अन्तरयामी है उसका भी मनुष्य शाति से चिन्तन नहीं कर पाता। वह यदि एक रोज का उपवास कर लेता हे तो सारी बीमारी नष्ट हो जाती है। जहा बडी–बडी मशीनो को भी आठ रोज मे एक रोज छुट्टी देने का प्रसग सुना है पर मानव की मशीन ऐसी हे कि उसे एक रोज की छुट्टी नही दी जाती है। मस्तिष्क को भी छुट्टी नही देते हैं। आप छुट्टी के दिन भी अन्य–अन्य काम मे दिमाग को दोडायेगे। बधुओ ! इस पाचन क्रिया पर कितना अन्याय और अत्याचार करते है। ऊपर से कहते है बाहर की हिसा नहीं करते है, उससे बचते है ओर बचने का उपदेश देते हैं पर कहीं स्वय की घात तो नही कर रहे हें ?

साधु की सेवा साधु ही कर सकता है। वह गृहस्थ से सेवा नही करवा सकती। क्योकि गृहस्थ महाव्रतधारी नही है। वे केवल प्रासुक औषधि आदि की दलाली कर जैन भाई की दुकान बता सकते हे, साथ मे जा सकते हे। पर कोई ऐसी बीमारी है या जैन की कोई दुकान नही है ओर गृहस्थ के घर भी औषधि स्वाभाविक रूप से नही मिल रही हे, तो वह गृहस्थ कह सकता है कि ज्ञान, दर्शन व चारित्र की आराधना मे सहायक यह शरीर हे। इसकी परिपालना मे भगवान् महावीर ने छ कारण से आहार लेना, छ कारण से आहार छोडने का विधान बताया हे। आपके अभी सथारा की स्थिति नही है। रोगोत्पत्ति है। बाजार की लाई हुई औषध ले ले। क्योकि कदाचित् वह आर्तध्यान की स्थिति मे चला जाय तो उसे अगले भव की आयु बन्द हो जाय तो अगला भव भी विगड जाता है अत बाजार से दवाई लाकर भी दे सकता है, पर साधु स्वस्थ होने पर उसका प्रायश्चित ले ले। इस प्रकार सेवा के स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। जहां तक शरीर से ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि हो, तव तक शरीर की रक्षा करना भी आवश्यक हे।

{2446}

शराब पीकर आप चाहते है कि मन की उच्छृंखल प्रवृत्तियों पर काबू पा लिया जाय तो आप गलत सोचते है। यह उस पर काबू पाने का तरीका नही, यह तो मन को अधिक भडकाने वाला है। रंगों पर ध्यान को केन्द्रित करके या संसार की सभी वस्तुओं को क्षणिक मानकर या फिर अन्य किसी प्रकार से मन को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है तो क्यों न उससे शराब के नशे की तरह कुछ क्षण के लिए शांति की अनुभूति होने लगे, किन्तु अन्तत वह दु खदायी ही बनती है। मन को नियंत्रि करने के लिए आपको सबसे पहले उसे संस्कारित करना होगा। आप उसकी गतिविधियों का समीक्षण करते रहिये, देखते जाइये। आपके समदृष्टा भाव की रस्सी हाथ में रहेगी, मन स्वत ही नियंत्र्ण मे आ जाएगा और वह आपको समर्पण कर देगा।

{2447}

{2448}

पशु के पास कुछ भी नही होते हुए भी वह बहुत सुखी है और मानव के पास बहुत कुछ होते हुए भी वह दु खी ही परिलक्षित होता है। एक गाय की आंखों में झोककर देखा जाय तो वह शांत–प्रशान्त नजर आएगी और यदि इसकी जगह किसी मानव की आंख में झांका जाय तो प्राय सर्वत्र उद्विग्नगा, विषाद, विषयासवित आदि अनेक भाव तैरते नजर आएंगे। यह सब यह स्पष्ट कर देते हैं कि प्रकृति के बीच रहने वाले पशु के पास कुछ भी नही होते हुए भी वह बहुत सुखी है।

चाहे आपको सुनाई दे या न दे पर प्रतिक्रमण, सामायिक आदि मे हिंसक साधनो का प्रयोग कभी नही करना चाहिये। मौनपूर्वक शांति के साथ सुनने पर आवाज दूर तक सुनाई देती है। प्राणातिपातादि पाप आपकी आत्मा को डूबोने वाले हैं। धार्मिकता के बहाने धर्मकरणी को बेचने का प्रसग उपस्थित किया तो धर्म को कौड़ी में बेच देंगे। अत धर्म के साथ किसी भी फल की कामना नहीं रखनी चाहिये।

{2449}

पन्द्रह अगस्त आती और चली जाती हे। हर वर्ष झडे फहराये जाते है, पर जीवन को परिमार्जित करने का झडा वहुत कम फहराया जाता है। आज के लोगो के हाथ मे झडा नही हे केवल डंडा ही रह गया है। वह डडे को ही लेकर चल रहे हे। वास्तविक आदर्श को तो भूलते चले जा रहे हे।

{2450}

शांति चाहते है तो पहले अन्य प्राणियो को शाति दें।
एक व्यक्ति घबराता हुआ एक माई के पास आकर कहने लगा कि मुझे शाति दो। उसने कहा तुम्हे शाति दूसरे से नही स्वय से मिलेगी। तुम्हारे भीतर मे शांति का खजाना भरा पडा है। उसे तुम दूसरो को देने लग जाओगे तो तुम्हारी शाति बढती जायेगी और कजूस वने रहे तो शाति कभी नहीं मिल सकेगी।

{2451}

गलती करना बुरा हे, पर उस गलती को गलती समझकर उसे निकालने की जो चेष्टा करता है, उसका जीवन सुधर जाता हे और जो नही करता हे, उसकी मानसिक स्थिति खराव होने के साथ–साथ वह अल्प समय मे ही परलोक को प्रयाण कर जाता हे। उसका परलोक भी विगड जाता है।

{2452}

आर्य सस्कृति के उपासको को तो कभी भी अंडे का सेवन नही करना चाहिये। सामान्य अवस्था की वात तो दूर रही भयानक रोग भी आ जाय मारणान्तिक कष्ट की स्थिति हो, तथाकथित डॉ का परामर्श भी हो कि अडे खाने से ठीक हो जायेगा तथापि आर्य पुरुषो को मासाहार से दूर रहना चाहिये।

{2453}

इन्द्रियो से होने वाले कार्य मे मन का राग–द्वेष नही हो। जब राग–द्वेष की परिधि से हटकर मन चिन्तन करने लगेगा और इन्द्रिया भी राग–द्वेष से मुक्त रहेगी तो उनमें प्रवाहित होने वाली शक्ति भी विकृत न बनकर अपने स्वाभाविक स्वरूप मे निखरने लगेगी।

{2454}

पर्दे की आड में मानव जरूर देखना चाहता है, किन्तु इतना होते हुए भी उसके अपने पर्दे के भीतर क्या है, उसे देखना नही चाहता है। वह यह नही सोचता कि मेरे शरीर के पर्दे के भीतर क्या है ?

{2455}

रक्षा मे धर्म है तथा धर्म की रक्षा मे ही धागे का मान समाया हुआ है। धर्म की रक्षा में जीवन की रक्षा, प्राणो की रक्षा तथा सिद्धान्तों व कर्तव्यो की रक्षा शामिल है।

{2456}

सबल सदा दुर्बल की रक्षा करता है तो क्या चौरासी लाख जीव योनि में आपसे दुर्बल प्राणी नही है ? क्या छ काया के जीव आपसे रक्षा की मांग नही करते ? आप में जिनकी रक्षा का सामर्थ्य है, आप यदि उनकी रक्षा नही करते तो क्या आपका रक्षाबधन का उत्सव सार्थक है ? अपनी समस्त शक्तियो से रक्षा का कार्य करे– यही राखी का सन्देश है।

{2457}

संतो के भी राखी बाधने का अर्थ है उनके सत जीवन की सुरक्षा का ख्याल करना। श्रावक–श्राविका को इसी दृष्टि से "अम्मा–पिय्या" की उपमा दी गई। ऐसी स्थिति में सत लोग वीतराग वाणी से आपके राखी बांधना चाहते है और कहना चाहते हैं कि हे माता–पिता की उपमा लेने वालो, संत जीवन की रक्षा करने मे मददगार होना। अन्न, जल, औषधि का योग आप देते हैं किन्तु असल योग है सन्त जीवन को पग–पग पर प्रेरणा देना, ताकि ढीली मर्यादाए न पनप सके।

{2458}

*बाह्य चक्षुओ का अन्धापन दूर किया जा सकता हे परन्तु अन्तर्चक्षुओ का अन्धत्व मानव जीवन का सत्यानाश कर देता है।
* अन्तर्चक्षुओं के लिए अज्ञान व अविद्या का आवरण मोतिया बिन्दु के समान है। उसे हटाने के लिए सद्गुरु का शरणा जरूरी हे।

{2459}

जानते है, प्रज्ञा चक्षु किसको कहते है, वह व्यक्ति जिसके बाह्य नेत्र भले बन्द हो, लेकिन जिसके अन्तर्चक्षु खुले हुए हो। भीतर उनके अन्धापन नही हो तो बाहर का अन्धापन जीव विकास की दृष्टि से बाधक कतई नही होता है बल्कि जीवन विकास का विशिष्ट रूप से सहारा बन जाता है। ऐसा व्यक्ति प्रज्ञा चक्षु कहा जाता हे। वह अकेला बाहरी आखो के हजारो सूझतो से श्रेष्ठतर होता हे।

{2460}

{2461}

अन्तर्चक्षु पर ये आवरण दो प्रकार के होते हे—एक अज्ञान का तो दूसरा अविद्या का। ये दोनो अवस्थाएं भाव नेत्रो की ज्योति को ढक देती है। जिस प्रकार मोतियाबिन्दु आख की फीकी पर छाकर उसकी ज्योति को ढक देता है, उसी प्रकार अन्तर्चक्षुओ के लिए अज्ञान ओर अविद्या की अवस्थाए मोतियाबिन्दु के समान होती है।

कोई व्यक्ति पानी को मथकर मक्खन निकालने का प्रयत्न करे तो क्या उसका प्रयत्न सफल बन सकेगा ? पर–पदार्थो में रमण करते हुए कोई आत्मिक तत्व की उपलब्धि कर सके–यह शक्य नहीं है। पानी में से सीधा मक्खन नही निकाला जा सकता है। यह दूसरी बात है कि पानी को मक्खन निकालने का साधन बनाया जा सकता है। वैसे ही ससार के दृश्य पदार्थों से शान्ति प्राप्त नहीं की जा सकती है, लेकिन उनको किसी रूप में शान्ति के साधन बना सकते हैं यदि उन पदार्थों का रूपान्तरण करने वाला चतुर व्यक्ति हो।

{2462}

इन्द्रियों सम्बन्धी लालसाए कम होगी तो विचार, वचन तथा व्यवहार मे विकारो का विस्तार भी नही हो पायेगा और अगर विकारो का जोर नही रहा तो बुद्धि की निर्मलता भी बनी रह सकेगी। जिसकी बुद्धि निर्मल होती है, वही भगवान की और मानवता की सेवा करने के योग्य माना जाता है। {2463}

तपश्चर्या उस आग के समान होती है, जिसमे रखने से सोना अपनी मलिनता को ही समाप्त नही करता, बल्कि अपने स्वरूप में भी कुन्दन की तरह दमक उठता है। तपाराधन से शरीर और इन्द्रियो के विकारो का शमन होता है तो मन मे एक भव्य प्रकार की शान्ति व्याप्त होती है जो आत्मशुद्धि की सबल प्रेरणा देती है। {2464}

सत्य का साधक यदि प्रलोभन में गिर जाता है तो वह सत्य तत्व को प्रकट नही कर पायेगा, क्योकि सामने वाला जिस तरह की बात सुनना चाहेगा प्रलोभन के वश उसको वैसी ही बात सत्य कहकर सुनाई जायेगी तथा ऐसी वृत्ति से सत्य का लोप होने लगेगा। अत सत्य के साधक को काम क्रोध मोह लोभ आदि विकारो से मुक्त हो जाना चाहिए। जीवन में निर्विकारी वृत्ति के आने पर ही सत्य की साधना को सम्बल मिलता है। {2465}

एक तकली होती है जो सूत कातने के काम आती है। यही उसका उपयोग है। लेकिन विवेक शून्य व्यक्ति उस तकली से किसी दूसरे की आख फोड सकता है तो अविवेकी के हाथों एक अच्छी चीज का भी घोर दुरुपयोग हो जाता है। व्यक्ति के विवेक पर यह आधारित है कि आत्म कल्याण का लक्ष्य अविचल रखते हुए किस प्रकार सांसारिक पदार्थों का अधिकतम सदुपयोग किया जाय। {2466}

सुबह भोजन किया तो शाम को भूखे के भूखे ही दिखाई दिये है। सुबह वस्त्र पहने तो शाम को मेले हो गये। शाम की रोटी का जुगाड किया और मैले वस्त्र धोये तथा इस प्रकार शाम सुवह करते करते जीवन समाप्त होता चला जा रहा हे। किन्तु क्या कभी ऐसी तमन्ना भी पैदा होती है कि कुछ आत्म कल्याण का साधन भी जुटता जाय ? जब ऐसी तमन्ना पैदा होगी, तभी आप सब का जीवन का नव निर्माण आरंभ हो सकेगा। {2467}

{2468} अभी तो आप बेशक चादी के टुकडे जमा करने मे लग रहे है लेकिन उनके स्वरूप के विषय मे ज्ञान भी किया हे या नही ? ये चादी के टुकडे मृत्यु के समय साथ मे चलने वाले नही हे। इस बात की भी गारंटी नही है कि पूरे जीवन तक ये अपने पास सुरक्षित बने ही रहेगे। न मालूम इन पर किन किन की निगाह किस रूप में लगी हुई है ? चोरी हो जाती हे, जेब कट जाती हे या व्यापार मे घाटा लग जाता हे, मगर यह इच्छा नही होती कि अपने पेसे से खुशी खुशी किसी जरूरतमन्द की मदद कर सके। इतनी सी सहानुभूति और सहयोग भावना रखकर भी कोई अपने जीवन मे चले तो उसके जीवन का नव निर्माण प्रारंभ हो सकता हे।

अहकार अव फैलता है तो उसके साथ ईर्ष्या भी पनपती हे, जिसके कारण मनुष्य दूसरो को नीचा दिखाने या नीचे गिराने की चेष्टा करता रहता हे और राग द्वेष की गहरी वृत्तियों में गिरता है। जब कषाय वढता हे तो आचरण में गिरावट आती हे। इसलिये मूल में अहंकार को हटाया जाय तो विनय भाव आ जाने के कारण समता भाव आ जाने के कारण समता भाव का आना सहज वन जाता है। {2469}

समता की साधना में सफलता प्राप्त करने के लिये कोई निश्चित अवधि नही होती है। भावना का बल मन्दा हो तो पलो के काम में कई वर्ष लग जाते हैं और फिर भी गारंटी नहीं कि काम सम्पन्न हो ही जाय। भावना की श्रेणी दुर्बल बनी रहे या कि पतित बन जाय तो कई जिन्दगियां बीत जाने पर भी गति व्यवस्थित नहीं बने। किन्तु साधना उत्कृष्टतम भावना के बल पर देखते देखते इस तरह सर्वोच्च श्रेणी तक पहुंच जाती है कि जिन्दगियों और वर्षा का काम पलों में पूरा हो जाता है।

{2470}

सम्यक् दृष्टि आत्मा का पहला लक्षण बताया गया है—सम। सम का अर्थ है कि संसार में जितने पदार्थ हैं, उन समग्र पदार्थों को उसी उसी रूप मे जानना है, जिस जिस रूप मे वस्तुतः वे रहे हुए हैं। यह 'सम' विशेषण दृष्टि से सम्बन्ध रखता है। दृष्टि जब सम देखती है तो सबको एकसा नहीं, बल्कि यथावत् देखती है। दोष पूर्ण दृष्टि को दोषपूर्ण दृश्य दिखाई दे सकता है तो उसमें पदार्थ का यथावत् रूप देखने में गड़बड़ होती है। समदृष्टि जिसकी बन जाती है, वह सत्य को देखने लग जाता है।

{2471}

मन की गति को मोडने का सवाल है रोकने का नही। गति रोक देंगे तो क्या मन की अकर्मण्यता नहीं बन जायेगी ? सवाल है कि गति तो वह करें, लेकिन सही दिशा में करे। इसलिए समस्या है मन की गति की दिशा बदलने की। अभी वह जो वेग से विकारों की तरफ भाग रहा है, उसे वहा से मोड़ कर समता की दिशा में ले जाना है। विपरीत मार्ग पर जा रहा है, उसको सत्पथ पर लाना है।

{2472}

स्व. आचार्य श्री फरमाया करते थे–दयाधर्म पावे तो कोई पुण्यवंता पावे। वास्तव मे हृदय मे करुणा का आवेग पुण्य के फलस्वरूप ही आता हे। पापी हृदय मे कहां अनुकम्पा होती है ? एक अधा पुरुष सडक पर जा रहा है–किनारे चलते–चलते वह एक गड्ढे की कगार तक पहुच गया ओर एक क्षण विलम्ब होता है तो उसके गड्ढे में गिर जाने की आशका हे, उस समय पापात्मा उसे देखता होगा तो क्या गिरेगा ? वह देखेगा कि अंधा गड्ढे मे गिर जावे तो मजा देखे कि केसे चिल्लाता है ? ओर एक पुण्यात्मा देख रहा होगा तो आवश्यक से आवश्यक काम को छोडकर अधे को गिरने से बचा लेगा क्योकि पुण्यात्मा का हृदय दु खी को देखते ही दया से द्रवीभूत हो जाता है।

{2473}

आत्मा के सम्यक् दृष्टि बन जाने के वाद शुभ भावना का पुट मजवूत बना रहे तो आत्मा के तप–त्याग की अभिरुचि वढती चली जाती हे। जेसे सोने को आग मे डाले तो उसका मैल जल जाता हे तथा रग निखर उठता हे। उसी प्रकार एक सम्यक्त्वी आत्मा अगर तप ओर त्याग की आग मे अपने को झौक दे तो उसके स्वरूप के साथ जितना विकार लगा हुआ हो वह राव जलकर भस्म हो जाता हे ओर उसके वाद आत्मा का निजस्वरूप शुद्ध वन कर प्रकाशमान हो उठता है।

{2474}

गौतम गणधर महावीर के एकदम निकट थे ओर केवल्य ज्ञान के अभाव मे वे एक छोटी सी बात गल्त कह गये, लेकिन श्रावक की तुलना में उन्होने गौतम गणधर को भी क्षमा नही किया। इसे वीतराग वृत्ति की महानता ही मानिये कि उन्होने निर्देश दिया–हे गोतम, तुम जाकर आनन्द श्रावक से क्षमायाचना करो। इस घटना मे प्रभु महावीर की विराटता तो उल्लेखनीय है ही, लेकिन गौतम स्वामी तथा आनन्द श्रावक दोनो का आत्म स्वरूप उस समय विराटता की ओर अग्रसर था। वस्तुत जव आत्मा विराटता की ओर चरण बढाती है तो उसका स्वरूप और स्वभाव दोनो दिव्य वन जाते हैं।

{2475}

दूध में मिश्री दिखती नहीं है, लेकिन दूध के अणु–अणु को वह मीठा बना देती है। वैसे ही जैन धर्म के विराट् सिद्धान्त आज हर कसौटी पर कसने के बाद वैज्ञानिक धरातल पर भी खरे उतरे हैं जो प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति के आत्मिक चिन्तन को सही दिशा दे रहे हैं। तथा सीमित घेरो से विराट् स्वरूप की ओर ले जा रहे है।

{2476}

किसी भी आदर्श को व्यवहार मे उतार लेने तथा उसके खरेपन के प्रति पूर्ण आश्वस्त हो जाने के बाद ही सच्ची आस्था का जन्म होता है। वह आस्था अमिट होती है और इतनी सुदृढ कि फिर उस जीवन मे आस्था सबसे अधिक प्रमुख बन जाती है।

{2477}

विनोबा भावे जब इन्दौर चातुर्मास में स्व पूज्य आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा से मिले तथा चर्चा के बाद यह अभिव्यक्ति दी कि मेरे हृदय का अब समाधान हुआ है। उस समय मै भी आचार्य श्री के सानिध्य में था। तब विनोबा जी ने कहा था– आचार्य श्री, आप कभी सोचते होगे कि जैनो की अन्य मतायुनियो से संख्या कम है, किन्तु यह संख्या भले कम हो– जैन धर्म के अहिसा, सत्य अपरिग्रह, स्याद्वाद आदि सिद्धान्त इतने विराट् है जो दुनिया की चिन्तन धारा में मिश्री की तरह घुलते जा रहे है। दूध में मिश्री दिखती नही है, लेकिन दूध के अणु अणु को वह मीठा बना देती है। वैसे ही ये विराट् सिद्धान्त आज हर कसौटी पर कसने के बाद वैज्ञानिक धरातल पर भी खरे उतरे है जो प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति के आत्मिक चिन्तन को सही दिशा दे रहे है। विनोबा जी के कहने का अभिप्राय यह था कि नाम धराने वाले जैनो की सख्या भले ही कम हो, महावीर के विराट सिद्धान्तो मे विश्वास रखने वाले और उनको जीवन में उतारने वाले बहुतेरे है।

{2478}

सिद्धान्तो की प्रशंसा मात्र करने से आत्मा मे विराटता नही आ जायगी। आत्म स्वरूप तभी विराट बनेगा जब सिद्धान्तो की विराटता आचरण मे उतर कर चारित्रिक शक्ति को विराट बना देगी। सिद्धान्त का सही तेज तभी प्रकट होता हे जब वह आचरण मे कसा जाकर आत्मस्वरूप में उज्ज्वलता लाता हे।

{2479}

{2480}

क्षमा को वीरो का भूषण कहा गया हे। वीर पुरुष ही क्षमा कर सकता है। क्षमा किसको कहें ? जहा बदला लेने का सामर्थ्य हे वहा बदला नही लेवे, बल्कि वैर भाव भी नही रखे—वहा सच्ची क्षमा होती हे। ऐसी ही क्षमा परिपक्व बन कर आत्म स्वरूप विराट् बनाती है।

कोई भद्रिक भाई ऐसा भी समझ लेते हे कि मत्रो के बल से भगवान को बुला लेते होगे। सोचिए कि मत्र बडा है या भगवान ? जो मत्रविद् भगवान को बुलाले तो भला वही भगवान क्यो न हो जाय ? इसलिए ऐसा होता नहीं है। शाश्वत सत्य यही है कि यही आत्मा अपने सुकृत्यो से सद्‌गुण पूरित बनकर सिद्ध पद को प्राप्त कर लेती है तब परमात्मा बन जाती है।

{2481}

{2482}

किसी भी गर्भवती बहिन को बडी तपश्चर्या तो दूर रही लेकिन उपवास भी नहीं करना चाहिये क्योकि गर्भस्थ शिशु को उससे अन्तराय लगती है। यहां तक कि पर्युषण के दिनो मे कोई गर्भवती बहिन उपवास करती है तो वह भूल करती है। यह जीव दया का भी प्रश्न है। गर्भ मे ही नही, बालक जब माता के दूध पर निर्वाह करता है तब तक भी माताओ को तपश्चर्या नही करनी चाहिये कारण इसमे दया की दृष्टि भी समाई हुई है।

कल्पना करे कि एक व्यक्ति को मूंग की दाल का हलुआ वहुत ही पसन्द है। उनसे बढ़िया हलुआ बनवाया तथा खाना शुरू किया। प्रथम ग्रास में उसे बडा सुख मालूम हुआ कि उसका मनपसन्द स्वादिष्ट हलुआ खाने को मिला। जहां तक ठीक रुचि रहती है, वह हलुआ खाता जाता है और उसमें सुख मानता है। रुचि निरन्तर घटती जाती है मगर तृष्णा मानती नहीं है। वह हलुआ खाता जाता है। फिर नतीजा क्या आता है ? अपच हो जाता है, पेट दुखता है, मद्दी डकारे आती है और उल्टियां होने लगती है। तो बताइये हलुआ खाने से सुख हुआ, शान्ति मिली या अशान्ति पैदा हुई ? अगर अन्त में अशान्ति ही पैदा हुई तो मानिये कि वह पदार्थ मूल मे अशान्ति पैदा करने वाला ही है। भौतिक पदार्थ से ऐसा ही सुख मिलता है।

{2483}

एक भूखे आदमी को कोई मिट्टी का ढेला खाने को दे तो क्या वह उसे खा सकेगा और क्या उस से उसकी भूख मिट सकेगी ? एक आदमी को कोई समुद्र का खारा पानी पीने को दे तो क्या उसे वह पी सकेगा और क्या उससे उसकी प्यास मिट सकेगी? रोटी से भूख मिटेगी तथा शीतल मिष्ट जल से प्यास तृप्त होगी। वैसे ही आत्मा की भूख और प्यास संसार के इन योग्य पदार्थों से मिटने वाली नहीं है। वह चाहे इस कान से सुने या उस कान से सुने, आज सुने या कल सुने अथवा कभी सुने ही नहीं, किन्तु जब तक मनुष्य इन नाशवान पदार्थों से अपना सम्बन्ध विच्छेद नहीं करेगा, तब तक उसको वास्तविक शान्ति नही मिलने वाली नही है।

{2484}

कई कुलीन कहलाने वाले निकटस्थ सम्बन्धी या भाई—भाई परस्पर लडते हैं तो ख्याल आता है कि जो कटुता व्यवहार में झलक रही है—वाणी में सुनाई दे रही है, वह विचारो में कितनी गुनी कटु बनकर विष घोल रही होगी? उस कटुता को निकालना तथा तीनो द्वारों में पवित्रता का प्रसार करना कर्त्तव्य बन जाना चाहिए।

{2485}

{2486}

जानते है खरगोश एक छोटा सा जानवर हे जो जंगल की झाडियो की ओट मे बेठा रहता हे। किसी शिकारी के पेरो की आहट पाकर वह भागता है ओर भागते–भागते जब तक जाता हे ओर मेदान मे छिपने को कोई झाडी नही दिखाई देती तो अपने लम्बे कानो को नीचे करके दुबक कर इस तरह बेठ जाता है जैसे वह झाडी मे छिप गया हो। वह इसे अपनी चतुराई समझता हे लेकिन शिकारी के हाथो वह बचता नही है। इसी प्रकार विचार, वचन ओर व्यवहार मे अपवित्रता बरतने वाले अपने को बहुत चतुर समझते हे, लेकिन वे यह भूल जाते है कि आखिर जाकर अपवित्रता भाडा फूटेगा ही ओर कालिमा प्रकट होकर रहेगी।

अत अपने जीवन को सुधारिये तथा मनसा वाचा कर्मणा पवित्रता को अपनाइये।

{2487}

यह ध्यान रखिये कि सिद्धि लाभ विनय के पुजारियो को मिलता हे। क्या आप भी लेना चाहते है सिद्धि लाभ ? लेना हे तो समदृष्टि आत्मा के सहज भाव को जगाइये ओर विनय से अपने हृदय को ओतप्रोत बना लीजिये।

{2488}

बाहरी दृष्टि की असावधान से ठोकरें लगती हे, पर आत्म दृष्टि की असावधानी से आत्म कल्याण कठिनतर बन जाता हे।

{2489}

दृष्टि सम हो जाने पर ज्ञान मे समता ओर गति में समता आने पर आचरण पुष्ट बनता हे।

{2490}

एक व्यक्ति चाहता है कि उसके परिवार में शान्ति व्याप्त रहे तो सबसे पहले उस परिवार के मुखिया को अपनी वृत्तियो तथा प्रवृत्तियो का इस दृष्टि से सकोच करना पडेगा कि उनकी वजह से परिवार के किसी सदस्य को अशान्ति फैलाने का मौका न मिले।

{2491}

एक बार गति सम बन जाने के बाद भी मन की गति पर स्वस्थ और सतर्क नियंत्रण बना रहना चाहिए। यदि मन की चचलता का उचित नियंत्रण न रहे तो सम बनी हुई गति भी पुन विषम बन सकती है। ऐसा चंचल मन फिर उच्छृंखल हो जाता है।

{2492}

पुण्यवानी से जो संयोग मिले है, उनकी सहायता से यदि ओर पुण्य कमालो तो जीवन विकास के अवसर और अधिक सुलभ हो सकेंगे। पुण्य के फल मे पाप कमाया तो यह जीवन भी डूबेगा और आने वाले जीवन भी डूबेगे।

{2493}

क्रोध के भंयकर रूप का जब तक शमन नही कर पावे और मास मासखमण की तपस्या भी करें तो भी आत्मकल्याण के कार्य में वांछित सफलता नही मिल सकेगी।

{2494}

मन मे उठने वाली दुर्भावना जब वाणी व कार्य के माध्यम से क्रिया शील रूप लेती है तो वह सिर्फ सम्बन्धित व्यक्ति के चरित्र पर ही बुरा असर नही डालती है, बल्कि सारे समाज और राष्ट्र की शान्ति व्यवस्था को भी प्रभावित करती है।

परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व की समस्त आत्माओं के साथ आत्मीय समभाव, समदृष्टि व समतामय व्यवहार रखने वाला आदर्श जीवन बन जाए अर्थात् " एक मे सव" ओर "सब में एक" की अनुभूति प्राप्त हो जाती हे, यही अनुभूति आत्मा को परमात्मा स्वरूपी बन देता है।

{2495}

विषयो की अनुभूति लेने वाला कहेगा–मेने देखा,
वही कहेगा, मैंने सुना, वही कहेगा, मैने सुंघा,
वही कहेगा मैंने चखा और वही कहेगा मैने छुआ।
यह "मैं" कौन हे ? यही "मै" आत्मा हे
जो चैतन्य स्वरूप अभोतिक तत्व है।

{2496}

मानवता के आधे भाग को जिन्होने ठुकराने का दुस्साहस किया, हकीकत में उन्होंने सारी मानव जाति के भाग्य को ही ठुकराने की चेष्टा की। क्योंकि उन्होंने मानव जीवन की जननी के सम्मानपूर्ण स्थान का अनादर किया। यह एक ऐसा कुकर्म था, जिसने मानव जाति में एक वहुत वडी–वडी भेद की दीवारें खडी कर दी।

{2497}

मोक्ष प्राप्ति की उत्कृष्ट साधना जैसे पुरुष कर सकता है, वैसी ही साधना स्त्री के पोशाक में रहने वाली आत्मा भी कर सकती है। मोक्ष प्राप्ति के उच्च लक्ष्य की प्राप्ति में भी योग्यता, क्षमता एवं अधिकार की दृष्टि से पुरुष और नारी में कोई भेद नहीं है। यह सिद्धान्त तीर्थंकरों ने अभिव्यक्ति किया है।

{2498}

मुक्ति पथ पर प्रगति करने के दो ही उपाय है कि या तो स्वयं ज्ञानी बनो अथवा अटूट श्रद्धा के साथ ज्ञानी का अनुसरण करो। जिसका अनुसरण करो वह परखा हुआ ज्ञानी हो और तब उस की आज्ञा का पालन करना ही अपना परम धर्म मान लो।

{2499}

जैसे चतुर नेत्र चिकित्सा मिले तो ही मोतियाबिन्द का ऑपरेशन सफलतापूर्वक किया जा सकता है, वैसे ही ज्ञानी गुरु मिले तथा वे अज्ञान और अविद्या को दूर करने का मार्ग दिखावें तो भीतर की आंखों में प्रकाश की रेखाएं चमक सकती हैं।

{2500}